सहजानंद शास्त्रमाला

ज्ञानार्णव प्रवचन

भाग 18

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

श्री [illegible] जैन महिला मंडल,
श्री [illegible]
[illegible], इंदौर

ज्ञानार्णव प्रवचन

१८, १९, २०, २१ भाग

प्रवक्ता:
अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:
खेमचन्द जैन सर्राफ,
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें।

प्रथम संस्करण १०००] सन् १९७३ [मूल्य १५)

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
मुनजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

०००○०००

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानार्णव प्रवचन अष्टादश भाग

अनन्तानन्तमाकाशं सर्वत: स्वप्रतिष्ठितम् ।
तन्मध्येऽयं स्थितो लोकः श्रीमत्सर्वज्ञवर्णितः ॥१६७०॥

अनन्तानन्ताकाशके मध्यमें लोककी प्रतिष्ठा—अपने आपके स्वरूप दर्शनके लिए यह आवश्यक है कि पहले अपने आत्माके स्वरूपका परिचय तो पायें और आत्मस्वरूपके परिचयके लिए यह आवश्यक है कि आत्मा और अनात्मा दोनों तत्त्वोंका निर्णय हो, क्योंकि अनात्म तत्त्व के परिहार बिना आत्मतत्त्वका परिचय नहीं बनता और आत्मतत्त्व अनात्मतत्त्वका परिचय बने, जानकारी बने—इसके लिए आवश्यक है कि हम स्वयंका और स्वयंसे भिन्न अन्य सबका संक्षेप में यथायोग्य विस्तारमें ज्ञान प्राप्त करें। स्व परका ज्ञान प्राप्त होना इसके अर्थ इस प्रकरण में लोकका वर्णन चल रहा है। संस्थानविचय धर्मध्यानमें ज्ञानी सम्यग्दृष्टि क्या-क्या चिन्तन करता है ?वह सब वर्णन इस प्रसंगमें आवेगा। धर्मध्यानोंमें यह चतुर्थ धर्मध्यान है और आज्ञा-विचय, अपायविचय, विपाकविचय नामक धर्मध्यानकी अपेक्षा इस संस्थानविचय धर्मध्यान के करनेके लिए ज्ञानबल, वैराग्यबलकी विशेष आवश्यकता होती है और इसीलिए परम्परामें यह बताया है कि संस्थानविचय धर्मध्यानकी पूर्ति छठवें ७वें गुणस्थानमें होती है। जिस ज्ञानी पुरुषको लोक और कालकी रचना स्पष्ट उपयोगमें आती हो उसके वैराग्य वृध्यंगत हुआ करता है। जहाँ तीन लोकका विस्तार उपयोगमें हो, कितना बड़ा लोक है, कितनी जगह है, कहाँ कहाँ यह जीव बारबार जन्म मरण कर चुका है, सर्वत्र लोकाकाशके सब प्रदेशोंपर काल कितना बड़ा है, अनादिकाल अनन्तकाल जिसकी कोई सीमा नहीं है उतने वृहत् कालमें यह जीव जन्म मरण करता चला आया है और आगे अनन्त काल व्यतीत होगा वह किस रूप में व्यतीत होगा ? शुद्ध स्वरूप परिणति बने तो शुद्ध परिणमनमें अनन्तकाल व्यतीत होगा। जिनके अज्ञानभाव रहेगा उनका अनन्नकाल यों ही जन्म मरणमें व्यतीत होगा। यों लोक और कालकी नाना प्रकारकी रचनाएँ उपयोगमें स्पष्ट हों तो उन्हें वैराग्य बढ़ता है। इसी कारण संस्थानविचय धर्मध्यानीका धर्मोपदेशमें बहुत बड़ा महत्त्व बताया गया है। मुझसे बाहर यह सब मायाजाल यह सब पदार्थसमूह है, यह बतानेके लिए प्रथम आधारभूत द्रव्यका वर्णन किया जा रहा है।

सर्व पदार्थोंकी स्वस्वप्रतिष्ठितता—सर्व पदार्थोंका आधार आकाश है, यह व्यवहारमें बात बतायी जा रही है। परमार्थसे तो प्रत्येक वस्तुका आधार वही वस्तु है, उस ही पदार्थका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निजी क्षेत्र है। जैसे कोई कहे कि यह जीव आकाशमें रह रहा है तो यह बात कहाँ तक परमार्थकी मानी जाय ? यद्यपि अनादिकालसे अनन्त काल तक यही बात रहेगी। आकाशको छोड़कर अन्य कहाँ जीव जाय ? लोकाकाशमें रहेगा, आकाश है, इससे बाहर जाता नहीं, कदाचित् जाता भी मान लें तो भी आकाश है, आकाशको छोड़कर जीव कहाँ जायगा ? यद्यपि यह बात मानने योग्य है, लेकिन द्रव्यके एकत्वपर दृष्टि दी जाय तो आकाश अपने एकत्वस्वरूपमें है, जीव अपने एकत्वस्वरूपमें है। भले ही यह संगति बैठ गई कि आकाशमें जीव है और यों कह लो कि जीवमें धर्मद्रव्य है, धर्मद्रव्यमें जीवद्रव्य है। जब एक ही प्रदेश है, समस्त द्रव्योंकी स्थिति है तो जो कुछ भी कह डाले, पर परमार्थमें तो जीव जीवमें है, धर्मद्रव्य धर्मद्रव्यमें है, प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वक्षेत्रमें है। सबका आधार स्वयं है, लेकिन जहाँ वस्तु रचना बताई जाती है वहाँ सब तरहसे वर्णन चलेगा। तो यह सब बृहत् आकाश जो कि अनन्तानन्त है, चारों ओरसे अपने आपके आधारपर है, उसके मध्यमें यह लोक स्थित है, आकाश कितना है ? अनन्तानन्त। देखिये आकाशके अनन्तानन्तका दृष्टान्त ऐसा माप है कि हम बहुतसी समस्याओंका हल इस आकाशके अनन्तानन्त तद्आधार पर कर सकते हैं। चलो जितने आकाशमें बुद्धिसे ज्ञानसे यों पूरेको तो नहीं जाना जा सकेगा कितने समयों तक जायगी, चली जाय बुद्धि। बुद्धि और मनसे तो आप एक सेकेण्डमें बम्बई भी जा सकते हैं। तो लगायें मन आकाशमें, एक ओर उन्हें देख जायें जहाँ तक आकाश हो। आकाश नहीं है तो भी होना चाहिए। आकाश तो एक पोलका नाम है तो कोई ठोस होना चाहिए। वह ठोस आकाशके आधारपर होगा और उस ठोसकी भी हद होगी। उसके बाद क्या मिलेगा ? क्या कोई प्रदेश ऐसा मिलेगा कि जिसके बाद अब आकाश नहीं है ऐसा कहा जा सके ? तो आकाशके प्रदेश कितने हुए ? अनंत हुए। ध्यानमें लाइये। इससे भी अनंतगुणी जीवराशि है।

आकाशके अक्षय अनन्त प्रदेशोंसे अनन्तगुणे जीवोंकी गणना व एक जीवके ज्ञानकी सर्वाधिक व्यापकता—यद्यपि अक्षय आकाश भी है, पर करणानुयोगकी पद्धतिमें गुरुपरम्परासे जो उपदेश मिला है समझो आकाशपद्धतिसे अनन्तगुणे जीव प्राप्त हैं जिनके बारेमें कभी कोई शंका कर सकता है कि मोक्षमें जीव लगातार जा रहे हैं। यहाँसे निकलते जा रहे हैं तो कोई समय ऐसा आयगा कि जब ये कोई जीव न रहेंगे। पहिला प्रमाण तो यह है कि अबसे पहिले अनन्तकाल व्यतीत हो गया, अब तक तो जीवसे शून्य हुआ नहीं संसार, और जितने जीव मुक्त गए हैं उनसे अनन्तगुणे संसारी जीव हैं ऐसा आगमका उपदेश है, और अनन्तकालके बाद तो यही बात कही जायगी कि अब तक जितने मुक्त हुए हैं उनसे अनन्तगुणे संसारमें जीव हैं। यहाँ प्रकरण चल रहा है आकाशका। कितना बड़ा आकाश है, और उस आकाशमें लोक हैं, ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक। कितना बड़ा है जिसका वर्णन अभी आगेके श्लोकोंमें आयगा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उस वर्णनको सुनकर चित्तमें एक बार तो ऐसा आ ही जाता है कि इतने बड़े लोकमें यह हमारे नगरकी दुनिया यह हमारा वैभव प्रदर्शनका क्षेत्र कितना है ? न कुछ बराबर। जब हम इस क्षेत्रको छूते हुए अन्य क्षेत्रमें अपना प्रभाव नहीं जमा सकते, अपना परिपाटा नहीं रख सकते तो जरासे क्षेत्रमें ममता करके अपने इस ज्ञानानन्दस्वरूप अंतरतत्त्वपर क्यों आक्रमण किया जा रहा है ? क्यों अपने आपका घात किया जा रहा है ? एक बार ऐसा तो ताप उत्पन्न होगा ही। उस समस्त लोकका आधारभूत यह आकाश है। आकाशके बीचमें यह लोक स्थित है। इस प्रसंगमें एक बात और भी जानिये कि बताइये मोटीमें पतली चीज समा जाती है या पतली चीजमें मोटी चीज समा जाती है ? बहुतसे लोग तो बता देंगे कि मोटीमें पतली चीज समा जाती है लेकिन यह बात नहीं है, बारीक चीजमें मोटी चीज समाया करती है। ये मोटी चीज हैं—मकान, पत्थर, ढेला, नगर, पृथ्वी तो ये सब समाये हुए हैं पानीमें। आजकलके वैज्ञानिक भी कहते हैं कि पृथ्वीके चारों ओर पानी है और जैन सिद्धान्त कहता है कि द्वीपके चारों ओर पानीसे पतली है हवा, सो हवामें पानी है। हवाका क्षेत्र पानीसे ज्यादा है, पानीका क्षेत्र द्वीपोंसे ज्यादा है, और हवासे पतला है आकाश। सो आकाशका क्षेत्र हवासे ज्यादा है, और आकाशसे भी पतला क्या है ? ज्ञान। सो ज्ञानक्षेत्र आकाशसे भी ज्यादा है। भगवानके केवलज्ञानमें आकाश जैसे और भी कितने ही द्रव्य हों तो वे सब समा जाते हैं। तो यों एक यह अमूर्त आकाशतत्त्व अनन्तानन्त प्रदेशोंमें है, उसके बीचमें यह एक लोक स्थित है, वह लोक कैसा है ?

स्थित्युत्पत्तिव्ययोपेतैः पदार्थैश्चेतनेतरैः।
सम्पूर्णोऽनादिसंसिद्धः कर्तृव्यापारवर्जितः ॥१६७१॥

सर्व पदार्थोंकी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकता—उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त चेतन और अचेतन पदार्थोंसे यह लोक व्याप्त है। लोक कहते किसे हैं ? अवलोकते सर्वाणि द्रव्यः यत्र स लोकः। जहाँ समस्त द्रव्य दिख जायें, पाये जायें उसे लोक कहते हैं। समस्त द्रव्योंका ही नाम लोक है। ये समस्त द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त हैं। प्रत्येक पदार्थ चूँकि वे हैं अतएव नियमसे बनते हैं और बिगड़ते हैं। उत्पाद उसमें होता है और पूर्व पर्यायका व्यय होता है। कोई भी पदार्थ कल्पना करो कि बनता नहीं, बिगड़ता नहीं और फिर भी हो तो बुद्धि तो गंवा ही न देगी, श्रद्धाके आधारपर भले ही कोई कह दे एक अपरिणामी ब्रह्म। और जरा भी उसकी अवस्था न हो, परिणमन न हो वह बुद्धिमें तो आयगा नहीं। श्रद्धामें तो जो चाहे चीज जानी जा सकती है पर श्रद्धा सत्य वह है जो यथार्थ वस्तुस्वरूपकी हो। प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्य करके युक्त हैं, त्रयात्मक हैं, त्रिदेवतात्मक हैं, जिनकी अनेक लोगोंने ब्रह्मा विष्णु महेशके नामसे कल्पना की है और बताया है कि ये देवता हुए हैं, ब्रह्माने उत्पत्ति की है, विष्णुने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रक्षा की है और महेशने प्रलय किया है। कब दृष्टि की, कब तक रक्षा की, कब प्रलय करेंगे, इसका अन्तर लम्बा लम्बा है लेकिन वस्तुस्वरूप यह बतला रहा है कि इसका अगला काल लम्बा नहीं है। एक ही समयमें ब्रह्मत्व विष्णुत्व महेशत्व प्रत्येक पदार्थमें पाया जा रहा है अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य श्रेष्ठ होना, उसकी रक्षा रहना अर्थात् सत्त्व बना रहना, ध्रुव रहना और व्यय होना, प्रलय होना प्रत्येक पदार्थमें निरन्तर पाया जा रहा है। त्रिगुणात्मक है समस्त द्रव्यसमूह। और पदार्थकी ही बात है। आजका हमारा राष्ट्रध्वज भी लहराकर कह रहा है कि प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक है। राष्ट्रके ध्वजमें तीन रंग हैं, बीचमें सफेद और ऊपर नीचे लाल, हरा। साहित्यमें हरा रंग उत्पादमें आता है और लाल रंग व्ययमें आता है। सफेद रंग धीरता स्थिरतामें आता है, और देखो कि ध्रुवके साथ ही में सफेद रंगके आस-पास ही उत्पाद व्ययके रंग चढ़े हुए हैं। उत्पाद होते हुए ध्रुव निरन्तर बना रहता है जो उत्पाद व्यय दोनोंको सम्हाले हुए है। हम सत् हैं, निरन्तर उत्पाद व्यय ध्रौव्य करते हैं।

सबका अपने अपने निज क्षेत्रमें अपने गुणोंका योग्यतानुसार परिणमन—हम अपने ही प्रदेशोंमें रहकर अपना उत्पाद किया करते हैं। और नवीन अवस्थाका उत्पाद हुआ, उसीके मायने यह हैं कि पूर्व पर्यायका व्यय होगा। मैं ही क्या, जगतके समस्त चेतन अचेतन पदार्थ अपने आपके अस्तिकायमें अपने ही गुणोंमें अपना परिणमन किया करते हैं और इसी कारण प्रत्येक पदार्थ आज तक है। यदि कभी ऐसी गड़बड़ हो गयी होती कि एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थमें अपना परिणमन धर दे तो जगत शून्य हो जाता। यह सारा जगत अब तक टिका है, सामने दिख रहा है। यह ही इस बातका प्रमाण है कि वस्तुका स्वरूप चतुष्टय अपना-अपना है। हाँ, इतनी बातको मना नहीं किया जा सकता कि इन परिणमनोंमें जो विभाव-परिणमन हैं, अपने स्वभावके विरुद्ध परिणमन हैं, विकार परिणमन हैं, वे सब परिणमन किसी पर-उपाधिके संसर्गमें हो रहे हैं। ये पर-उपाधिके बिना केवल अपने आपके स्वभावसे ही विभावपरिणमन नहीं हो रहे, सो ऐसे विभावरूप परिणमनमें इस प्रमेयमान उपादानकी ऐसी कला है कि वह किसी अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाकर विभावरूप परिणम जाय। यों पदार्थोंको निरखना उनके एकत्वस्वरूपमें।

कर्तृत्वविवर्जित विशुद्ध अन्तस्तत्त्वकी दृष्टिमें आकुलताओंकी समाप्ति—देखिये बात सब ओरकी सही है, निमित्तनैमित्तिक भावकी बात सही है, उपादानके एकत्वकी बात सही है, निर्णय के लिए सब निर्णय कर लीजिए, पर हम उस चर्चा को क्यों लम्बा करें जिस चर्चामें हमें बुद्धि अनेक पदार्थोंपर उनके सम्बंधपर दे देकर उपयोग को भ्रमाना पड़ा। वह सब सत्य है, यह भी सत्य है, लेकिन हम अपना हित किस दर्शनमें पाते हैं, हम अपनेको अनाकुल किस दर्शनमें अनुभवते हैं? उसका भी तो निर्णय रखि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

येगा। प्रत्येक पदार्थ अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे रहते हुए अनादिसे चले आये हैं। अनन्त काल तक चले जायेंगे। यों यह लोक चेतन अचेतन समस्त पदार्थोंसे परिपूर्ण है, इस दृष्टिमें स्व स्वामित्वका सम्बंध परके साथ नहीं रहता। इस दृष्टिमें परके कर्तृत्वका अभिमान नहीं ठहरता। इस दृष्टिमें उपयोगको बहुत बहुत भटकना नहीं पड़ता। पदार्थके एकत्वस्वरूपका दर्शन जो स्वरूपपदार्थमें नित्य अन्तः व्यक्त है, प्रकाशमान है, पर मोही जीव चूंकि कषायोंसे उपयोगको मिला रखा है तो उन कषायोंकी प्रेरणामें अपनी बुद्धिको गंवाकर पदार्थके एकत्व-स्वरूपका दर्शन नहीं कर पाता। यों यह लोक कहो या पदार्थ कहो अनादिकालसे इसी प्रकार प्रसिद्ध चला आया है, और यह लोक कर्तृत्वके व्यापारसे रहित है। जैसे अनेक लोग यह धारणा बना लेते हैं कि इस लोकको किसीने बनाया तो है और ऐसा गाकर उस ईश्वरके उसमें महत्ता स्थापित करते हैं। अरे ईश्वरकी महत्ता उस विशुद्ध ईश्वरकी महत्ता बताकर बढ़ेगी। कर्तृत्व तो एक रोग है जिस रोगमें रहकर हम बेचैन रहा करते हैं। कोई एक रुई धुनने वाला विदेश गया हुआ था, वहाँसे जब अपने घरको लौटा तो पानीके जहाजमें बैठकर आया। उस जहाजमें हजारों मन रुई लदी हुई थी। धुनिया उस रुईको देखकर एकदम अशांत हो गया, हाय रे हाय कितनी रुई लदी है, यह सब रुई हमींको तो धुननी पड़ेगी। बस चिंता हो गई, सिर तक असर गया, हरारत हो गई, बुखार भी हो गया, लोग आये, दवा की। कुछ आराम न हुआ। एक चतुर व्यक्ति आया, बोला आप लोग जाइये, हम इसकी औषधि करेंगे। बैठ गया, आपसमें बोलचाल होने लगी। चिकित्सक बोला कि तुमको यह हरारत कब हुई, कहाँसे आ रहे ? बोला हम विदेशसे आ रहे, पानीके जहाजमें बैठकर आये।....अच्छा तुम्हारे साथ कितने लोग थे ? धुनिया बोला कि आदमी तो एक भी न था, पर उसमें हजारों मन रुई लदी थी, उसकी इस रागमय बातको सुनकर वह पहिचान गया कि इसे क्या रोग है। बोला—अरे तुम उस जहाजसे आया, वह जहाज तो आगेके बन्दरगाहमें ज्यों ही लगा कि न जाने क्या हुआ कि सारा जहाज आगसे जल गया। अरे जल गया ? लो चंगा हो गया। अब वह चिन्ता न रही कि हाय हमको ही यह सारी रुई धुननी पड़ेगी।

सुखानुभवका आधार इच्छाका अभाव—एक और राज देखिये कि हम आप सबको जितने सुख होते हैं वे सब सुख इच्छाके अभावसे होते हैं। मानते यह हैं कि इच्छाकी पूर्तिसे सुख हुआ। अच्छा यह बतलावो कि पूर्ति नाम किसका ? क्या जैसे बोरोंमें गेहूं भरते हैं और भर भरकर बोरेकी पूर्ति कर देते हैं। ऐसे ही हम आत्मामें इच्छा भरते हैं और भर भरकर हम इच्छाकी पूर्ति करते हैं ? इच्छाके न रहनेका ही नाम इच्छाकी पूर्ति है। अरे सर्व सुखोंमें आप यह बात पायेंगे कि इच्छा नहीं रही उसका सुख है। भोजन कर चुकनेके बाद जो सुख अनुभवा जाता है अब इस तरहकी इच्छा नहीं रही उसका सुख है। कोई कहे—वाह भोजन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किए बिना इच्छा न रहे, सुख लूट लेवे। तो लूटने वाले वहाँ भी सुख लूट लेते हैं। भोजन भी कर चुके, अब निरखियेगा, भीतर पेट भरा इससे सुख नहीं आ रहा, ज्ञान देखिये किस तरहका ज्ञान आ रहा है जिसपर सुखकी प्राप्ति चल रही है। वहाँ भोजन सम्बंधी इच्छा नहीं है उसका सुख है। जो साधु योगीश्वर भोजन किए बिना दो-दो चार-चार दिनका उपवास करने पर भी भोजनकी इच्छा नहीं रखते उनके बराबर आनन्द चल रहा है। एक बात। दूसरी बात यह देखिये कि जिसको जब भी सुख मिल रहा है वह इस भावका मिल रहा है कि मेरे करनेको अब काम नहीं रहा। खूब विचार करके देखिये—किसीको मकान बनवाना है, दुःखी है, जब तक मकान पूरा नहीं बनता बड़ा श्रम करता है, मकान बन चुकनेके बाद जो उसे सुख होता है वह मकान बननेका सुख नहीं होता, किन्तु उस स्थितिमें उसके यह भाव बनता है कि अब मेरे करनेको काम नहीं रहा, उसका सुख हुआ है। हर काममें काम कर चुकनेके बाद जो सुख होता है वह काम करनेका सुख नहीं होता, किन्तु अब मेरे करनेको काम नहीं रहा इस भावका सुख होता है। खूब सूक्ष्म दृष्टि रखकर परख लीजिए, और ज्ञानी जीव बिना कुछ नाम किए ही सुखी बने रहते हैं क्योंकि उनके सभी पदार्थोंका यह निर्णय पड़ा हुआ है कि मेरे करनेको परपदार्थमें कुछ काम ही नहीं। अपने स्वरूपसे बाहर मेरी कहीं परिणति ही नहीं। अपने स्वरूपसे बाहर मेरी कहीं परिणति ही नहीं। मैं जानता हूं तो अपनेमें ही जो कुछ कर रहा हूं बस यही जान रहा हूं, जो कुछ भी अनुभवता हूं मैं अपने ही क्षेत्रमें सब अनुभवता हूं। मेरे करनेके लिए कुछ पड़ा ही नहीं, बाहर किया ही नहीं जा सकता, अब इसको किया ही न जा सकेगा, अर्थात् मेरे करनेको कहीं कुछ काम है ही नहीं, इस भावका सुख है। जो बात जिस पद्धतिसे होती है वह तो उसी पद्धतिसे होती है पर मोही जीव अपनी कल्पनामें अन्य बात मान लेता है। जिस जन्मके बाद मरणकी बात, शरीर रचनाकी बात जिस विधिसे होती है उसी विधिसे चलती रहे, पर कल्पनामें अपनी भेष मुद्रा चाहे जिस ढंगकी कर लें पर जन्म मरण तो सबके जैसे होते वैसे ही होते, उनमें कोई भिन्नता नहीं कर पाते। तो ऐसे ही इन समस्त पदार्थोंकी रचनामें विधि में उत्पत्तिमें सब कुछ बातमें जो है सो ही चल रहा है, पर अज्ञानी जीव मानकर कल्पनाएँ करके कुछ विरुद्ध बात मान लेते हैं और इसी कारण अज्ञान में भटकना बराबर बनी रहती है।

पदार्थोंका स्वरूपस्वातन्त्र्य—लोक क्या है? यह विश्व है। विश्वका अर्थ दुनिया नहीं। विश्व मायने है समूह। यह लोक क्या है? समूह है अर्थात् सर्वपदार्थोंका समूह है। ये पदार्थ अपने एकत्वस्वरूपको नहीं छोड़ते। तभी सारी व्यवस्था बनी है। एक पिण्ड भी बने, जीव और अजीवका पिण्ड बन गया जिसे हम असमानजातीय पर्याय कहते हैं। वैसे भी सब तत्त्व सब द्रव्य अपने आपके द्रव्य क्षेत्र काल भावमें हैं, यह अजीव अजीवका पिण्ड बन गया,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मगर समानजातीय द्रव्य पर्याय कहते हैं वहाँपर भी प्रत्येक अणु अपने-अपने स्वरूपको लिए हुए है। यह वस्तुस्वरूप है, इसे कौन मेटे ? ६ साधारण गुण ही सर्वप्रथम इस व्यवस्थाको बना लेते हैं। वस्तु है, अस्तित्व हुआ, पर सब रूप नहीं, ऐसा ख्याल करनेके लिए है वस्तुत्व अर्थात् अपने स्वरूपसे है परस्वरूपसे नहीं। पर है है में काम नहीं चला, वह परिणामी भी है, इसके लिए द्रव्यत्व गुण संकेत कर रहा है कि प्रतिसमय पर्यायरूपमें द्रवता रहती है, अर्थात् क्या स्वच्छन्द होकर पदार्थ जिस चाहेके पर्यायरूपमें द्रवता है ? नहीं। उसपर कंट्रोल करनेके लिए अगुरुलघुत्व गुण है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें ही परिणमता है, अर्थात् पदार्थ न गुरु बनता, न लघु बनता। गुरु तो तब बनता जब दूसरे पदार्थका परिणमन उसमें आया तो वजनदार बन गया। जब वजनदार बने तब उस पदार्थका परिणमन खिचकर अन्यमें पहुंचा तो यह रीता हो गया, लघु हो गया, ऐसा गुरु लघु नहीं होता। ये सब पदार्थ अपने अपने प्रदेशोंको लिए हुए हैं। लोकमें वजनदार जंच रहे और ये पदार्थ किसी न किसीके ज्ञानमें प्रमेय हैं यह प्रमेयत्व गुण है, लेकिन साधारण गुणोंमें वही व्यवस्था विदित हो गयी जो पदार्थके नित्य पदार्थमें होना चाहिए। यों चेतन अचेतन पदार्थ अपना अपना स्वरूप लिए हुए हैं, अनादि कालसे अवस्थित हैं, अनन्त काल तक रहेंगे। उन सब पदार्थोंके समूहका नाम यह लोक है। यह लोकका चिन्तन चल रहा है। इस विस्तारके चिन्तनसे आत्माके रागद्वेष भी पतले हो जाते हैं, दूर हो जाते हैं, उपयोग बदल जाता है। संस्थानविचय धर्मध्यानकी बात चल रही है। इस धर्मध्यानके पात्र उत्कृष्ट रूपसे साधु जन ही होते हैं। इससे स्वका और पर का स्वरूप विदित होगा। उससे भेद ज्ञात होता है। भेदज्ञान करके अनात्मतत्त्वको छोड़कर अपने आत्मत्वका ग्रहण करनेका विवेक करना होता है। उसको देखकर उसमें रमकर उसमें ही तृप्त होकर हमें अपने ये दुर्लभ क्षण सफल बनाना चाहिए।

ऊर्ध्वाधोमध्यभागैर्यो विभर्ति भुवनत्रयम्।
अतः स एव सूत्रज्ञैस्त्रैलोक्याधार इष्यते ॥१६७२॥

लोकके ऊर्ध्व, मध्य व अधोभागका निर्देश—यह जो लोक है वह तीन भागोंमें बंटा हुआ है—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। इस वजहसे इस समस्त लोकको तीन लोक का आधार भी कह सकते हैं। प्रथम तो आधारकी कोई बात ही नहीं, चाहे लोक कहो, चाहे तीन लोक कहो—ये सब पुरुषाकार रूपमें हैं। जैसे ७ बालक बराबरके ऊँचे एकके पीछे एक खड़ा कर दें, ७ बालकोंकी लाइन लग गयी। सभी पैर पसारकर कमरपर हाथ धरकर खड़े हों तो वह लोकका नक्शा बन जाता है। एक बालकको एक राजू चौड़ा मान लेते हैं, ७ राजू पीछे चौड़ा है, सर्वत्र जहांसे देखो और सामनेसे देखो ७ राजू कमरपर एक राजू, टिहुनियोंपर ५ राजू और गलेपर एक राजू उनका जोड़ किया जाय तो ३४३ घन राजू बैठेगा, तो इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकार तीन लोकके विभागके रूपमें यह समस्त लोक है। उस लोकके चारों तरफ क्या है, उसका वर्णन कर रहे हैं।

उपर्युपरि संक्रान्तैः सर्वतोऽपि निरन्तरैः।
त्रिभिर्वायुभिराकीर्णो महावेगैर्महाबलैः ॥१६७३॥

लोककी त्रिविधवायुपरिवेष्टितता—समस्त लोकके चारों तरफ तीन प्रकारकी वायु है, वह लोकसे बाहर नहीं है वायु। वायु तक लोक है। जैसे पुरुषाकार लोक माना तो उस लोक के चारों तरफ पहिला तो है घनवातवलय, बादमें है घनोदधि वातवलय और सबसे अन्तमें है तनुवातवलय। घन वातवलयके मायने बहुत मोटी धातु और धनोदधि वातवलयके मायने मोटी वायु है। कुछ जलकण हैं और सबसे अन्तमें तनुवातवलय है, वह सबसे अन्तकी वायु है। ये चार तरहके अलोकाकाश हैं, वे बहुत बलवान हैं तभी तो देखो उस वायुके आधारपर यह सारा लोक सधा हुआ है। बहुतसे लोग कल्पनाएँ करते हैं कि इस लोकको कछुवेने अपनी पीठपर रख रखा है, कोई कहते हैं कि शेष नागके फनपर यह लोक है, कोई कहते हैं कि यह दुनिया अपनी छोटी कीलीपर है, वह कीलीपर सधी हुई है, इस प्रकार अनेक कल्पनाएँ करते हैं। जैन शासनमें बताया है कि तीन लोकके विभागमें यह सारा लोक है और लोकके चारों ओर तीन प्रकारकी वायु है, उस वायुपर यह लोक सधा हुआ है। इस ही वायुको अगर शेष नाग कहा जाय तो ठीक है क्योंकि शेष नागका भी अर्थ है वायु। नागमें ३ शब्द हैं—न अ ग। गच्छति इति गः। जो जाये उसे ग कहते हैं और अगच्छति इति अग। जो न चले सो अग है, अग मायने पर्वत। जो चलता नहीं। और न अगच्छति इति नागः, जो स्थिर न रहे उसे नाग कहते हैं। स्थिर नहीं रहती वायु, तो वायुका नाग नाम है, और शेषनाग मायने शेषकी जो वायु है, जो शेष बची हुई अन्तकी वायु है उसे शेषनाग कहते हैं। अर्थात् यह ही वातवलय है। इन वातवलयोंके आधारपर यह सब लौक टिका हुआ है।

घनाब्धिः प्रथमस्तेषां ततोऽन्यो घनमारुतः।
तनुवातस्तृतीतोऽन्ते विज्ञेया वायवः क्रमात् ॥१६७४॥

लोकके चारों ओर धनोदधि, धनवात, तनुवात नामके वायुओंका परिवेष्टन—पहिली वायुका नाम तो है धनोदधि। उसके ऊपर जो वायु है उसका नाम है धनवात और उसके ऊपर अंतमें तनुवातवलय है। इस प्रकार तीन वातवलयोंसे यह लोक भरा हुआ है, इसी कारण यह लोक इधर उधर हट नहीं सकता, स्थिर है, और यह लोक है कहाँ? तो आकाशके बीच में है, याने समस्त आकाश अनन्त हैं। उस आकाशके मध्यमें ये लोक रचनाएँ हैं। तो आकाश अनन्त है, तो किसी भी जगह लोक रचनाएँ हों वह सब आकाशका मध्य है और फिर वैसे भी मध्य है। तो समस्त आकाशके बीचमें ये लौकिक रचनाएँ हैं और इनके चारों ओर तीन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकारके वातवलय हैं जिनके आधारपर यह लोक दृष्ट होता है। अब देखिये—इतने बड़े लोक में ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा है जिस प्रदेशपर हम आप अनन्त बार पैदा न हुए हों। हमारा जन्म मरण क्या है ? अनन्त बार प्रत्येक प्रदेशमें अपना जन्म मरण हुआ। उसमें कहाँ क्या रचना है—यह सब आगे बताया जायगा। किस जगह स्थावर जीव हैं, किस जगह त्रस जीव हैं, कितनेमें देव जीव हैं, कितनेमें नारकी जीव हैं यह सब वर्णन अभी आयगा। तो चार गतियोंके जीवोंसे फैला हुआ यह लोक है और लोकमें ही सिद्ध भगवान विराजे हैं, वे लोकसे बाहर नहीं हैं पर लोकके अन्तमें हैं। जहाँ तक लोक पाया जाता है, जिसके बाद फिर लोक नहीं है वहाँ सिद्ध भगवाय विराजे हैं।

उद्धृत्य सकलं लोकं स्वशक्त्यैव व्यवस्थिताः।
पर्यन्यरहिते व्योम्नि मरुतः प्रांशुविग्रहाः ॥१६७५॥

वायुओंके मध्य लोककी स्वप्रतिष्ठितता—ये तीनों ही पवन तीन लोकको धारण करके अपनी शक्तिसे ही इस अनन्त आकाशमें अपने शरीरको विस्तृत किए हुए स्थित हैं। यह लोक अपनी शक्तिसे है, यह वायु अपनी शक्तिसे है, किन्तु चारों ओरकी जो वायुका वलय है उसका निमित्त पाकर यह इतना विस्तृत लोक सधा हुआ है। पवनोंका विस्तार कितना है लम्बाईमें कि जितना यह लोक है। चारों ओरसे उतना इसका विस्तार है। सो पवनका भी विस्तार उतना है और लोकका भी विस्तार उतना है, क्योंकि लोकमें ही पवन है और पवन जहाँ तक है वहीं तक लोक है, उसके आगे लोक नहीं है।

धनाब्धिवलये लोकः स च नान्ते व्यवस्थितः।
तनुवातान्तरे सोऽपि स चाकारो स्थितः स्वयम् ॥१६७६॥

वायुमध्यमें लोककी स्वयं स्थितता व अकृतता—यह लोक तो धनोदधि नामके वातवलयमें स्थित हैं और धनोदधि वातवलय घनवातके मध्यमें है और घनवातवलय तनुवातवलयसे घिरा हुआ है। ऐसा होनेमें किसीका कर्तव्य नहीं है। किसीने इस लोकको बनाया हो और बनाकर उस लोकके चारों तरफ वायु बैठाल दी हो, ऐसा किसीने किया नहीं। यह सब अनादिसे प्रकृत्या अपने आप बनी हुई रचना है। मानो किसीने यह बनाया होता तो यही बतलावो कि बनाने वालेने भी किसीको बनाया या नहीं ? अगर कहो कि बनाने वालेने किसी को बनाया नहीं तो जैसे वाला बिना आश्रय अपने आप है तो ऐसे ही सारे पदार्थ बिना बनाये अपने आप हैं और कहो कि बनाने वाले ईश्वरको भी किसने बनाया तो उसे किसने बनाया इस तरहसे उत्तर देते जावो, कहीं भागना ही न पड़ेगा और फिर मानो किसीने बनाया तो किसी वस्तुसे बनाया या कुछ था ही नहीं और एकदम यों ही बन गया। जैसे कुम्हार घड़ा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनाता है तो मिट्टीका पिण्ड है, जल है, कुछ चीज है उसे ले करके बनाते हैं तो इस तरहसे ईश्वरने किसी उपादानको लेकर इस लोकको बनाया है या कुछ भी न था उपादान यह लोक बन गया है ? अगर कहो कि कुछ था उपादान जिससे इस लोकको बनाया गया तो लोक क्या बनाया फिर ? वह तो चीज पहिले ही थी। उसका एक रूप अविस्तृत कर दिया, और आकाश कुछ भी न था और एकदम बना दिया तो उसको कोई बुद्धिमान नहीं मान सकता कि असत् भी बन सके। कुछ भी न हो और सत् बन जाय, ऐसा कोई मान ही नहीं सकता, और भी सोचो—बनाने वाला कहाँसे बनाता है, जगतको किस प्रयोजनसे बनाया है, उसकी क्या मंशा है ? क्या उसने इस कारण बनाया है कि उसका दिल खुश रहे या लोगोंके उपकार के लिए बनाया है, या उसे कोई पीड़ा थी, वेदना थी, दुःख था जो दुःखको शान्त करनेके लिए बनाया है ? किसलिए बनाया है ? अगर कहो कि उसने अपना दिल खुश करनेके लिए बनाया तो ये बातें तो संसारी सामान्य जनोंकी बातें हैं। ऐसा महान ईश्वर क्या दुःखी था जो अपना दिल खुश करनेके लिए ऐसी चीज बनाया जिससे अनेक आदमी दुःखी हों ? यदि ऐसा कोई करे तो वह विवेकका काम नहीं है। कोई कहे कि उसने लोगोंके उपकारके लिए बनाया तो लोगोंका उपकार तो कुछ इस समय नजर आ नहीं रहा, क्योंकि कुछ जीव सुखी हैं तो उनसे अनन्तगुने जीव दुःखी भी हैं। दुःखी जीवोंकी संख्या अधिक है और न बनता, कुछ भी न होता तो बड़ा ही उपकार था। न कुछ होता, न कोई दुःखी होता। कहो कौनसा उसे दुःख था जो अपने दुःखको शान्त करनेके लिए बनाया। यदि ईशको दुःख था तो वह ईश क्या और उस दुःखको शान्त करनेके लिए उसने बनाया यह जगत् तो अनेक युक्तियोंसे सोचो तो यह जगत किसीके द्वारा बनाया गया है यह मुक्तिमें बैठता नहीं है। यह जगत स्वयं अपने आप अनादिसे ऐसा ही प्रसिद्ध है, जो रचना यहाँ बतायी जा रही है यह रचना लोककी अनादिसे इस ही प्रकार है।

अधो वेत्रासनाकारोमध्ये स्याज्झल्लरीनिभः।
मृदङ्गोभस्ततोप्यूर्ध्वं स त्रिधेति व्यवस्थितः ॥१६७७॥

लोकका आकार—यह लोक नीचेसे तो चौड़ा है और फिर घटता-घटता सकरा हो गया, वहाँ एक राजूप्रमाण है। यह तो हुई अधोलोककी रचना और मध्यलोक है झालरके आकार, बड़े मध्य लोककी चौड़ाईसे करीब थोड़ा बाद थोड़ा नीचे है और उसके ऊपर ऊर्ध्वलोक है वह मृदंगके आकार है। जैसेमें ढंग नीचे सकरा और ऊपर सकरा और बीचमें बड़ा बैठे इसी प्रकार यह ऊर्ध्व लोक नीचे एक राजू, ऊपर एक राजू और मध्यमें ७ राजू है, इस तरहकी तीन लोककी रचना है। अनेक गणितसे फैलाया जाय तो यह सब ३४३ घन राजू प्रमाण विस्तार का निकलता है। इन सबका परिमाण कितना है ? तो उस परिमाणको जाननेके लिए कई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तरहसे गणित बनती है। मोटे रूपसे तो यों हिसाब लगायें कि नीचे अधोलोक ७ राजू चौड़ा है और ऊपर एक राजू चौड़ा है तो ये ८ राजू हुए और नीचे बराबर ७ राजू हैं तो उस ७ राजूके आधे कर दिया जाय तो ३।। हुए। ८ में ३।। का गुणा किया और ७ राजू सर्वत्र चौड़ा है तो ७ राजूमें गुणा किया उतने प्रमाण तो अधोलोक है। मध्यलोकका अलगसे कुछ प्रमाण नहीं बताया गया। कारण यह है कि मध्यलोक प्रतर रूपमें एक राजू चौड़ा तो है, पर उसकी मोटाई राजू प्रमाण नहीं होती। ऊर्ध्व लोकका प्रमाण है नीचे एक राजू, बीचमें ५ राजू जो कि ३।। राजू तक है अर्थात् १ + ५ = ६ हुए, ६ के आधे ३ हुए और ३ से ३।। का गुणा किया तो हुए १०।।, और १०।। का ७ राजूसे गुणा किया, उतना ही ऊपर है तो दोनोंको मिलाकर ऊर्ध्वलोककी रचना होती है।

मनुष्यलोककी रचनाका वैभव—देखिये हम लोग कहाँ हैं, इसके ऊपर कई लोक माने जाते हैं, देवता लोग निवास करते हैं कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि हम सब लोगोंकी रक्षा करनेके लिए ऊपर देव बना दिए गए, नीचे नारकी हैं, मानो मनुष्योंको स्वरक्षित रखनेके लिए नीचे नारकियोंको भेज दिया गया, और फिर देखो हम आप लोग जम्बूद्वीपके बीचमें हैं, उसके चारों तरफ असंख्याते द्वीप समुद्र हैं, जो असंख्याते कोट और खाइयां भी चारों ओर हैं। कविकी कल्पनाके अनुसार मनुष्यकी रक्षा के कितने साधन बनाये गए फिर भी इस मनुष्यकी रक्षा न हो सकी। ये ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक तीन प्रकारकी लोक रचनाएँ हैं जिनमें यह सारा लोक समा गया है, और इस लोकमें जो कुछ भी चीजें मिलती हैं वे सब इस आत्माके लिए पर हैं। उन सब गुणोंसे इस आत्माका कोई लाभ नहीं है। आत्मा उन सब परिस्थितियोंमें मोह करके, बाहर उपयोग देकर रागी बनकर स्वयं कल्पनाएँ करके दुःखी हो रहा है। उस दुःखको मिटानेका सही उपाय यह है कि लोकमें सत्य विज्ञान करें, अपने आत्माका सत्य ज्ञान करें, इस सत्य ज्ञानसे मोह हटेगा क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपना ही अपना स्वरूप लिए हुए है। किसी पदार्थका किसी पदार्थमें कर्तृत्व नहीं है। यों स्वतंत्र अपने एकत्वस्वरूपमें अवस्थित पदार्थका परिचय होनेपर मोह नहीं बसता। मेरा कौन है ? सभी जुदे हैं, सभी अपने आपमें अपना उत्पाद व्यय ध्रौव्य किया करते हैं, सभी अपने अपने स्वरूपमें हैं। मैं किसे अपनाऊँ ? यथार्थ विज्ञान होनेपर आत्माका परवस्तुवोंसे मेल नहीं रहता।

अस्य प्रमाणमुन्नत्या सप्त सप्त च रज्जवः।
सप्तैका पञ्च चैका च मूलमध्यान्तविस्तरे॥१६७८॥

लोकका परिमाण—उस लोकका यह विस्तार बताया है जो अभी कहा गया है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखनेमें तो ऐसा लगता कि इतना सुडौल चारों ओरसे सुन्दर एक प्रकारके संस्थानोंमें रचा हुआ यह लोक है। तो जो अकृत्रिम चीज है वह सुडौल सुन्दर एक कैसे बन सकती है, जो सुडौल सही बनाया जाय, यदि प्रमाण अनुकूल बनाया जाय तभी तो बन पायगा। अपने आप जो चीज हो, वह तो चटपट होनी चाहिए लेकिन यह ध्यानमें रखियेगा कि जो चीजें बनायी नहीं जाती, प्रकृत्या बनती हैं उन चीजोंकी सुन्दरतामें तो कहीं रंच फर्क नहीं आता। बनाई गई चीजमें कुछ अन्तर आ सकता है। ये जहाँ कहीं रत्न हीरा जवाहरात खानमें से निकलते हैं तो कैसा सुडौल सुन्दर होते हैं? फिर उनकी सुन्दरताके लिए भले ही उनमें नक्काशी की जाय। नदियोंके जो पत्थर होते हैं उनकी बनावट कैसी गोल तिकोना ऐसी सुन्दर हुआ करती है उसे कौन बनाता है? प्रकृतिसे जो अपने आप चीज है उसकी सुन्दरतामें संदेह न करना चाहिए। चाहे बनाया गया हो, चाहे बिना बनाया हो, जो सुन्दर होगा वह सुडौल ही है। तो ऐसा चारों ओरसे बराबर कायमें रहने वाला यह लोक इस अनन्त आकाशके बीचमें अवगाहित है। जिस लोकके बीचमें बिल्कुल तुच्छसे क्षेत्रपर हम आप रहते हैं। हम आपका जितने क्षेत्रमें परिचय है वह क्षेत्र लोकके सामने न कुछ चीज है। समुद्रमें से एक बूँद जलका तो कुछ गणित बन सकता है पर इतनेसे परिचित क्षेत्रका गणित इस लोकके सामने नहीं बन सकता। तो इस छोटेसे क्षेत्रमें परिचय बनाकर कुछ कामना करके अपने आपको क्यों बरबाद किया जा रहा है? इस लोकमें अक्षयानन्त जीव हैं, इनमें अनन्त मुक्त हो गए हैं, अनन्त मुक्त हो जायेंगे, फिर भी ये अनन्तानन्त ही हैं, उन अनन्तानान्त जीवोंमें से १० हजार, २० हजार, लाख दो लाख, करोड़ परिचित मनुष्य हैं तो यह कितनी सी संख्या है? उसके अनन्तवें भाग, कुछ भी तो गणनामें नहीं आता। अब बतलावो कि अनन्त जीवोंने तो हम आपको कुछ जाना, नहीं कुछ समझा नहीं। तो जब अनन्त जीव हमें कुछ जानते समझते नहीं हैं, उनसे हमारा कुछ परिचय नहीं है तो जब परिचित अनन्त जीव हैं तो फिर थोड़े ही जीवोंमें परिचय बनानेकी धुनसे अपना कौनसा लाभ बनेगा? कुछ भी लाभ नहीं है।

लोकरचनाके परिज्ञानका हितमार्गमें महत्त्व—लोग तो यहाँ तृष्णा करके, ममता करके अपने आपको दुःखी बना रहे हैं। जो परिवार है, जो घरके सम्पर्क हैं ये लोग ही मेरे सब कुछ हैं—इस प्रकारका चिन्तन करते हैं, और जिनको तीन लोककी रचना स्पष्ट विदित है उन्हें तो मोह नहीं आ सकता, क्योंकि इतने बड़े लोकके एक कोनेमें हम आप हैं। जरा सी जगहमें जब तक इन लोगोंसे हमें कुछ नहीं मिला तो थोड़ेसे लोगोंमें परिचय बनाकर हम क्या लाभ पा लेंगे, ऐसी स्पष्ट धारणा हो जाती है इस लोकके आकार प्रकार और रचनाका परिज्ञान होनेसे। यह समग्र लोक ३४३ घन राजू प्रमाण है, उसमें से एक राजूप्रमाणको हम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

थोड़ा सा सुनें तो सही। जिस जम्बू द्वीपमें हम रहते हैं वह एक लाख योजनका है। उसको वेढ कर लवणसमुद्र है, वह एक एक ओर सर्वत्र दो दो लाख योजनका है। उसको वेढ कर दूसरा द्वीप समुद्रसे दुगुना है, उसको वेढ कर दूसरा समुद्र द्वीपसे दुगुना है। इस तरह असंख्याते द्वीप और समुद्र चले गये हैं। एक एकसे दुगुने दुगुने अन्तमें स्वयंभूरमण समुद्र हैं। स्वयंभूरमणसमुद्रकी चौड़ाई समस्त द्वीप समुद्रोंके विस्तारसे भी कुछ अधिक है। इतना सब असंख्यात द्वीप समुद्र जितने क्षेत्रमें समाया है वह क्षेत्र अब भी एक राजूसे कुछ कम है। सो यह एक राजू कपड़ेकी तरह फैलाव रूपमें है। एक राजू चौड़ा एक राजू मोटा एक राजू ही लम्बा क्षेत्र एक घनराजू क्षेत्र कहलाता है। ऐसे ऐसे ३४३ घनराजू प्रमाण यह लोक है।

तत्राधोभागमासाद्य संस्थिताः सप्तभूमयः।
यासु नारकषण्ढानां निवासाः सन्ति भीषणाः ॥१६७९॥

लोकके अधोभागमें सात नरकोंकी रचना—यह लोक क्या है, जिस लोकमें हम आप ये संसारके प्राणी निवास करते हैं। यह लोक तीन भागोंमें बँटा हुआ है—अधोलोक, मध्य-लोक और ऊर्ध्व लोक। अधोलोकमें ७ भूमियाँ हैं। जिस भूमि पर हम आप चलते फिरते हैं यह बहुत मोटी है और इस भूमिके ३ भाग हैं। पहिले और दूसरे भागमें तो देव मिलते हैं जो छोटी जातिके हैं और तीसरे भागमें पहिले नरककी रचना है। इसमें कुछ आकाश छोड़ कर नीचे फिर दूसरी भूमि है, उस दूसरी भूमिमें नरकोंकी रचना है। उसके बाद आकाश छोड़कर तीसरी भूमि है, इससे ७ भूमियां हैं, जिनमें ७ नरक बसे हुए हैं। उन भूमियोंमें उन नारकियोंका निवास है। जो मनुष्योंको, पशु, पक्षियोंको मारें, सतायें, खायें, असत्य भाषण करें, खोटे आचरणसे रहें, जो माता पिताको सतायें वे जीव मरकर नरकमें उत्पन्न होते हैं। सो यहाँ तो थोड़ेसे भी कष्टोंमें घबड़ा जाते, जरा भी कष्ट नहीं सह सकते, धीरता नहीं रह सकती और वहाँ नरकोंमें सागर पर्यन्त असंख्यात वर्षों तक बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है। उन्हें क्या क्या कष्ट भोगने पड़ते हैं, कैसा उनका जीवन है ? वह सब आगेके श्लोकोंमें बताया जा रहा है।

काश्चिद्वज्रानलप्रख्याः काश्चिच्छीतोष्णसंकुलाः।
तुषारबहुलाः काश्चिद्भूमयोऽत्यन्त भीतिदाः ॥१६८०॥

नरकभूमियोंकी दुःखसाधनता—उन नरकोंमें नारकी जीव एक दूसरेको मारते हैं वे तो दुःख हैं ही, मगर वहाँ भूमिका ही महान दुःख है। वहाँ की भूमि कुछ तो अत्यन्त बज्रा-नलसे दीप्त है अर्थात् तेज गरमी है। ऐसी तेज गरमी है कि लोहेका पिण्ड गल जाय। ऐसी तीक्ष्ण गरमी वाले नरकोंमें वे नारकी जीव स्वयं बड़ा दुःख भोगते हैं। कुछ भूमि ऐसी है कि जिसमें अत्यन्त शीत है। यहाँ ही पूस माहके महीने में जब कि शिमलामें मसूरीमें बर्फ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गिर जाय तो ऐसी शीतकी लहरें चलती हैं कि यह मनुष्य उस शीतमें चल नहीं सकता, उससे भी अधिक शीत उन नरकोंकी है जिनको पाकर लोहा भी गल जाता है। जैसे जब बहुत शीत होती है तो वृक्ष जल जाते हैं, वहाँ पत्थर भी गल जाय ऐसी तीक्ष्ण ठंढ पड़ती है। तो ठंढ गर्मीका ही वहाँ दुःख अपने आप है तो वहाँ पर घोर दुःख ये नारकी जीव भोगते हैं।

नरकभूमियोंके अस्तित्वमें निःसन्देहता—यह नरक है अथवा नहीं, इस विषयमें कुछ लोग शंका कर सकते हैं। प्रथम तो शंका करनेकी यों बात नहीं है कि जिन जिनेन्द्र भगवान् ने जो आगममें प्रणीत किया है अथवा जो बात हम यथार्थ अनुभव करते हैं, ७ तत्त्वोंका स्वरूप, पदार्थोंका स्वरूप हम यथार्थ पाते हैं जैसा जिनेन्द्र वाणीमें लिखा हुआ है तो हमें यह श्रद्धा हो ही जायगी कि उनके द्वारा प्रणीत जो कुछ भी उपदेश है, प्रयोजनकी बात है हम आँखोंसे नहीं निरख सकते बहुत दूरकी बात, पर जिनेन्द्रको असत्यसम्भाषणसे क्या प्रयोजन था? जो युक्ति और अनुभवसे जाना कि वह योग्य उपदेश है। जब वह हमें शब्दार्थ मिला तो वहाँ ही सब उपदेश शब्दार्थ है। जैसे कोई मनुष्य किसी दूसरेकी हत्या कर दे तो राजा उसे मृत्युदण्ड देता है। फिर कोई लोग करोड़ों पशु मारें, अन्याय करें तो उसका दण्ड मनुष्यभव में ठीक मिल सकना तो कठिन है, जिसने हजारों लाखों, करोड़ों पशु पक्षियोंको मारा उसको मरकर नरकगतिमें जाना पड़ता है। वे नारकी जीव इतना दुःख सहते हैं कि उनके तिल-तिल बराबर खण्ड हो जाते, फिर भी पारे की तरह वे टुकड़े फिर मिलकर एक बन जाते हैं। वहांकी बात भी थोड़ी देरको जाने दो, यहीं भी देख लो, जो मनुष्य बुरे विचार रखता है, कषाय परिणाम रखता है, कषाय की प्रवृत्ति करता है, बहुत–बहुत उलझनोंमें बना रहता है उसको तत्काल भी महान् अशान्ति है और निकट भविष्यमें भी उसे अशान्ति रहेगी। तो पापके जो कर्म हैं वे तो नियम से खोटा फल देते हैं। यहां ही निरख लो और आगमको निरख लो, बहुत बड़ी कमाई है, हजारों लाखोंकी सम्पत्ति पासमें है पर दूसरोंके प्रति परिणाम छल कपट दगाबाजीका रखे, दूसरोंके सतानेका परिणाम आये तो उसकी वह सम्पत्ति बेकार है, उसकी वह सम्पत्ति पूर्वभवकी कमाई है, इस भवकी कमाई नहीं है। यह वैभव तो पुण्य पापके उदयके अनुसार आता जाता है।

उदीर्णानलदीप्तासु निसर्गोष्णासु भूमिषु।
मेरुमात्रोऽप्ययःपिण्डः क्षिप्तः सद्यो विलियते ॥१६८१॥

नरकभूमियोंमें तीव्र उष्णताका निर्देश—यहाँ नरकोंमें गरमी और ठंढकी बात दिखाई गई है कि नरकोंमें अग्नि है अथवा उष्ण है, न भूमियोंमें तो ऐसी उष्णता है कि जिसमें मेरु समान भी लोहा डाल दिया जाये तो तत्काल गल जाता है। उष्णतामें लोहा गल ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाता है तो इसमें कोई सन्देहकी बात नहीं और उष्णताके जब दिन आते हैं तो ये घर भी गर्म हो जाते हैं। भीतरकी भींत छुवो तो गर्म, शामके समय छतपर भी जाकर बैठे हैं, सोते हैं तो वहाँ भी गरमी। तो जब यहाँ की गरमीसे हम लोग विह्वल हो जाते हैं, चैन नहीं पाते हैं तो उससे भी कई गुना गरमी उन नरकोंमें है, वहाँ लोहेका गोल हो तो वह भी गल जाता है। ऐसे उष्ण स्थानमें जो नारकी जीव निवास करते हैं उनके दुःखका कौन वर्णन कर सकता है ? यहाँ तो हम आप मामूलीसे दुःख भी सहन नहीं कर पाते। एक रात्रिको जल का त्याग करना भी मुश्किल हो जाता है। यद्यपि दिन दिनमें जितने चाहे बार पी सकते, फिर भी सिर्फ रात्रिभरको भी जल का त्याग नहीं कर सकते। संसारमें तो न जाने कितने कितने दुःख सहने पड़ते हैं ? परवश होकर तो दुःख बहुत सहा जाता पर स्ववश होकर कुछ भी नहीं सह सकते। तो ऐसी उष्ण पोलमें नारकियोंको अपने पापके उदयमें घोर दुःख सहना पड़ता है।

शीतभूमिष्वपि प्राप्तो मेरुमात्रोऽपि शीर्यते।
शतधासावयःपिण्डः प्राप्य भूमिं क्षणान्तरे ॥१६८२॥

नरकभूमियोंमें तीव्र शीतका निर्देश—जिस तरह गरम नरकोंमें लोहेका पिण्ड भी गल जाता है इसी प्रकार शीतप्रधान भूमिमें मेरुके समान लोह भी खण्ड खण्ड होकर बिखर जाता है। तो बात बिल्कुल यथार्थ है कि गरमीमें तो लोहा गल जाता है और ठंडके दिनोंमें पेड़ वगैरह ये खण्ड-खण्ड होकर सूख जाते हैं। ठंडके दिनोंमें खिर-खिर, कर, बिखर बिखरकर ये विलीन हो जाते हैं। तो यह खण्ड-खण्ड होकर शीर्ण हो जाना यह तो ठंडका प्रताप है और गलकर पानी बन जाना, यह गरमीका प्रताप है।

हिंसास्तेयानृब्रह्माबह्वारम्भादि पातकैः।
विशन्ति नरकं घोरं प्राणिनोऽत्यन्तनिर्दयाः ॥१६८३॥

नरकोंमें जन्मका कारण—नरकोंमें जीव किस पापके उदयसे गमन करते हैं वह इस गाथामें बताया है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पापोंके कारण ये निर्दयी जीव नरकोंमें जन्म लेते हैं और दुःख पाते हैं। जिन जीवोंकी हिंसामें प्रवृत्ति रहती है, जो बेरहम होकर भोले भाले पशुवोंपर खंजर चलाते हैं उन्हें उसके फलमें नरक गतिमें गमन करना पड़ता है। जो मनुष्य झूठ बोलनेकी प्रकृति रखते हैं, झूठी गवाही देते हैं, हँसी मजाकमें भी बहुत बार झूठ बोलते हैं तो ऐसे झूठ बोलने वाले जीव नरक आयुका बंध करते हैं और नरकोंमें जन्म लेते हैं। एक बार भी कोई झूठ बोले तो उसकी बाढ़ खतम हो जाती है और फिर दूसरी बार झूठ बोलनेका भी द्वार खुल जाता है, फिर उसका जीवन ही झूठ बोलनेमें व्यतीत हो जाता है। झूठ बोलनेमें खुदका कितना घात है। अपने आपकी सुधि तो वहाँ रहती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही नहीं, दूसरेको दुःख होगा—इस ओर भी ख्याल नहीं रहता, दयाहीन भी हो जाता है और जान समझकर भी कि मेरे झूठ बोलनेसे इसका बिगाड़ है—वह अपनी झूठ बोलनेकी ही प्रवृत्ति रखता है। यदि किसीको मालूम हो जाय कि इसने झूठ बोला तो वह झूठ बोलने वाला इसकी निगाहसे उतर जाता है। व्यापार कार्योंमें भी ग्राहक लोग उसे सत्य समझकर ही उससे माल खरीदते हैं, यदि पता पड़ जाय कि यह झूठ बोलता है तो ग्राहक लोग उसके पाससे कोई चीज नहीं खरीदते। झूठ बोलनेसे एक तो प्राणपीड़ा होती है और यह झूठ बोलना कभी-कभी दूसरेके प्राणहरणका कारण बन जाता है। तो हिंसाकी तरह झूठ पापमें भी इस जीवको नरक गतिमें जाना पड़ता है। इसी तरह चोरीका पाप है। किसीकी चीज चुरा लेना सो चोरी है। ये चोर लोग चोरी करना उस समय तो कुछ इष्ट मानते होंगे लेकिन चोरी करके भी वे प्रसन्न नहीं रह पाते, और जरा-जरासी बातोंमें शक कर लेते हैं कि ये कहीं हमारी बात जान तो नहीं गए। तो चोरी करने वाला पुरुष कहीं शान्त नहीं रह सकता, सुखी नहीं रह सकता और एक ईमानदार गरीब भी हो, मेहनत करता हो तो सबके सामने निर्भय बैठकर ठंडा पानी तो पी लेगा, मगर चोरी करने वाला पुरुष तो किसीके पास बैठने भी न पायगा और उसे एक महान पाप करके नरक गतिमें जन्म लेना पड़ेगा। कुशील पाप में—अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य सब स्त्रियाँ भी अपनी मां बहिन बेटी की तरह हैं लेकिन कुशील पापका उदय आये तो यह अज्ञानी जीव उनपर स्त्रियोंको बुरी निगाहसे देखता है तो उसमें इसे इतना पाप लगता है कि जिसके उदयमें नरकोंमें जन्म लेना पड़ता है। परिग्रह पापमें—किसीके १०-२० दूकानें हैं, कम्पनी हैं, कारखाने हैं, और भी कारखाने कम्पनियाँ खोलनेकी धुनमें हैं, अनेक आरम्भोंको जो बसाये है उसका दिल देखो—वह कितनी बड़ी बड़ी आपत्तियां भोग रहा है, ऐसा पुरुष मरण करके नरक गतिमें जन्म लेता है। बहुत मूर्छा हो परिग्रहमें, परिग्रहको जानकी तरह मानें, ऐसी आसक्ति वाले पुरुष नरक गतिमें जन्म लेते हैं और घोर दुःख भोगते हैं, और वहाँ जाकर वे नारकी जीव दयाहीन हो जाते हैं।

मिथ्यात्वाविरतिक्रोधरौद्रध्यानपरायणाः।
पतन्ति जन्तवः श्वभ्रे कृष्णलेश्यावशं गताः ॥१६८४॥

नरकोंमें जन्म पानेके हेतुभूत अन्तरङ्ग पापोंका वर्णन—ये तो ऊपर कुछ प्रवृत्तिरूप पाप बताये जो कि लोगोंको दिखते है, समझमें आते हैं, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह। अब इस छंदमें बतला रहे हैं कि जो भीतरी पाप हैं उन पापोंसे भी इस जीवको नरक गतिमें जन्म लेना पड़ता है। जैसे मिथ्यात्व। है तो भिन्न पदार्थ, परपदार्थ, और उसे माने निज पदार्थ अर्थात् इस रूप ही मैं हूं ऐसी मान्यता रखना सो मिथ्यात्व है। इस मिथ्यात्वके फलमें जीवको नरकगतिमें जन्म लेना पड़ता है। कोई यह सोचे कि मैं किसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकार बच जाऊं सो बच नहीं सकता।

मिथ्यात्वविषयक और भी मोटी बात देखिये—संसारके समस्त समागम धन वैभव कुटुम्ब आदिक ये सब विनाशीक हैं, इनका वियोग नियमसे होगा। ये सब समागम अनित्य हैं तो इन्हे अनित्य ही जानना चाहिए तब तो सही बात है, किन्तु अनित्यपदार्थोंको यह मनुष्य समझ रहा है कि ये नित्य हैं। कोई मरेगा या धन नष्ट होगा तो दूसरेका मरेगा, मेरा कोई नहीं मरनेका, ऐसा विश्वास लिए हुए लोग बैठे हैं। कभी जीभसे बोलना पड़ता है तो बोला जाता है, पर भीतरमें यह बात श्रद्धापूर्वक नहीं बैठती। तो समस्त समागम अनित्य हैं लेकिन यह मानना कि ये सब नित्य हैं बस यही तो दुःखका कारण है।

जरा सोचिये कि घरमें कोई बड़ा प्यारा कुटुम्बका कठिन बीमार है, उसको उस बीमारीसे ग्रस्त हुए दो तीन वर्ष हो गए, खाटसे भी नहीं उठा जाता, लोगोंका यह विश्वास हो गया कि अब यह बचेगा नहीं, सो एक तो ऐसे व्यक्तिका मरण हो जाय और एक ऐसे व्यक्तिका मरण हो जाय कि जो बड़ा हृष्ट पुष्ट रहा हो और अचानक ही मरण कर गया हो। सो यह बताओ कि इन दोनोंमें से किसके मरण पर अधिक दुःख लोगोंको होगा? दुःख तो ऐसे व्यक्तिके प्रति अधिक होगा जो हट्टा-सट्टा हो और अचानक ही मर जाय। उसका कारण यह है कि एक पुरुषके प्रति तो पहिलेसे ही जानकारी बना रखी थी कि यह अब बचेगा नहीं और एक पुरुषके प्रति पहिलेसे कोई जानकारी न बनायी थी कि अब इसका मरण हो जायगा, इस कारण जिस व्यक्तिके बारेमें बहुत पहिलेसे मरणकी बात जान रहे थे उस व्यक्तिके प्रति तो लोगों को दुःख नहीं होता और दूसरे व्यक्तिके प्रति दुःख होता है। जिस व्यक्तिके बारे में पहिलेसे ही जान रहे थे कि अब यह बच न सकेगा उसका मरण हो जाने पर उसका सम्बन्धी ऐसा ख्याल करता है कि देखो जो मैं पहिले जान रहा था ना कि यह बचेगा नहीं, सो वैसा ही हुआ। इस कारण उसके प्रति दुःख नहीं होता और जिसके बारेमें पहिलेसे जानकारी ही नहीं बनायी हो और उल्टी ही श्रद्धा हो कि यह तो सदा ही रहेगा, उसके वियोगमें दुःख होता है। तो ये बारह भावनाओंमें जो 'अनित्य भावना' भायी जाती है कि समस्त पदार्थ विनाशीक हैं, जो समागम मिले हैं वे नियमसे मिटेंगे, इस भावनाका फल यह है कि जब वियोग होता है तब उसको क्लेश नहीं होता। उस समय यह जान रहा है कि यह तो मैं पहिलेसे ही जान रहा था। जैसे किसी चीजका एक आविष्कार किया जा रहा हो और उसके विषयमें दूसरा जानकारी रख रहा हो और कई बार वह बना चुका हो तो उस पदार्थके बननेपर वह ज्यादा खुश नहीं होता, क्योंकि वह समझ रहा है कि इस तरहसे इसका निर्माण होता है, यह तो हम पहिलेसे ही जानते थे। इसी तरहकी बात है। जिस वियोगको हम पहिले से ही समझ रहे हों उस वियोगमें अधिक क्लेश नहीं होता। अनित्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भावना भानेसे गृहस्थोंको भी कितना अधिक फायदा है ?

असिपत्रवनाकीर्णे शस्त्रशूलासिसंकुले ।
नरकेऽत्यन्तदुर्गन्धे वसासृक्कृमिकर्दमे ॥१६८५॥
शिवाश्वव्याघ्रकङ्काढ्ये मांसाशिविहगान्विते ।
वज्रकण्टकसंकीर्णे शूलशाल्मलिदुर्गमे ॥१६८६॥
संभूय कोष्टिकामध्ये ऊर्ध्वपादा अधोमुखाः ।
ततः पतन्ति साक्रन्दं वज्रज्वलनभूतले ॥१६८७॥

नरक कैसे हैं, कि असिपत्र (तरवार) सरीखे हैं पत्र जिनके, ऐसे वृक्षोंसे तथा शूल तलवार आदि शस्त्रोंसे व्याप्त हैं, अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त हैं, वसा (अपक्वमांस), रुधिर और कीटों से भरा हुआ कर्दम है जिनमें ऐसे हैं, तथा सियाल, श्वान, व्याघ्रादिकसे तथा मांसभक्षी पक्षियोंसे भरे हुए हैं, तथा वज्रमय कांटोंसे शूल और शाल्मलि वृक्षोंसे दुर्गम भरे हुए हैं, अर्थात् जिनमें गमन करना दुःखदायक है, ऐसे नरकोंमें बिलोंके संपुटमें उत्पन्न होकर वे नारकी जीव ऊंचे पाँव और नीचे मुख चिल्लाते हुए उन संपुटों से (उत्पत्तिस्थानोंसे) वज्राग्निमय पृथिवीमें गिरते हैं ।

अयःकण्टककीर्णासु द्रुतलोहाग्निवीथिषु ।
छिन्नभिन्नविशीर्णाङ्गा उत्पतन्ति पतन्ति च ॥१६८८॥

उस नरकभूमिमें वे नारकी जीव छिन्नभिन्न खंड खंड होकर बिखरे हुए अंगसे पड़कर बारंबार उछल उछल के गिरते हैं, सो कैसी भूमिमें गिरते हैं कि जहाँ पर लोहेके काँटे बिखरे हुए हैं और जिनमें गलाया हुआ लोहा और अग्नि है ।

दुःसहा निष्प्रतीकारा ये रोगाः सन्ति केचन ।
साकल्येनैव गात्रेषु नारकाणां भवन्ति ते ॥१६८९॥

जो रोग असह्य हैं, जिनका कोई उपाय (चिकित्सा) नहीं है, ऐसे समस्त प्रकारके रोग नरकोंमें रहने वाले नारकी जीवोंके शरीरमें रोमरोमप्रति होते हैं ।

अदृष्टपूर्वमालोक्य तस्य रौद्रं भयास्पदम् ।
दिशः सर्वाः समीक्षन्ते वराकाः शरणार्थिनः ॥१६९०॥

फिर वे नारकी जीव उस नरकभूमिको अपूर्व, रौद्र (भयानक) देखकर किसीकी शरण लेनेकी इच्छासे चारों तरफ देखते हैं, परन्तु कहीं कोई सुखका कारण नहीं दीखता और न कोई शरण ही प्रतीत होता है । वहाँ उनको जो घोर वेदना होती है, उसको नारकी पाते ही

नोटः—पृष्ठ संख्या १८ से २० तक एक पृष्ठमें ही में डाल दिये, क्योंकि भूल हो गई है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाते हैं।

न तत्र सुजनः कोऽपि, न मित्रं न च बान्धवाः।
सर्वे ते निर्दयाः पापाः क्रूरा भीमोग्रविग्रहाः ॥१६६१॥

निर्दय, पापी, क्रूर नारकियोंकी वराकता - उन नरक भूमियोंमें कोई भी सज्जन पुरुष नहीं नजर आते। बड़ी भयानक पृथ्वी है वह, जहाँ गरमी है तो इतनी अधिक है कि लोहका पिण्ड भी गल जाय, ऐसी कठिन गरमीको भी वे नारकी जीव सहन करते हैं। ऐसे ही ठंडकी वेदना भी वहाँ ऐसी है कि लोह पिंड भी पिघल कर पानी जैसे बन जाते हैं इस तरहकी तीव्र ठंडकी वेदना भी वे नारकी जीव सहन करते हैं। बड़े-बड़े भयानक देहधारी क्रूर पशु हैं (हैं वे वैक्रियक शरीरधारी नारकी ही) जो कि दूसरे नारकी जीवोंको सताते हैं, एक नारकी जीव दूसरे नारकी जीव पर टूट पड़ता है, खण्ड-खण्ड कर देता है। तो वे नारकी जीव निरन्तर दुःखी रहा करते हैं, उनको कभी भी किसी भी प्रकारका चैन नहीं है। वे नारकी जीव पापके उदयके वशीभूत होकर यों दुःख सहते हैं। वे सभी नारकी पापी हैं—गम खाने वाले कोई नहीं हैं। वे निर्दय हैं, क्रूर हैं, भयानक तीक्ष्ण उनके देह है, उग्र नारकी जीवोंको कभी किसी प्रकारका किसीसे कोई सहारा नहीं मिलता। देखिये यह जीव भूल तो जरासी करता है और कष्ट कितने भोगने होते हैं? जो अपना स्वरूप नहीं है उसे माना कि यह मैं हूं, की इतनी सी भूल और फल कितना भोगना पड़ा कि चौरासी लाख योनियोंमें इस जीवको जन्म मरण धारण करना पड़ता है। इस प्रसंगमें एक बात और विलक्षण देखो कि जिन गतियोंमें सुखके बड़े साधन है उन गतियोंसे जीवको निर्वाण नहीं होता। जैसे देवगति, भोगभूमियाके लोग जिनको कोई कष्ट नहीं है उनको निर्वाण प्राप्त करनेका अवसर नहीं मिलता है, नारकी जीव यद्यपि घोर दुःख सहते हैं पर ऐसा उदय है कि उन्हें दुःखी ही होना पड़ता है, ऐसा कठिन पाप है। सबसे महान पाप तो मोह है, मिथ्यात्व है, इनका आश्रय करके उदय होता और खूब उदयभर वे अपना फल भोगते।

सर्वे च हुण्डसंस्थानाः स्फुलिङ्गसदृशे क्षणाः।
विवर्द्धिताशुभध्यानाः प्रचण्डाश्चण्डशासनाः ॥१६६२॥

नारकियोंकी अशुभ ध्यानिता व विड्रूपता—ये नारकी जीव सभी हुंडक संस्थान वाले हैं। हुंडक संस्थान कहते हैं बेढंगे शरीरको। नारकियोंके बेढंगे शरीर हैं। अभी हम आपके कितने सुडौल शरीर हैं, पर कोई अंग कैसा ही हो, कोई कैसा ही हो तो वह हुंडक संस्थान कहलाने लगता है और भी देखो, उन नारकी जीवों की आँखोंसे अग्नि बरषती है। ऐसी अत्यन्त गरमीका कष्ट भोगने वाले नारकी वहां नरकोंमें जन्म लेते हैं, दुःखी होते हैं। वे नारकी जीव निरन्तर संक्लेश परिणाम बनाये रहते हैं, उनके क्रोध कषाय अत्यन्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रचंड है। उनका शासन भी प्रचण्ड है। बड़ेसे बड़ा शासन करने वाला भी कोई नारकी हो तो भी उसके पुण्य इतना नहीं है कि वह उस पुण्यके फलमें कुछ सुख प्राप्त कर सके, ऐसा नहीं है कि उस शासन कालमें वह कुछ शान्ति प्राप्त कर सके। वे नारकी जीव निरन्तर अशुभ परिणाम बनाये रहते हैं। सबसे अधिक दुःख तो है इस मनका। धन वैभवके कम होनेका या अपमान आदिक होनेका उतना बड़ा क्लेश नहीं होता जितना क्लेश मनके सोच लेनेका क्लेश होता है। तो वहाँ गर्मीके दिनोंमें गरमी अत्यन्त प्रचण्ड है, सर्दीके दिनों में सर्दी अत्यन्त प्रचण्ड है, उन नारकियोंका शासन भी प्रचण्ड है और उनके क्रोध कषाय भी प्रचण्ड है, तो निरन्तर ऐसी ही घटनाओंके बीच उन नारकियोंका समय कटता है, ऐसी ही उन नारकियोंकी निरन्तर प्रक्रियाएँ चलती हैं जिनके कारण उन नारकी जीवोंको निरन्तर दुःख भोगना पड़ता है।

तत्राक्रन्दरवैः सार्द्धं श्रूयन्ते कर्कशाः स्वनाः।
दृश्यन्ते गृध्रगोमायुसर्पशार्दूलमण्डलाः ॥१६६३॥

नारकियोंका घोर आक्रन्दन – उस नरकभूमिमें चारों ओरसे रोनेके, पुकारनेके कर्कश शब्द सुनाई पड़ते हैं, ऐसे अधोलोकमें जहाँ कि भयानक दुःख है, स्याल, सर्प, सिंह आदिक पशु यद्यपि वहाँ नहीं हैं फिर भी वे नारकी जीव विक्रिया करे ऐसे भयानक शरीरोंको धारण करते हैं और दूसरे नारकी जीवोंको दुःख देते हैं। तो ऐसा कुछ उनके पापका उदय चलता है कि उनको निरन्तर आकुलित बने रहना पड़ता है। वे नारकी जीव कल्पनाएँ करके अपने आपमें बड़ी आकुलता मचाते रहते हैं। सुननेमें यद्यपि ऐसा लगता होगा कि हैं कहाँ नारकी, उसके शिरपर कहाँ आ गये, कल्पनाएँ करके बड़े कष्ट ही भोगते हैं।

घ्रायन्ते पूतयोगन्धाः स्पृश्यन्ते वज्रकण्टकाः।
जलानि पूतिगन्धीनि नद्योऽसृग्मांसकर्दमाः ॥१६६४॥

नरकभूमियोंकी घोर दुर्गन्धका महाकष्ट—जिस नरकभूमिमें दुर्गन्ध सूँघनी पड़ती है और वज्रमय कांटोंसे छिदना पड़ता है, जहाँ शरीर दुर्गन्धमय है, जहाँ सर्प बिच्छू आदिक भयंकर जीव हैं, ऐसा घोर दुःखोंका घर जो नरक है वहाँपर यह नारकी जीव जन्म लेता है। बड़े आरम्भ परिग्रहोंमें इस जीवने अपना चित्त रमाया था, पाप पापमें ही उसकी विशेष प्रवृत्ति थी, कृष्ण लेश्याके वशीभूत होकर इस नरक गतिमें आया और यहाँके घोर दुःख सहने पड़े, इस प्रकारका चिन्तन कर रहा है ऐसा नारकी जो कि उन नारकियोंमें कुछ विवेक रखता है। उन नरकोंका जल दुर्गन्धमय है, मांस रुधिरका कांदा है जिसमें ऐसी नदियां बहती हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चिन्तयन्ति तदालोक्या रौद्रमत्यन्तशङ्किताः ।
केयं भूमिः क्व चानीतः के वयं केन कर्मणा ॥१६६५॥

दुःखपीड़ित नारकियोंका चिन्तन— उस नरकमें वे नारकी जीव रौद्र भयानक स्थान पाते हैं, अत्यन्त शंकित होकर विचार करते हैं कि अरे यहाँ कहाँ आ गए ? कोई लोग अलंकारमें यों बताते हैं कि जैसे जब मनुष्य उत्पन्न होता है तो वह यों शब्द बोलता है—कहाँ, कहाँ, कहाँ । वह इसी बातसे संगत है कि मैं किस जगह आया । तो ऐसे ही वह नारकी जीव चिन्तन करता है कि मैं कहाँ आया । जब उतने दुःख कभी देखा नहीं, भोगा नहीं तो झट वह चिग्घाड़ पड़ता है अरे मैं किस जगह आया, यहाँ कोई मेरी रक्षा करने वाला भी है क्या ? यों बोलता है, पर उसको वहाँ शरण कुछ नहीं मिलता है । ऐसे नारकी जीवके उदयमें हम आप सागरोंपर्यन्त आयु पाकर अपना समय दुःख ही दुःखमें गुजारते रहते हैं । ऐसा जानकर संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त अवश्य होना चाहिए और ज्ञानबल बढ़ाकर अपने स्वरूपपर दृष्टि देकर अपने आपको सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र अनुभवना चाहिए, अन्यथा इस संसारमें कोई भी अपना शरण न होगा और दुःख ही दुःखमें अपना समय व्यतीत करना होगा । अपना परिणाम निर्मल न रखें, इस प्रकारकी अहिंसामय चर्या हो तो फिर वहाँ किसी भी प्रकारके संकट नहीं बसते और फिर जन्म मरणके दुःख नहीं सहने पड़ते हैं ।

ततो विदुर्विभङ्गात्स्वं पतितं श्वभ्रसागरे ।
कर्मणाऽत्यन्तरौद्रेण हिंसाद्यारम्भजन्मना ॥१६६६॥

नारकियोंको फल भोगते समय कृत पापोंका स्मरण—आत्माकी सुधसे रहित विषयोंमें आसक्त व्यसनी रौद्र परिणाम वाले पुरुष मरकर नरकमें जन्म लेते हैं । वहाँ नरकोंमें जो नवीन नारकी उत्पन्न हुए हैं वे उत्पन्न होनेके बाद बड़े शंकित हो करके विचारते हैं, क्योंकि अपरिचित स्थान है, भयानक रौद्र स्थान है तो वे शंकित होकर भ्रमण करते हैं और सोचते हैं–अरे यह भूमि कौनसी है जिस भूमिपर पड़ते ही हजारों बिच्छुवोंके काटने जैसा दुःख होता है, तो यह बात कोई गलत नहीं है । जैसे कभी अपने ही मकानमें बिजली का करेण्ट छू जाय तो मकानमें पैर धरना मुश्किल हो जाता है, तो वहाँकी जमीन ऐसी ही करेण्ट वाली निरन्तर रहती है । तो यह भूमि कौनसी है और हम यह कौन हैं ? और इन भयानक कर्मोंने, इन खोटे कर्मोंने लाकर यहाँ पटक दिया है । ज्ञानी पुरुष संस्थानविचय धर्मध्यानमें लोककी रचनाका विचार कर रहा है । लोक कितना बड़ा है, उसमें कहाँ-कहाँ कैसी-कैसी रचनाएँ हैं ? इस समय अधोलोककी रचनाका विस्तार चल रहा है । फिर वे कुअवधिज्ञानसे जानते हैं । जो उनके अवधिज्ञान हुआ है उस ज्ञानसे वे जानते हैं । ये हिंसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदिकके काम किये, बड़े आरम्भ किये, उन आरम्भोंसे उत्पन्न हुआ जो खोटा रौद्र परिणाम है उससे हम नरक समुद्रमें आये।

आर्त रौद्रध्यानका फल—खोटे ध्यान ८ होते हैं। चार आर्तध्यान और ४ रौद्रध्यान। आर्तध्यान है इष्टवियोगज। इष्ट चीजका वियोग होनेसे जो उस इष्टके संयोगके लिए तड़फन होती है, वेदना होती है उसको इष्टवियोगज कहते हैं। अनिष्टसंयोजक—अनिष्ट पदार्थ—कोई बैरी विरोधी किसी भी प्रकारसे अनिष्ट हो, उसका संयोग हो जाय तो उसके वियोगके लिए जो ध्यान चलता है उसे अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कहते हैं। वेदनाप्रभव आर्तध्यान—शरीर में कोई रोग आदिक की वेदना हो जाय उस वेदनासे जो ध्यान बनता है वह वेदनाप्रभव ध्यान है और चौथा आर्तध्यान है निदान। आगामी भोगोंकी इच्छा करना, आशा बाँधना ये सब निदान हैं। तो इन चार प्रकारके ध्यानोंमें जीवको खेद रहता है। ये तो चार आर्त-ध्यान हुए और रौद्रध्यान चार सुनिये—हिंसानन्द, हिंसा करते हुए आनन्द मानना, किसी ने हिंसा की हो, किसी जानवरका मरण हुआ हो तो उसमें आनन्द मानना, मृषानन्दमें झूठ बोलनेमें मौज मानना, दूसरोंसे झूठ बुलवाना, झूठ बोलने वालेकी तारीफ करना और उसमें मौज मानना सो मृषानन्द है, चौर्यानन्द—चोरी करके आनन्द मानना, किसीकी चीज चुरा ले जाय, किसीपर डाका डाले और चोरी हो जाय तो उसे सुनकर आनन्द मानना चौर्या-नन्द है। और परिग्रहानन्द—विषयोंके जो साधन हैं उन साधनोंके रक्षण और संग्रह करने में आनन्द मानना सो परिग्रहानन्द है। अब आप देखिये कि आर्तध्यानमें तो खेद रहता है और रौद्रध्यानमें जीव मौज मानता है, मगर रौद्रध्यानके मौजसे यह जीव नरकमें जन्म लेता है। तो नरकोंमें जो जीव उत्पन्न हुए हैं उनके अवधिज्ञान हुआ करता है। देव और नारकी दो भव ऐसे हैं कि जिन भवोंमें जन्म लेकर नियमसे अवधिज्ञान होगा। ज्ञानी है तो सम्यक् अवधिज्ञान होगा और अज्ञानी है तो खोटा अवधिज्ञान होगा। तो नारकी जीव वहाँ जन्म लेनेके बाद विचार कर रहा है—ओह ! हमने पूर्वजन्ममें हिंसाके कार्य किया, अनेक बाह्य परिग्रहोंमें बुद्धि रखी, बड़ी ममता की, लोगोंपर अन्याय किया, नाना व्यसन किया, उनके फलमें आज हम इस नरकरूपी समुद्रमें पड़े हैं।

नरकोंके अस्तित्वकी सिद्धि—देखिये नरक स्वर्गोंकी बात केवल कल्पनाकी बात नहीं है। जैसे कि लोग कह देते हैं कि लोगोंको बहकानेके लिए केवल बातें गढ़ दी गई हैं। नरक और स्वर्ग बराबर हैं, इसे समझनेके लिए पहिले तो ऐसा निर्णय रखिये कि जितना आगममें प्रतिपादन है वह सब दो प्रकारका प्रणीत है—एक तो ऐसा कि जिसे हम निश्चय से अपरिणामी सिद्ध कर सकते हैं और एक केवल ऐसा कि जिसमें युक्ति और अनुभव नहीं चलता किन्तु परोक्षरूप है। तो उनमेंसे जिनमें हमारी युक्ति चल सकती है, कानूनसे सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर सकते, अविनाभावसे बता सकते, ऐसा तत्त्व जब सही बनता है तो जिसने यह प्रतिपादन किया उसीने परोक्षभूत नरक स्वर्गोंका प्रतिपादन किया तो उसकी श्रद्धा और ऐसी हो जाती है। सर्वज्ञ देवकी भक्तिमें तत्त्व श्रद्धानकी बातको सही उतारनेपर कि स्वर्ग नरकका भी वर्णन बिल्कुल सत्य है। वीतराग ऋषि संतोंको झूठ बोलकर कौनसा लाभ लेना है ? यथार्थ प्रतिपादन करना वीतराग ऋषि संतोंका प्रयोजन होता है। अब जरा थोड़ा ऐसा भी सोच लीजिए कि आखिर यहाँ पृथ्वी है। इस पृथ्वीके नीचे केवल यह पृथ्वी हो और नरक हो तो उसमें बाधा क्या आयी, खण्डन करने वाले हो क्या ? लोग तो यह कहते हैं कि आंखों दिखाई नहीं देता, न दिखाई दे, मगर उसके सद्भावमें बाधा क्या है ? यदि हो तो उसमें बाधा क्या ? फिर दूसरे जो लोग यह पाप करते हैं, हजारों लाखों पशुवोंके शिकार करते हैं, उन्हें बड़ी बुरी तरह बेमौत मार डालते हैं, अनेक प्राणियोंको सताते हैं, अनेक प्राणियों को मार भी डालते हैं, तो आप ही बताइये कि इस ही दुनियामें उनको दण्ड देनेका क्या उपाय है ? फाँसी लगा दी गई तो उसमें एक बार ही तो मरण हुआ। पर जिन कसाइयों ने हजारों लाखों पशुवोंको मारा, लाखों प्राणियोंका दिल दुखाया ऐसे मनुष्योंको केवल फांसी लगायी जाय तो वह पर्याप्त दण्ड नहीं मिला। लाखों मनुष्योंको, पशु पक्षियोंको सतानेसे जो पाप होता है उसका फल ऐसा होता है कि जैसे अनगिनते बार जीव मरे और मरकर भी मरे नहीं, किन्तु वे शरीरके खण्ड-खण्ड फिर मर जायें, फिर ज्योंका त्यों शरीर बने इस प्रकारका भव हो तो यहांके इन अनेक पापोंका दण्ड प्राप्त किया जा सकता है। वही चीज है नरक।

घोर पापोंके फलमें घोर नरकवेदना--उन नरकोंमें पहुंचे हुए ये प्राणी विचार कर रहे हैं कि अहो ! हमने बहुत आरम्भ किया, बहुत परिग्रह किया, बहुतसे प्राणियोंको सताया, झूठ बोला, चोरी की, परस्त्री वेश्या आदिक पर कुदृष्टि की, परिग्रहमें ममता रखी, उन सब पापोंके फलमें आज नरकके दुःख भोगने पड़ रहे हैं। अच्छा नरकोंकी बात तो जाने दो, यहीं देख लो, जो मनुष्य अपना खोटा विचार करता है उस खोटे विचारके कारण उसे तत्काल हैरानी होती है और उसका सिल्सिला ऐसा बढ़ जाता है कि उससे भविष्यमें भी हैरानी होती है, और जो सही बात विचार रखा, शुद्ध परिणाम रखा उसको हैरानी नहीं है। जैसे कोई पुरुष किसीको सतानेका परिणाम करे, किसी की निन्दाका परिणाम करे, किसी को दुर्वचन बोलनेका प्रयत्न करे तो उसे अपने चित्तमें पहिले कितनी हैरानी लेनी पड़ती है, कितना अपनेको दुःखी करना पड़ता है, तब जाकर दूसरोंको दुःख पहुंचानेका यत्न होता है। कोई पुरुष दूसरेका सत्कार करे, सम्मान करे तो उसे कोई श्रम नहीं करना पड़ता। बड़ी प्रसन्नतासे आराममें वह सब बातोंको कर लेता है। तो खोटे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणामोंका फल तो इस ही भवमें इस जीवको यही प्राप्त हो जाता है, फिर जो विशेष खोटे भाव हैं उनमें नारकादिक आयुका बंध होता है और ऐसा जीव मरकर नरकमें पहुँचता है, और अनगिनते वर्षों तक महान दुःख भोगता है। अब सोच लीजिए कि यहाँ जो समागम पाया है तो वह कौनसा खास समागम है, कब तक रहने वाला है, समागमके समयमें भी कौनसा आनन्द भोग लिया जाता है ? क्षोभ चिन्ता, शोक आदिक नाना प्रकार की विडम्बनाएं बनती हैं। इन समागमोंमें जो आसक्त रहते हैं ऐसे पुरुषोंको नरक गतिमें जाना पड़ता है।

ततःप्रादुर्भवत्युच्चैः पश्चात्तापोऽपि दुःसहः ।
दहन्नविरतं चेतो वज्राग्निरिव निर्दयः ॥१६६७॥

कृतपापके फलके स्मरणमें नारकियोंका पश्चात्ताप—इसके बाद नारकी जीवोंको ऐसा कठिन दुःसह पश्चाताप प्रकट होता है कि जो संताप बज्राग्निके समान निर्दय होकर चित्तका दहन करता हुआ इसे दुःखी करता है। जैसे यहां कोई भूल कर जाय तो भूल तो कर चुका, उस भूलके बाद इसे बड़ा पश्चाताप होता है और चित्तमें दाह उत्पन्न होती है कि मैंने कैसी कठिन भूल कर दी, इसी तरह यहाँ समझो कि ये प्राणी भूल तो कर गए, असंयममें रहे, नाना प्रकारके खोटे व्यसनोंमें रहे, अपनी सुधसे बिल्कुल दूर रहे, निर्दयता बसी, रौद्रध्यान बना, भूल तो की, उसके फलमें यह जीव नारकी बनता है, ऐसी नरकगतिमें यह दुःसह क्लेश भोगता है। वहाँ एक नारकी दूसरेको मारनेके लिए कहीं बाहरसे कोई शस्त्र नहीं लाता, हाथ उठाया और जैसे संकल्प किया कि मैं तलवार मारूँ तो हाथ ही तलवार बन जाता है। यह एक उनकी खोटी विक्रिया है। किसी दूसरे नारकीको सांप बिच्छू बन कर सताना है ऐसी भावना बनी तो झट वे साँप बिच्छू आदि बनकर उसे सताने लगते हैं। जहाँकी भूमि इतनी दुःसह वेदना वाली है कि बताया है कि सहस्र बिच्छू भी डसें तो भी उतनी वेदना नहीं होती जितनी वेदना नरककी भूमिको छूने मात्रसे होती है। जहाँ नारकियोंको एक दाना भी नहीं मिलता, और भूख इतनी है कि सारी भूमिका अनाज खा लें तो भी भूख नहीं मिटती। बतावो यहाँ तो रात्रिका ही भोजन नहीं छोड़ सकते, दिनमें एक दो बार अच्छी तरह खाकर भी बिना खाये रात काटी नहीं कटती। एक कल्पना ऐसी लोगोंकी बन गई है कि दिन ही दिन खानेका समय नहीं मिलता, कुछ परिस्थितियां ऐसी हैं कि जिनके कारण रात्रिको खाना ही पड़ता है। अरे यह बात उनकी ठीक नहीं है। एक बात तो यह है कि दिनमें एक दो बार अच्छी तरह खा लेने पर फिर खानेकी कोई जरूरत ही नहीं रहती, स्वास्थ्यमें कोई कमी आती नहीं, बल्कि दिनमें एक दो बार खाने पर स्वास्थ्य अच्छा रहता है। रात दिन कई बार खा पी कर तो स्वास्थ्य और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बिगड़ जाता है। बाजारकी सड़ी गली चीजें, दही, जलेबी, रबड़ी आदि अभक्ष्य चीजें सर्वदा त्यागने योग्य हैं, जिन चीजोंमें त्रस जीवोंका घात होता है ऐसी चीजें सर्वदा त्याज्य हैं। लोग तो रात दिन जो चाहे सो खाते पीते रहते हैं. उस खाने पीनेमें बड़ा मौज मानते हैं वह खाना पीना छोड़ नहीं सकते, लेकिन ऐसे असंयमके फलमें, ऐसी खोटी वासनाओंके फलमें नरकगतिमें जन्म हो गया तो फिर वहाँ क्या हाल होगा ? अभी जरा पुण्यका उदय है सो जरा भी कष्ट नहीं सहा जाता। यहीं देख लो अनेकों मनुष्य जिनके पापका उदय है सभी दुःख पाते हैं। तो जैसे वे मनुष्य हैं ऐसे ही ये पुण्य वाले मनुष्य हैं। हाथ, पैर पेट, पीठ आदि सब एकसे हैं एकसा ही सभीका जन्म और मरण होता है। यहीं देख लो मनुष्य कष्ट पाते कि नहीं। पुण्यके उदयमें मौज माननेकी धुनि ऐसी बनी हुई है कि बड़े नखरे करते हैं, जरा भी दुःख नहीं सहन कर सकते, संयम साधना नहीं कर सकते। उसके ही फलमें नरकगतिमें जन्म होता है और उनके चित्तमें ऐसी दाह पैदा होती है जैसी कि बज्राग्निकी दाह पैदा होती है।

मनुष्यत्वं समासाद्य तदा कैश्चिन्महात्मभिः।
अपवर्गाय संविग्नैः कर्म पूज्यमनुष्ठितम् ॥१६६८॥

तिर्यग्गतिके जीवोंकी बराकताका चित्रण—संस्थान विचय धर्मध्यानके प्रसंगमें नारक भवमें नारकी क्या चिन्तन करता है—यह चिन्तन चल रहा है। कोई पुरुष कोई महान आत्मा किसी पुण्यके योगसे मनुष्यभवको प्राप्त करता है। देखिये सभी जीवोंपर दृष्टि डालकर मनुष्यका भव कितना श्रेष्ठ है ? ये वृक्ष पृथ्वी आग वायु. जल, वनस्पति फल फूल ये भी तो जीव हैं। इन जीवोंकी अपेक्षा मनुष्यमें कितनी श्रेष्ठता है ? ये बेचारे जड़ जैसे हैं, जड़ नहीं हैं वे, हैं एकेन्द्रिय, मगर कोई क्रिया नहीं, कोई रचना नहीं, कोई विचार नहीं, बोल सकते नहीं, हिलडुल सकते हैं नहीं, जहाँ खड़े हैं, जैसे बने हैं वैसे पड़े हैं अर्थात् वे जड़ जैसे लगते हैं. कितनी निम्न स्थिति है उन एकेन्द्रियोंकी ? उनसे तो मनुष्यभव कितना श्रेष्ठ है। कभी यह जीव दो इन्द्रिय भी हुआ, कीड़ा मकोड़ा हुआ तो वहाँ भी क्या विशेषता पायी ? यद्यपि कुछ इन्द्रियका ज्ञान बड़ा है मगर उससे लाभ क्या ? आहार, भय, मैथुन, परिग्रह—इन चार संज्ञारूपी ज्वरोंसे वे पीड़ित हैं। उनको कुछ आत्माकी सुध भी नहीं है, ऐसे कीड़े मकौड़े बनकर भी कुछ लाभ नहीं पाया। पशु पक्षी हुए तो उनका भी जीवन देख लो। पशुवोंपर कौन दया करता है ? आज कुछ लोग कहते हैं कि गऊ बध बंद करो। ठीक है। और कोई लोग ऐसा सोचते हैं कि अगर ये गाय बैल अधिक बढ़ जायेंगे तो फिर ये कहाँ रहेंगे, क्या खायेंगे ? देशमें वैसे ही भुखमरी है। तो प्रगट दिख रहा हैं कि जब तक गाय दूध बछड़ा देती है, बैल भी जब तक खेती बाड़ीके काम आता है तब तक तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लोग उन्हें अच्छे ढंगसे रखते हैं, उनकी अच्छी प्रकार सेवा करते हैं, पर जब वे किसी कामके नहीं रहते, वृद्ध हो जाते हैं तो लोग उन्हें कसाइयोंके यहाँ बेच देते हैं और उनका वहां बुरी तरहसे मरण किया जाता है। यह तो हालत है इन पशुवोंकी। ये भैंसे देखो कैसे जोते जाते हैं ? कितना उनको मारा जाता है, वे जीभ निकाल देते हैं, हांफते जाते हैं, बहुत बड़ा बोझा लादे जाते हैं, गले से खून भी टपकता है फिर भी कोड़ोंसे पिटते जाते हैं। कौन उन पर दया करता है ? कुछ और बूढ़े हुए काम लायक न रहे तो कसाइयोंके यहां बेच दिये जाते हैं। तो देखो उनकी कैसी दुर्दशा हो रही है। तो उन पशु पक्षियोंके जीवन के मुकाबले यह मनुष्यभव कितना श्रेष्ठ भव है ? ये पशु पक्षी अपने मनकी बात भी दूसरे से नहीं बता सकते, दूसरोंके मनकी बातको जान भी नहीं पाते, उनके अक्षरात्मक बोली नहीं है, वहीं बांय बांय चें चें बोलकर अपना जीवन गुजारते हैं।

मनुष्यभवकी विशेषता मनुष्यको देखो — कितना हाव भाव, कितना अलंकार, कैसा कैसा साहित्य, कैसी कैसी रचनाएं, बड़ी बड़ी कलापूर्ण कविताएँ ये सब रच डालते हैं। तो मनुष्यकी बुद्धि। मनुष्यका जन्म उन पशु पक्षियोंसे कितना श्रेष्ठ है। ऐसे मनुष्यभव पाना जरा सोचिये तो सही कितने विशिष्ट पुण्यका फल है ? अब यदि हम उसी पुण्य फल पर प्रहार करते है तो जरा विचार तो करो कि हमारी क्या गति होगी ? यदि हम अशुभ भावमें रहते हैं तो नियमसे हमारी दुर्गति होगी। इस मनुष्यभवको पाकर हमें अपनी ऐसी सम्हाल करना चाहिए कि जिस सम्हालसे हमें आगे इससे भी अच्छी गति मिले, इससे भी अच्छे प्रसंग आगे मिलें। हम इस स्थितिसे कहीं नीचे न गिर जायें ऐसी चित्तमें धारणा रखना चाहिए। देखिये संसारमें हम आप जीवोंका कोई दूसरा रक्षक नहीं है, खूब विचार कर लीजिए, अपने जीवनके अनुभवसे भी देख लीजिए। कदाचित् कोई मित्रादिक हमारी रक्षा करने वाले भी बनें तो वे इसलिए हमारे रक्षक बनते हैं कि हम सदाचारी हैं। तो कितने पुण्ययोगसे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ ? कदाचित् यह जीव मनुष्यभव पाता है तो ज्ञानी बने, विरक्त बने और मोक्षके लिए पवित्र आचरण करे। यदि पशु पक्षियोंकी तरहसे ही अज्ञानतापूर्वक अपना जीवन बिता दिया तो मनुष्यभव पानेसे लाभ कुछ भी न पाया, बल्कि यहाँसे मरण करके फिर निम्न गतियोंमें जाना होगा।

मनुष्यभव पाकर महान् आत्माओं द्वारा महान् कार्यका यत्न—इस मनुष्यभवमें आकर तो कोई ऐसा काम करना है जो किसी भी भवमें नहीं किया जा सकता। वह काम क्या है ? ज्ञान और वैराग्य। धर्मकी बातको आप दो भागोंमें बांट लीजिए—ज्ञान और वैराग्य। जिन मनुष्योंको शरीरादिक परद्रव्योंसे भिन्न अपने आत्मस्वरूपका ज्ञान नहीं है उन मनुष्योंसे धर्मपालन नहीं हो सकता। धर्म किसे करना है, धर्म क्या चीज है, धर्मका क्या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फल है और यह धर्म किया जा सकता है या नहीं, ये सब बातें जिनके निर्णयमें नहीं हैं वे धर्मपालन क्या करेंगे ? धर्म क्या चीज है ? स्वभावका नाम धर्म है। हमारा स्वभाव क्या है ? जानन और देखनकी स्थिति रहना। ज्ञाताद्रष्टा रहना, केवल चैतन्यस्वरूप रहना, यही है हमारा स्वभाव। हम अपनेको मात्र चैतन्यस्वरूप प्रतीतिमें लायें। मैं चैतन्यमात्र हूं, मेरा कहीं और कुछ नहीं है। जो भी समागम मिले हैं वे धर्मके लिए मिले हैं, सभी विनाशीक हैं, भिन्न पदार्थ हैं, उनसे मेरा कुछ भी सुधार बिगाड़ नहीं है, मेरा सुधार बिगाड़ मेरे ही भावोंसे हुआ करता है, मेरा रक्षक मैं ही हूं, दूसरा कोई नहीं। जब मेरा कोई रक्षक नहीं तो मैं किसको प्रसन्न करनेके लिए अपनी धुनि बनाऊँ ? लोग तो इस लोकमें अपना यश, अपनी नामवरी बढ़ानेकी धुनिमें रहते हैं पर जरा विचार तो करो कि वे लोग कौन हैं ? अरे वे स्वयं कर्मोंके प्रेरे मलिन जीव हैं, उनमें यशकी वाञ्छा करनेसे क्या लाभ ? प्रथम तो जिनमें अपना नाम चाहते हैं वे लोग इसे कुछ जानते नहीं, और जानते भी हैं तो इस शरीरपिण्डको ही जानते हैं। आत्मा तो इस शरीरसे न्यारा, रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित, अपने ही ज्ञानादिक गुणोंमें तन्मय है, ऐसी चैतन्यमात्र वस्तुको तो वे कोई लोग जानते नहीं, अगर वे इसे जान जायें तो वे खुद ज्ञानी हो गए। उनकी दृष्टिमें फिर वह व्यक्ति न रहे, एक चैतन्यस्वरूप रहा। तो कोई मुझे पहिचानने वाला नहीं है। मैं किसे प्रसन्न करूँ ? यह सर्व मायाजाल है। प्रसन्न करें तो एक अपने आपको करें। अपने उपयोगको ऐसा निर्मल बनायें, अपने आपके स्वभाव की ऐसी विशिष्ट दृष्टि बनायें कि ज्ञान बढ़े। ज्ञानरूप रहूं मैं, केवल जाननहार रहूँ तो यह ज्ञान धर्मपालन है। मैं यथार्थ जान रहा हूं तो मैं धर्मपालन कर रहा हूं। दूसरा धर्मपालन है वैराग्य। जिन्हें मैंने पर समझा, अनात्म तत्त्व समझा उनसे राग न रहना चाहिए, उनसे प्रीति करनेमें क्या लाभ है, वे सब बाह्य चीज हैं ? तो परवस्तुवोंसे वैराग्य रहे और अपने आपके स्वरूपका ज्ञान रहे, बस यही तो धर्मपालन है। अब जो लोग धर्मके लिए श्रम कर रहे हैं उन्हें अपने आपसे पूछना चाहिए कि हम ज्ञान और वैराग्यपर चल रहे हैं क्या ? अगर ज्ञान और वैराग्यका कोई अंकुर नहीं उठा तो समझें कि हम धर्मपालनके पात्र नहीं हैं। शांति के लिए हमें ज्ञान और वैराग्यका यत्न करना चाहिए। सो वैराग्य तो होगा अपने आप। कोई बनावटसे नहीं होता, पर ज्ञानका तो हम प्रयत्न कर सकते हैं, हम वस्तुस्वरूपका अभ्यास करें, कुछ जानकारी रखें। सही-सही जानें, अपना ही ज्ञान मेरे हितका साधक है। हम ज्ञानाभ्यास में अधिकाधिक यत्नशील हों तो वह ज्ञानाभ्यास हमारे कल्याण का हेतु बनेगा।

विषयाशामपाकृत्य विध्याप्य मदनानलम्।
अप्रमत्तैस्तपश्चीर्णं धन्यैर्जन्मार्तिशान्तये ॥१६६९॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपसर्गाग्निपातेऽपि धैर्यमालम्ब्ये चोन्नतम् ।
तैः कृतं तदनुष्ठानं येन सिद्धं समीहितम् ॥१७००॥
प्रमादमदमुत्सृज्य भावशुद्धया मनीषिभिः ।
केनाप्यचिन्त्यवृत्तेन स्वर्गो मोक्षश्च साधितः ॥१७०१॥
शिवाभ्युदयदं मार्गं दिशन्तोऽप्यतिवत्सलाः ।
मयावधीरिताः सन्तो निर्भर्त्स्य कटुकाक्षरैः ॥१७०२॥

नरकजन्महेतुओंके स्मरण होनेपर पूर्वकृत पापका संताप— संस्थानविचय धर्मध्यान का प्रकरण चल रहा है । इसमें लोककी रचनावोंका चिन्तन चल रहा है । कितना बड़ा लोक है, कैसी कैसी रचनाएँ हैं ? इस समय अधोलोकके चिन्तनमें नारकी जीव नरकमें उत्पन्न होकर यह सोच रहा है कि ओह ! मैं यहाँ किस भूमिपर आ गया हूं ? सारी भूमि भयानक दिखती है । थोड़ी देरमें जब कुछ प्रतिबोध होता है तो वहाँ ज्ञानी विचारता है कि अहो ! यह सब धर्मसे विमुख होनेका फल है । ऐसे साधु संतोंकी वाणी मुझे बड़ी कटुक लगी, जिन साधु संतोंने विषयोंकी आशा दूर कर कामरूपी अग्निको बुझाकर अप्रमत्त होकर महान तपश्चरण किया था, एक जन्म जरा मरणकी पीड़ा मिटानेके लिए संसारके दुःखोसे छूटनेके लिए जो प्रतिबद्ध थे, निष्कषाय थे उन्होंने करुणा करके उपदेश भी किया तो मैंने उसे नहीं माना, विमुख रहा, उसे कटुक ही समझा, उस अधर्मका यह फल है कि इस नरक भूमिमें जन्म लेना पड़ रहा है ।

ज्ञानी पुरुषका सारके लिये सार उद्यम—देखिये सार तत्त्व, ज्ञानी पुरुषोंने ऐसा कौन सा एक आश्रय किया जिससे उन्हें सफलता मिली, मनको स्थिर किया, वश किया और अपने आत्माके प्रयोजनकी सिद्धि की । बहुतसे लोग यह समस्या सामने रखते हैं कि हम जब जाप देते हैं, पूजन करते हैं, सामायिक करते हैं, ध्यानमें बैठते हैं तो मन चारों ओर टिकता फिरता है । कहीं लगता नहीं । ऐसी ऐसी जगह मन पहुंचता है कि जहाँ धर्म करते समय नहीं पहुंचता । समाधानमें केवल एक ही बात है । जिन जीवोंने उस एक उपदेशका निर्णय नहीं किया, जो परमार्थभूत है, सत्य है, अपने आपमें शाश्वत विराजमान है वह मनको कैसे स्थिर कर सकता है ? एक स्वान्तस्तत्त्वके अनुभवके बिना किसीको भी धर्म मानकर वहाँ मन टिकाना चाहेगा, तो आखिर वह भी परस्थान है, भिन्न वस्तु है, मन कहाँ टिकेगा ? जिन्होंने अपना अनुभव किया है मैं देहसे भी निराला, तर्क वितर्कोंसे भी परे, इन रागद्वेष विकल्पोंसे भी परे अपने ही स्वभावसे केवलज्ञानप्रकाशमात्र, चित्स्वरूप मात्र यह मैं अंतस्तत्त्व हूं ऐसा जिनको प्रत्यक्षकी तरह अपना आत्मस्वरूप अनुभवमें आया है वे तो मनको झट वहीं टिका लेंगे, अपने मनको वश कर सकेंगे, किन्तु जिन्हें इस परमार्थ परम एक पदका अनुभव नहीं है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वे कदाचित धर्मके नाम पर भी मनको लगायेंगे तो कहाँ लगायेंगे ? मूर्तिमें लगायेंगे। किसी आकारको सोचकर उसकी भक्तिमें लगायें अथवा किन्हीं विकल्पोंमें लगायें। वे सब परस्थान हैं, वहाँ चित्त नहीं लग सकता। स्थिर होनेकी जगह तो निज स्वरूप है। जिन संतपुरुषोंने ऐसे निजस्वरूपका अनुभव किया और जगतके जीवोंपर करुणा करके कुछ उपदेश दिया तो जिन जीवोंने उसे कटु माना, उस धर्मसे विमुख रहे, विषयोंमें आसक्त रहे वे पुरुष नरक आयु का बंध करते हैं, नरकमें जन्म लेते हैं और दुःख भोगते हैं। संस्थानविचय धर्मध्यानमें ज्ञानी-पुरुष चिन्तन कर रहा है। कैसी कैसी लोकमें जगह हैं और किस-किस तरहके जीव रहा करते हैं, इतने विस्तार वाले वर्णनको सुनकर, जानकर, लोकके विस्तृत स्वरूपको समझकर पुरुष रागसे दूर होते हैं और वैराग्यमें बहुत साधक हैं। लोक विस्तार और काल विस्तारका वर्णन जानना।

संतोंके उपदेशकी अवहेलनाका कटु परिणाम—जो जीव लोक विस्तारको नहीं जानते, कितना बड़ा लोक है और वहाँ प्रत्येक प्रदेशपर इस जीवने अनन्त बार जन्म लिया है, यह बात जिनके ज्ञानमें नहीं है वे अपने पाये हुए थोड़ेसे क्षेत्रमें ममता करते हैं। वहाँकी यश नाम-वरीसे वहांके निवाससे उनके ममता हो जाती है और जिन्हें लोकस्वरूपका विस्तृत बोध है उन्हें अपने क्षेत्रमें ममता नहीं रहती। तो ऐसे साधु संतोंका उपदेश जिन्हें नहीं रुचता वे जीव नरकमें जन्म लेते हैं। कैसे हैं वे संत पुरुष कि अपने तत्त्वज्ञानमें ऐसा दृढ़ हैं कि उपसर्ग आ जाय, अग्निदाह हो जाय, कैसी ही कठिन विपदा आ जाय पर धर्मका आलम्बन करके जिन्होंने अपने आत्माका अनुमान किया है और शुद्धि प्राप्त की है। ज्ञानमें ज्ञान है, ज्ञानका ज्ञान करने वाला ज्ञान है, जो ज्ञान ज्ञानके स्वरूपका ज्ञान कर रहा हो वह ज्ञान आत्मानुभव है। आत्मा को केवल ज्ञानके रूपमें जान सकते हैं, अन्य रूपमें इसकी परख नहीं हो पाती। यद्यपि आत्मा विस्तृत हैं, लम्बा चौड़ा फैला हुआ भी है, देहमें रहते हुएकी स्थितिमें यह देहप्रमाण है। देह से मुक्त हो जानेपर जिस देहसे मुक्त होता है उस देह प्रमाण है, उसमें लम्बाई चौड़ाई है पर उस सब विस्तारको देखनेसे आत्माको आत्माका अनुभव नहीं मिलता। इस प्रकार आत्माकी अवस्थाएँ अनेक हैं, शुद्ध अशुद्ध परिणतियाँ अनेक हैं, उन परिणतियोंको उपयोगमें रखनेपर आत्मानुभव नहीं होता, किन्तु आत्मा केवल ज्ञानमात्र है, एक प्रतिभासस्वरूप है ऐसा ज्ञानमें लेनेपर ज्ञानानुभव हुआ, वही आत्मानुभव है, ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान कैसे प्रगट हो उसका साधक है भेदविज्ञान। यह मैं आत्मा एक सद्भूत वस्तु हूं। सद्भूत ज्ञानके नाते निरन्तर उत्पाद व्यय भी करता रहता हूं। उत्पाद व्यय करके भी मैं अपने स्वभाव द्रव्य स्वरूप ध्रौव्यको कभी नहीं छोड़ता। यों मैं आत्मा उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्त हूं। मैं उत्पादशील हूं ना, अर्थात् मुझमें अनेक पर्यायें बनती रहती हैं, मैं अपने परिणमनमें स्वतंत्र हूं अर्थात् किसी दूसरे पदार्थकी परि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

णति लेकर नहीं परिणमता हूं। ऐसे ही उपादान अशुद्ध हो, पर अन्य निमित्तका सन्निधान पाकर आत्मामें विषम परिस्थितियां होती हैं पर परिणामा यह आत्मा अकेला ही, निमित्तको साथ लेकर नहीं परिणामा। प्रत्येक पदार्थ यों उत्पादव्ययशील है। मैं परिणमता हूं अपने लिए, मेरा फल केवल मुझे मिलता है। सुख मिले, दुःख मिले, शांति मिले, मुक्ति मिले, मलिनता हो, आकुलता हो, अनाकुलता हो, मेरे लिए ही परिणमन है, मैं अपने में ही परिणमता हूं। अपनी ही परिणतिका परित्याग करके नवीन परिणतियां लेता हूं। यह मैं आत्मा सर्वत्र अकेला हूं। जब अपने स्वरूपका उपयोग रखता हूं तब तो मोक्षमार्ग रहता है और जब स्वरूपका उपयोग छोड़कर परपदार्थोंको अपनाता हूं तो वहाँ बन्धनका मार्ग मिलता है। मेरा मैं ही जिम्मेदार हूं, दूसरा मेरा जिम्मेदार नहीं, कोई परपदार्थ मेरा रक्षक नहीं। ऐसे तत्त्वज्ञानी पुरुषने अकेले स्वतंत्र मार्गका साधन किया, उन्होंने उपदेश किया, उस उपदेशको कटुक जान कर जो लोग दूर रहे, धर्मविमुख रहे, विषयोंमें बसे रहे, रागद्वेषके बन्धनमें ही जकड़े रहे ऐसे व्यसनी पुरुषोंने नरक आयुका बंध किया और वे वहां जाकर दुःख भोगते हैं।

संस्थानविचय धर्मध्यानमें ज्ञानीका चिन्तन—संस्थानविचय धर्मध्यानमें यह ज्ञानीका चिन्तन चल रहा है। जिन संत पुरुषोंने प्रमाद छोड़कर, अभिमान छोड़कर भावशुद्धि करके स्वर्ग और मोक्ष की साधना की, उन्होंने स्वर्ग और मोक्षके मार्गको बताया बड़े प्रेमपूर्वक करुणा से, लेकिन मैंने उन वाक्योंका तिरस्कार किया, उन साधु संतोंका तिरस्कार किया जिनके कारण यहाँ अब मैं नरकभूमिमें दुःख भोग रहा हूं। देखिये किन्हीं भी विषयोंके भोगोंमें इस आत्माको कुछ भी लाभ नहीं मिलता। एक विशेष इच्छा होती है, वेदना जगती है। रहा न जाय तो शान्तिके लिए उपाय करते हैं, मगर अन्तमें एक शान्त दिमागसे सोचा जाय तो यह निर्णय मिलेगा कि पञ्चेन्द्रियके विषयोंमें से किसी भी विषयके भोगसे आत्माके साथ कुछ लगता नहीं है। जैसे कानोंसे खूब राग भरी बात सुनते हैं, राग रागनियाँ प्रेमकी बातें, मोह उत्पन्न करने वाली बातें, काम भरी बातें सुनते हैं उन्हें सुन करके आत्माका क्या लाभ है? परिणाम मलिन कर लेते हैं और अपना समय गंवा लेते हैं। किसीका सुन्दर रूप नेत्रोंसे देख लिया तो उससे क्या लाभ मिला, कुछ भी तो हाथ नहीं लगा बल्कि अपने परिणाम बिगाड़ा, ऐसी ही बात घ्राणेन्द्रियकी है। बहुत बहुत सुगंधित तेल फुलेल लगा लिए, बड़े सौरभ वातावरणमें रहे तो इससे आत्माको क्या लाभ मिला? रसना इन्द्रियसे अनेक प्रकारके रस चख लिया, कुछ थोड़ासा स्वाद ले लिया तो उससे भी इस आत्माको क्या लाभ मिला? हां थोड़ा इतनी बात है कि रसास्वादनसे कुछ क्षुधाकी वेदनाका शमन होता है, शरीरमें बल रहता है, जीवन रहता है तो यह कुछ थोड़ा लाभकी बात है। यों उस सम्बन्धमें यदि मृत्यु हो जाय तो जन्ममरणका भटकना तो बराबर चला। तो उदरपूर्तिसे थोड़ासा लाभ हुआ,

http://sahjanandvarnishastra.org/

मगर रससे क्या लाभ लूटा ? रसका जो आस्वादन किया, और उसमें बड़ा उपयोग भ्रमाया, बहुत बहुत उसमें चैन माना, अब उससे क्या हाथ लगा ? बल्कि पेट दर्द करे, शिर दर्द करे। तो रसना इन्द्रियसे भी लाभकी बात कुछ न रही। स्पर्शनइन्द्रियके विषयभोगमें यह जीव अपना ही घात करता है। उपयोग बिगाड़ा और अपना देहबल भी बिगाड़ा, लाभ कुछ नहीं मिलता है। तो जो विषयोंसे उपेक्षा करके अपने आत्मस्वरूपका बोध करते हैं और आत्म-तत्त्वका निर्णय करके वहां उपयोग शमन करते हैं जीवन तो उनका धन्य है। ऐसे पूज्य पुरुषों ने उपदेश किया करुणा करके, लेकिन मैंने उस उपदेशसे विमुख होकर उनका तिरस्कार ही किया और अपनेको विषयोंमें आसक्त ही रखा। इसका फल यह हुआ कि नरक भूमिके दुःख भोगने पड़ रहे हैं।

तस्मिन्नपि मनुष्यत्वे परलोकैकशुद्धिदे।
मया तत्संचितं कर्म यज्जातं श्वभ्रशंवलम् ॥१७०३॥

उत्थानके हेतुभूत मनुष्यत्व पाकर भी पापकर्म किये जानेका फल नरक जन्म— नारकी जीव विचार कर रहा है कि मैं मनुष्य था और वहाँ ऐसा वातावरण भी मिला कि परलोकको मैं शुद्ध बना लेता, इतना ज्ञानावरणका क्षयोपशम भी मिला, जानकारीकी योग्यता भी मिली। मैं उस योग्यताका सदुपयोग कर लेता तो मैं संसारके दुःखोंसे छूटनेका उपाय बना लेता, लेकिन ऐसे योग्य मनुष्यभवमें भी मैंने ऐसे ही कर्मोंका संचय किया, ऐसी ही कुबुद्धि की, जिसके फलमें यह नरकका सम्बल मिला इनाम मिला, नारकी होकर दुःख भोगना पड़ रहा है। कितना अमूल्य जीवन है यह मनुष्यका भव। तुलना करके देखो जगतके अन्य जीवोंसे साफ विदित होगा कि इससे श्रेष्ठ अन्य कोई भव न मिलेगा। लोग तो ऊपरी तारीफ करते हैं कि मनुष्यका चमड़ा भी काम न आया, पशुवोंका तो चमड़ा भी काम आया, मनुष्योंकी हड्डी भी काम न आयी, मनुष्यके रोम भी काम न आये, पर पशुवोंकी हड्डी, रोम आदि भी काम आ जाते हैं, तो इसको इस दृष्टिसे सुना जाय कि मनुष्य यदि धर्मकार्य न करे तो इससे अच्छे पशु हैं, ठीक है, लेकिन तुलना करके विचारो तो मनुष्य संसारके सर्व जीवोंमें सर्वोपरि जीव है। जहाँ संयम साधना कर सकते हैं, अपने उपयोगको अपने आपमें ऐसा स्थिर कर सकते हैं कि जितनी स्थिरता अन्य भवमें सम्भव नहीं है। श्रुतकेवली यह मनुष्य ही होता है, मनःपर्ययज्ञानी यह मनुष्य ही होता है, परमावधि और सर्वावधि ज्ञान मनुष्य भवमें ही होता है, केवलज्ञान मनुष्यभवमें ही होता है, बादमें रहा आया सिद्ध अवस्थाकी भी प्राप्ति इस मनुष्यभवमें ही होती है, ऐसा यह श्रेष्ठ मनुष्यभव है, किन्तु एक सत्संगतिका लगार लगा रहे जिससे उपयोग कुछ सावधान रहे और यह उपयोग सन्मार्गमें लगे तो भला है और सत्संग का अभाव रहा, उपयोग गलत मार्गमें चला जाय तो कुमार्ग ही कुमार्ग बढ़ता जायगा। वहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अशुभ कर्मका बन्ध, अशुभ आयुका बन्ध होता है जिसके फलमें इस जीवको अनेक त्रास भोगने पड़ते हैं। इस लोकमें अधोलोककी ऐसी विषम रचना है जहाँकी भूमि अटपटी है, जहाँके स्थल सुहावने नहीं, जहाँ जन्मस्थान भी अटपटे, एक तिकोने ऊपर भागसे वे नारकी टपक पड़ते हैं, वहाँसे उत्पन्न होकर अधोमुख गिरते हैं, वे स्थान टेढ़े मेढ़े ऐसे स्थान हैं कि वहाँसे ये नारकी जीव जन्म लेकर नीचे गिरते हैं। गिरते ही हजारों बार उस भूमिपर गेंदकी तरह उछलते हैं और दूसरे नारकी जीव उन्हें मारनेके लिए उनपर टूट पड़ते हैं। शरीरके खण्ड-खण्ड कर डालते हैं फिर भी कुछ ऐसा अशुभ कर्मका उदय है कि वे मरते नहीं हैं, वे शरीर के टुकड़े फिर पारेकी तरह मिलकर शरीर रूप हो जाते हैं, घोर वेदना पाते हैं, किन्तु उनकी आयु अनगिनते वर्षोंकी होती है और वे आयु पूरी करनेसे पहिले मरते नहीं हैं, ऐसी नरक गतिमें जन्म अशुभ भावके कारण होता है।

अविद्याक्रान्तचित्तेन विषयान्धीकृतात्मना।
चरस्थिराङ्गिसंघातो निर्दोषोऽपि हतो मया ॥१७०४॥

अज्ञानमें विषयान्ध होकर जीवघात किये जानेके पापका संताप—नारकी जीव विचार करता है कि मैंने अज्ञानसे आक्रान्त होकर और विषयोंमें अंध होकर त्रस और स्थावर प्राणियों का घात किया। भला बतलावो कि शिकार खेलनेके व्यसनमें जिस जीवका प्राण घात किया उस जीवने इस शिकारीका क्या बिगाड़ किया, लेकिन वह शिकारी निर्दय होकर उस निर-पराध पशुको मार डालता है। इस अपराधके फलमें उस हिंसक पुरुषको ऐसे ही नरकोंमें जन्म लेकर घोर दुःख सहने पड़ते हैं। यहाँपर कोई पुरुष एक-आध जीवका अपकार करे तो राजा भी उसे दण्ड दे दे, पर जिसने अनेक जीवोंका हनन किया उसको उतना दण्ड देनेकी सामर्थ्य यहाँ किसमें है? राजाने एक बार फांसी दे दी तो उसका एक ही बार मरण हुआ, उसे अभी उतने पापोंका फल तो नहीं मिल पाया। तो उन सभी पापोंका फल है नरकोंमें जन्म लेकर घोर दुःख सहन करना। दिन भरमें करोड़ों बार मरण हो और फिर शरीरके टुकड़े टुकड़े इकट्ठे हो जाते है फिर उसी दुःखको भोगना पड़ता है, यह सब अज्ञानका माहात्म्य है। जिसने आत्मस्वरूपको जाना वह सबमें उसी स्वरूपको जानता है। देखिये स्वरूपदृष्टिसे आत्मा सब समान हैं और समानको एक कह दिया जाता है। जैसे गेहूँका ढेर लगा हो तो ग्राहक लोग गेहूँको बहुवचनमें नहीं कहते, एक वचनमें बोलते हैं, यह गेहूं किस भावमें दिया है? अरे भाई! तू क्या एक दाना खरीदना चाहता है? अगर तू बहुतसे दाने लेना चाहता है तो यह कह कि इन गेहूवोंको किस भावसे दोगे? मगर ऐसा कोई नहीं कहता। क्यों नहीं कहता कि जो समान चीज है उसमें एक वचनका प्रयोग होता है। स्वरूप दृष्टिसे सब आत्मा एक समान हैं, चाहे प्रभु हो, चाहे संसारी हो, चाहे स्थावर हो, चाहे त्रस हो, जीवका स्वरूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक ही है। स्वरूपदृष्टिसे आत्मा एक है, ब्रह्म एक है ऐसा कहनेमें कोई हर्ज नहीं है परन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चतुष्टय लेकर पूर्ण सत् निरखकर एक कल्पना कर लिया जाय तो तो वहाँ आपत्ति आती है।

स्वरूपदृष्टिसे समान व व्यक्तित्वदृष्टिसे अनेक जीवोंके तथ्यके ज्ञान बिना पापप्रवृत्तिकी संभवता—स्वरूपदृष्टिसे आत्मा एक है, पर अनुभवदृष्टिसे आत्मा अनेक हैं। आपका सुख दुःखका अनुभव आपमें चल रहा है, मेरा सुख दुःखका अनुभव मेरेमें चल रहा है। यदि सभी जीव मिलकर एक ही ब्रह्म हों तो जो एकको अनुभव है वही सबको होना चाहिए, पर अनुभव सबके जुदे जुदे हैं। इससे सिद्ध है कि आत्मायें अनेक हैं अनन्त हैं किन्तु स्वरूप एक है। जैसे गेहुवोंका स्वरूप आकार रंग रूप और उसका स्वाद रस सब एक समान हैं, इसी प्रकार जीवका सारा ढाँचा व गुण पिण्ड व स्वभाव सब जीवोंमें एक है। जिसने अपने आत्माके स्वरूपका अनुभव किया उसने सब आत्मावोंमें उस स्वरूपका निर्णय किया, वह दूसरोंके सतानेका, उनका घात करनेका भाव कैसे कर सकता है ? जिसका चित्त अज्ञानसे दबा हुआ है अपना कुछ पता नहीं और अपना और पराया भी मानेंगे तो एक पर्याय बुद्धिमें अटककर ही अपने परायेका निर्णय करेंगे। जिनको परमार्थस्वरूपका बोध नहीं, अज्ञानसे जिनका चित्त आक्रान्त है और इसही कारण विषयोंमें जो अंध बन गए हैं ऐसे पुरुषोंने त्रस स्थावर प्राणियोंका उन निर्दोष प्राणियोंका घात किया, जिसके फलमें नरकभूमिमें उत्पन्न होकर घोर दुःख उठाने पड़े। सारे दुःखोंकी जड़ अज्ञान है। जो मैं नहीं हूं उसे मानना कि मैं हूं यह अज्ञान है। देह मैं नहीं, पर देहमें इतना अभ्यास बना है, ऐसा अभिप्राय लगा है जीवके कि मैं यह हूं। देहको देखकर बोलते हैं कि यह मैं हूं, मैं ऐसा हूं। ये रागादिक विकार यद्यपि ये मेरे परिणमन हैं फिर भी मैं नहीं हूं। ये कर्मउपाधिका निमित्त पाकर होते हैं, मेरे स्वभाव नहीं, मेरे स्वरूपके कारण नहीं उठे हैं, लेकिन उन विकारोंको मानना कि यह मैं हूं। पोजीशन नामवरी यश ख्याति इन सबमें मानना कि इनसे मेरा हित है। ये ही मेरी चीज हैं, इनसे ही मेरा बड़प्पन है, यह सब मान्यता अज्ञानमयी है। सत्यभूत चीज क्या है ? अपनेमें इसका यदि दर्शन करते हैं तो ये चतुराइयाँ, ये सब ज्ञान, ये सब विकल्प जो हमने सीखे हैं उन सबको दूर करके देखा जा सकता है, मेरेमें सत्य तत्त्व क्या है ? जब तक हम किसी विकल्पको अपनाये रहेंगे तव तक हमें उस सत्यका दर्शन न होगा। विकल्पोंको अपनानेमें, पर्यायोंको आपा माननेमें अज्ञानसे मेरा चित्त दबा रहा, विषयोंमें अंध रहा, असंयम किया, इसके फलमें नरकभूमिमें जन्म लेना पड़ा है—ऐसा कोई प्रतिबुद्ध नारकी चिन्तन कर रहा है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परवित्तामिषासक्तः परस्त्रीसंगलालसः ।
वहुव्यसनविध्वस्तो रौद्रध्यानपरायणः ॥१७०५॥
यत्स्थितः प्राक् चिरं कालं तस्यैतत्फलमागतम ।
अनन्तयातनासारे दुरन्ते नरकार्णवे ॥१७०६॥

मांसभक्षण, परस्त्रीसेवन व व्यसनासक्तिसे हुए पापोंका संताप—नारकी जीव पश्चाताप करता है कि मैं परके धनमें आसक्त रहा, परस्त्रीका संग करनेमें मोही रहा, परस्त्री संग की लालसा रखता रहा, परके धनरूपी मांसमें आसक्त रहा, और-और भी बहुत प्रकारके व्यसनोंसे पीड़ित होकर रौद्रध्यानमें रहा, तो जब पूर्व जन्ममें इस प्रकारके कुपथपर रहा तो उस ही कारण इन अनन्त पीड़ावोंसे अपार नरकरूपी समुद्रमें हमें गिरना पड़ा । जब मनुष्यों को भी कठिन वेदना आती है तो उस समय उसका भी दिमाग कुछ ठिकाने होता है । यह लौकिक आनन्द, यह रौद्रध्यान, यह परिणामोंकी मलिनताका अधिक कारण है । दुःखमें परिणामोंकी मलिनता उतनी नहीं होती जितनी विषय सुखोंके मौजमें । नारकियोंमें जो नारकी कुछ विवेकी है वह चिन्तन करता है, बाकी अज्ञानी जीवोंके वह चिन्तन नहीं है । मारो, काटो, इन ही प्रसंगोंमें वे व्यस्त रहते हैं । सम्यग्दृष्टि नारकी हों तो उनके तो ध्यान पहुंचता ही है, पर जो विशिष्ट ज्ञान रखते हैं उनके न भी सम्यग्दर्शन हुआ हो तो तब भी यह विचार बन सकता है । जैसे यहाँ मनुष्योंमें अनेक मनुष्य धर्मके सम्बंधमें चिन्तन रखते हैं, सभी तो सम्यग्दृष्टि नहीं हैं, फिर भी कुछ ध्यान रखते हैं तो ऐसे ही नारकियोंमें जिनके मिथ्यात्व मोह कुछ कम है, कुछ विवेक है वे भी चिन्तन करते हैं और सम्यग्दृष्टि नारकी चिन्तन करता है और इस प्रसंगमें । तो भी मुनिराज ऐसा विचार कर रहे हैं कि यह लोक इतना बड़ा है, इसमें अधोलोककी ऐसी रचना है वहाँ नारकी ऐसा चिन्तन कीजिए । यह प्रकरण है संस्थानविचयधर्मध्यानका । संस्थानविचयधर्मध्यानका अर्थ है उसका जो लोक और कालकी रचनाके आश्रय धर्मध्यान चलता है, जो समागम प्राप्त हुए हैं, जिन विकल्पोंमें हम रहा करते हैं वे सब एक विडम्बना हैं । ये विकल्प और ये भोग, ये आत्माके हितरूप नहीं हैं । यह बात जिनके चित्तमें समाई हुई है वे लौकिकतासे बढ़कर कुछ अलौकिक तत्त्वमें आ जाते हैं और जिनके चित्तमें यह संसार ही समाया है, अपना नाम यश प्रतिष्ठा, ये ही जिनके चित्तमें समाये हैं वे अज्ञानी जीव हैं और उनको आत्महितकी वाञ्छा नहीं होती । तो नारकी इस प्रकार चिन्तन करता है कि मैं मनुष्यभव पाकर और कुछ हितसाधन पाकर भी विकारों में व्यसनोंमें आसक्त रहा जिनके फलमें आज नरकमें जन्म लेना पड़ा है ।

यन्मया वञ्चितो लोको वराको मूढमानसः ।
उपायैर्बहुभिः पापैः स्वाक्षसन्तर्पणार्थिना ॥१७०७॥

http://sahjanandvarnishastra.org/

कृत: पराभवो येषां धनभूस्त्रीकृते मया ।
घातश्च तेऽत्र संप्राप्ताः कर्तुं तस्याद्य निष्क्रियाम् ॥१७०७॥

प्रवञ्चनासे हुए पापोंका संताप—पूर्वजन्ममें मैंने इन बेचारे गरीब लोगोंको ठगा, अनेक अन्यायरूप उपाय किया, अपनी इन्द्रियों को पोषने लगा, अपनी स्वार्थवृत्तिके कारण मैंने अनेक गरीब लोगोंको सताया, परका धन, परकी भूमि, परस्त्री लेनेके लिए मैंने जिन जिनका अपमान किया, जिन जिनका घात किया, जिन जिनको सताया वे ही लोग इस नरक-भूमिमें आये हैं और मेरे मारनेके लिए उद्यमी हुए हैं। कोई खोटा परिणाम करे तो उसका फल भोगना पड़ता है, अच्छा करे तो उसका भी फल भोगना पड़ता है। वर्तमानमें कुछ पुण्य के कारण इस समय पाप करते हुए भी फल नहीं सामने आ रहा तो मत आवो, लेकिन आज जो पापका परिणाम किया जा रहा है यह सब फल देगा। लोग थोड़ेसे धन की लिप्सा रखकर अन्याय और पापकी बातको एकदम गौणकर देते हैं, अपने परिणाम मलिन रखते हैं और धन लाभकी ओर दृष्टि रखते हैं, मगर विश्वास नहीं है उन्हें, असत्य बोलकर, मायाचार करके बेईमानी करके किसी प्रकार कपट करके भी जो धन मिला है वह धन बेईमानी कपट करनेसे नहीं मिला है किन्तु वह तो मिलना था सो मिला है, बल्कि बहुत कुछ सम्भव है कि इससे अधिक मिलना था, पर वर्तमानमें कपट आदिक भावोंके कारण तुरन्त ही कम हो जाता है। जिसे आत्महित चाहिए उसका जीवन फकीराना हो जाता है। वह अपने परिणामोंकी साव-धानी रखता है। अपने परिणामोंको मलिन करनेका भाव ज्ञानी पुरुष नहीं रखता। क्या है, धन मिल गया तो उससे इस अमूर्त निर्लेप आत्माको लाभ क्या मिल जायगा? कुछ भी तो उससे इस आत्माका सुधार नहीं होनेका है। धन कमाकर तो लोग इसी बातमें लाभ मानते कि इन लोगोंमें हमारी भी कुछ गिनती हो जायगी। सो लोग भी असार हैं, मायामय हैं, उन लोगोंसे कौनसा लाभ मिलेगा, लेकिन जहाँ इस ही ख्यालके बहुतसे लोग हैं वहाँ कोई ज्ञानी विरक्त एक हो तो उसकी क्या चले? बल्कि जैसे आजकल कोई सच्चाईसे चले तो उसे सब बेवकूफ कहते हैं, क्योंकि प्राय: सभी लोग सच्चाईसे गिरे हुए हैं, इसी तरह कोई निर्मोह रहकर कुछ धर्मकी विशेष चर्चायें करके अपने जीवनको संयमपूर्वक बिताये और उसमें भी गरीबी रहे तो भी उस ज्ञानी पुरुषको इसकी कुछ परवाह नहीं रहती। मेरे लिए तो मैं ही रक्षक हूं। दूसरा मेरा कोई साथी तो नहीं। जो हितकी बात हो उसे करना है मुझे। ऐसी ज्ञानी की धुनि रहती है। दूसरेकी भूमि हर लेना, छल प्रपंच करके कुछ अधिक भूमि बना लेना यह कोई भली बात है क्या? अरे यह भूमि साथ जायगी क्या? यह तो थोड़े समयका गुजारा है, जिस समयकी कुछ गिनती भी नहीं। उस अनन्त कालके सामने सागरों पर्यन्त कालकी तो कुछ गिनती नहीं, फिर यह १०—२०—५० वर्षकी तो कुछ गिनती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही क्या ? इतनेसे समयके लिए कुछ अपने को खुश करनेकी बात बनाये तो उसमें लाभ क्या हुआ ? जीवन उसका धन्य है जो वीतराग सर्वज्ञदेवके लगावमें रहते हैं, जो उसही ओर अपना चित्त लगाकर खुश रहा करते हैं और व्यवस्थाकी बात तो छोटेसे छोटे लोग भी व्यवस्था बना लेते हैं और बड़ेसे बड़े धनिक भी व्यवस्था बना लेते हैं। एक लक्ष्य होनेकी बात है फिर सब आ सकता है। मुझे आत्महित करना है, मुझे आत्मस्वरूपके दर्शनमें यत्न रखना है, यहीं रमना है, ऐसा लक्ष्य बन जाय तो मेरे लिए ये व्रत नियम संयम और गरीबी की भी व्यवस्था ये सारी चीजें उसे आसान हैं, पर जिन्होंने अपना लक्ष्य नहीं बनाया, स्वरूप दर्शन नहीं किया उनका चित्त तो बाहर बाहर ही रमेगा, उन्हें शान्ति कहाँसे होगी ?

परस्त्री सेवनसे हुए पापोंका नरकमें संताप—परस्त्रीका विकल्प कितना गंदा विकल्प है, परस्त्रीका स्नेह करके पुरुष रहेगा कहाँ, क्या स्थिति बनेगी ? निरन्तर उसके आकुलता बेचैनी रहेगी, भय रहेगा और चित्त ठिकाने ही न रहेगा। कितना कर्मबन्ध होगा ? उस कर्मके उदयमें नरकमें ही जन्म लेना होता है। यह नारकी जीव विचार कर रहा है कि परस्त्री, परधनके पीछे मैंने लोगोंपर अन्याय किया, अपमान किया, उनका तिरस्कार किया, घात किया। जिन जिनका हमने घात किया, जिन जिनको हमने सताया वे जीव भी यहाँ नारकी बने हैं और मेरे घातपर उतारू हैं।

ये तदा शशकप्राया मया बलवता हताः।
तेऽद्य जाता मृगेन्द्राभा मां हन्तुं विविधैर्बधैः ॥१७०६॥

शिकार करने, जीवघात करनेका नरकमें संताप—नारकी जीव विचार कर रहा है कि जब मैं मनुष्यभवमें था तो मैं बलवान था, मेरे आगे ये ही नारकी जो मेरे मारनेको उद्यमी हो रहे थे वे मेरे समयमें बेचारे दीन गरीब खरगोशकी तरह थे, मैं बलवान था, मैंने इन्हें मारा, किन्तु आज ये सिंहके समान हो रहे हैं और नाना प्रकारके घातोंसे मुझे मारनेके लिए उद्यमी हो रहे हैं। परदृष्टि बहुत बड़ा पाप है, परमें राग अथवा द्वेष होनेसे अपने आपकी कुछ सुध नहीं रहती। यह महापाप है क्योंकि जीवोंको शान्तिका पथ ही नहीं मिल सकता। बाह्यदृष्टि करना यह जीवका एक विरुद्ध काम है। सारी आकुलता परदृष्टिसे उत्पन्न होती है, चित्त ठिकाने नहीं रहता, मन वशमें नहीं रहता, यह सब परदृष्टिके कारण हुआ करता है। कितना दुःख भोगना पड़ता है ? अभी अभी कानपुरमें एक धनिकके घर छापा मारकर सरकारने उसका करीब ५० लाखका धन जब्त कर लिया। इस समय उसके परिवारके सभी लोग अपना दिल मसोसे बेचैन हालतमें पड़े हुए हैं। तो करोड़ों रुपयेकी जायदाद छिपाकर रखा, उसका फल क्या हुआ सो देख लीजिए। कंजूसके पास धन कितना है यह तभी प्रकट हो पाता है जब उसकी चोरी, मारपीट लुटाई हो। तो जिस परिग्रहके लिए लोग निरन्तर व्या-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुल रहा करते हैं वह परिग्रह जुड़ जानेपर व्याकुलता मिट जायगी क्या ? सब जगह दृष्टि डालकर देखो, पर धनिक बननेकी इच्छा सभीके लगी है। धनिक बनकर मिलता-जुलता कुछ नहीं बल्कि आकुलताएँ बढ़ती हैं, कितने ही लोग तो कोई बड़ी हानि हो जानेपर हार्ट फेल होकर गुजरते हैं। तो जिन समागमोंमें लोग मौज मानते हैं वे समागमपर दृष्टिके दृढ़ करनेमें कारणभूत बन जाते हैं, अतएव उनके खोटे कर्मोंका बन्ध होता है, दुर्गतिमें जन्म लेना पड़ता है। नारकी जीव चिन्तन करता है—हाय ! मैं कैसा बलवान था, इनको अपने वश रखता था, ये बेचारे गरीब मेरेसे भय करते थे, पर ये ही नारकी बनकर आज मेरा नाना तरहसे घात कर रहे हैं। यह सब कर्मोंकी बरजोरीकी बात है। जो मनुष्य खोटा परिणाम करता है प्रायः करके वह खाली नहीं जाता, उसका फल अवश्य भोगता है, और कुछ अनुभवसे भी विचार लीजिए कि खोटा परिणाम यद्यपि तत्काल फल नहीं दिखाता, मगर कुछ समय बाद उसका फल इसी भवमें दिख जाता है।

मानुष्येऽपि स्वतन्त्रेण यत्कृतं नात्मनो हितम्।
तदद्य किं करिष्यामि दैवपौरुषवर्जितः ॥१७१०॥

मनुष्यभवको प्रमादमें गंवाकर नरकमें आनेकी परवशताका चिन्तन—वह नारकी जीव विचार करता है कि जब मैं मनुष्य भवमें स्वाधीन था तब ही मैंने आत्महितका साधन नहीं किया तो अब इस नरक भवमें जहाँ भाग्य भी साथ नहीं दे रहा और पुरुषार्थ भी नहीं चल रहा तो इस नरक भवमें मैं क्या कर सकता हूँ, यहाँ मेरा हित साधन नहीं हो सकता। जहाँ हितसाधन हो सकता था उस भवको तो मैंने व्यसनोंमें पापोंमें गंवा दिया, अब यहाँ नारकीका भव मिला है तो यहाँ भाग्य तो साथ यों नहीं दे रहा कि कोई साधन ही नहीं है, सारे असाताके फल भोगनेके स्थान हैं। कोई सत्संगति ही नहीं है। सभी जगह क्रूर जीवोंका वास है। यह एक ऐसा भव है कि जहाँ कोई पुरुषार्थ नहीं है, व्रत नियम वगैरह भी नहीं हो सकते हैं। तो जिस भवमें मैं हित कर सकता हूं उस मनुष्यभवको तो मैंने बिगाड़ दिया, असंयममें खो दिया, अब उसके फलमें आज नारकी हुआ हूं तो यहाँ मैं क्या कर सकता हूं ? देखिये कितनी बड़ी जिम्मेदारी है इस मनुष्य भवकी, लेकिन अज्ञानी इस मनुष्यभवको पाकर, उस बल शक्तिको प्राप्त कर स्वच्छन्द होकर जैसा मन चाहता है वैसी ही वृत्ति करनेको उद्यमी बन जाता है। चाहे वह अति खोटा व्यसनी ही क्यों न हो चित्तमें आया और सामर्थ्य उसके है, कर सकता है तो उन व्यसनोंको पापोंको सभीको कर सकता है। कहाँ तो मनुष्यभवसे सदाके लिए संसार संकटोंसे छूटनेका उपाय बनाया जा सकता है और कहाँ यह मनुष्य भव नरकमें उत्पन्न होनेका कारण बन गया। नारकी जीव ऐसा चिन्तन कर रहा है कि अब मेरा भाग्य भी अनुकूल नहीं है और पुरुषार्थ भी मैं कुछ नहीं कर सकता, ऐसी हीन दशा है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नरक भूमि।

सम्यग्दृष्टि नारकी वृत्ति—यदि कोई नारकी सम्यग्दृष्टि है तो उस सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्वकी महिमा देखिये कि ऐसे घोर दुःखोंके बीच पड़ा हुआ भी नारकी ज्ञानामृतके पानसे तृप्त रहा करता है। सम्यग्ज्ञानकी महिमा देखियेगा, सम्यक्त्वका प्रताप देखियेगा, शरीरके खण्ड-खण्ड हुए जा रहे हैं, नाना प्रकारके शस्त्रोंसे छेदन किया जा रहा है, चमड़ी छील छील करके उसके खण्ड-खण्ड किए जा रहे हैं, पर ज्ञानी नारकी अपने उपयोगमें सम्यक्त्वकी भावना बनाता है, अपने स्वरूपका दर्शन करके तृप्त हो रहा है। देखो सम्यग्दृष्टिका नरकमें भी बिगाड़ होता है। बेचैन हैं मिथ्यादृष्टि जीव, देवांगनाओंको मनानेमें और नाना तरहकी परदृष्टिमें आकुलित हैं। भले ही वे मौज मान रहे हैं पर वह मौज व्याकुलतासे भरी हुई है। हाँ सम्यग्दृष्टि देव होगा तो वह भी वैसा ही पवित्र है। जैसे कि नारकी दुःखोंसे नहीं घबड़ा रहा और ज्ञानामृतका पान कर रहा है, इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि देव सुख और मौजमें मस्त नहीं हो रहा किन्तु एक ज्ञानामृतका पान कर रहा है।

ज्ञान ही हमारा रक्षक, पिता, कुटुम्ब, शरण, सर्व कुछ ज्ञान ही है। खूब विचारो कि हमारे पास सभी साधन हैं, सारी सम्पदा है, परिजन भी बहुत अच्छे हैं, मुझे सुखी देखना चाहते हैं, पर हमारा ज्ञान खोटा हो, आशय हमारा मलिन हो, पागलपन हमारे छा गया हो तो वहाँ हमारा शरण कौन हो सकता है? केवल हमारा ज्ञान ही हमारा शरण हो सकता है। बुद्धि ठिकाने रहे, इससे बढ़कर कोई वैभव नहीं। धनिक भी हो और बुद्धि ठिकाने न हो, अस्तव्यस्त दिमाग हो, तो उसका भी जीवन क्या जीवन है और जिसका विवेक जागृत हो वह गरीब भी हो, किसी तरह मुश्किलसे अपना गुजारा चलाता हो, किन्तु हृदय पवित्र हो, ज्ञान सही है तो वह तृप्त रहा करता है। तृप्ति किसी बाहरी चीजसे नहीं मिल सकती, तृप्ति तो ज्ञानसे ही मिलती है। कितना ही धन जुड़े, तृप्ति नहीं हो सकती। जैसे कितनी भी नदियाँ आकर मिल जायें तो भी समुद्र तृप्त नहीं होता, इसी तरह धन कितना ही आये पर यह मनुष्य तृप्त नहीं हो सकता। कोई मनुष्य यह कहनेको तैयार नहीं है अपने बारेमें कि मुझे जो कुछ धन मिला है वह मेरी जरूरतसे बहुत अधिक मिला है। इस दुनियामें अपने बड़प्पनकी जो चाह लगी है, धनी होकर लोकमें मेरा कुछ नाम होगा यश होगा ऐसी जो भ्रान्ति लगी है उस भ्रान्तिके कारण यह तृप्त नहीं है। अरे अनन्त भव व्यतीत हो गए, उन भवोंको कौन जानता है, आज उन भवोंकी घटनासे कौन परिचित है, मेरा क्या यश है अब? जब उन अनन्तभवोंका कोई यश नहीं रहा अब तो इस भवका भी यश क्या रहेगा? ज्ञान ही वैभव है और अज्ञान ही दारिद्र्य है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मदान्धेनापि पापेन निस्त्रिंशेनास्तबुद्धिना ।
विराध्याराध्यसन्तानं कृतं कर्मातिनिन्दितम् ।।१७११।।

नारकी जीव द्वारा कृतपापका निन्दन—नारकी जीव फिर विचार कर रहा है कि मदसे अंधे, पापी निर्दय जिसकी बुद्धि नष्ट हुई है ऐसे इस भयसे आराधना योग्य शान्तिपथमें लगाने वाले पूज्य पुरुषोंका सम्मान नहीं किया बल्कि अपमान किया, निन्दनीय कर्म किया उसके फलमें आज नरकका फल भोगना पड़ा। लोग अपनी चतुराईमें आकर जैसी उनकी बुद्धि है उस माफिक अपने को बड़ा होशियार जानकर बड़े पुरुषोंका अपमान करते रहते हैं। हो तो रहे हैं ये सब आसान काम इनके लिए, क्योंकि आज पुण्यका उदय पाया है, कुछ इस प्रकार की बुद्धि आदिक पायी है, पर उन खोटी वृत्तियोंके फलमें उन्हें नरक गतिमें जन्म लेना पड़ता है और घोर दुःख सहना पड़ता है। महापुरुषोंका अपमान करना, निन्दा करना इसका फल नरक भवमें जन्म लेना बताया है। यह नारकी जीव विचार कर रहा है कि मैं उस पदमें अंधा था, पापी था, दयाहीन था, जिससे बुद्धि नष्ट हो गई थी, मैंने पूज्य पुरुषोंका तिरस्कार किया था, अति निन्द्य कार्य किया था, उसके ही फलमें आज मुझे ये नरक भूमिकी अनेक पीड़ायें सहनी पड़ीं। संस्थानविचयधर्मध्यानमें एक सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष अधोलोककी रचनाका चिन्तन कर रहा है कि नरकमें रहने वाले नारकियोंकी कैसी स्थिति है और उनमें कोई विवेकवान नारकी हो तो वह इस प्रकारका चिन्तन कर रहा है। इस धर्मध्यानमें जो लगता है उसको विषयकषाय नहीं सताते, अज्ञान नहीं सताता और शान्तिसे अपना समय व्यतीत करता है। ज्ञान ही समस्त विपदावोंसे निवृत्त होनेकी कुञ्जी है, ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष ज्ञानकी आराधनामें अपनेको लगाते हैं।

यत्पुरग्रामविन्ध्येषु मया क्षिप्तो हुताशनः ।
जलस्थलबिलाकाशचारिणो जन्तवो हताः ।।१७१२।।
कृन्तन्ति मम मर्माणि स्मर्यमाणान्यनारतम् !
प्राचीनान्यद्य कर्माणि क्रकचानीव निर्दयम् ।।१७१३।।

ग्रामादिको अग्निसे जलानेके पापका संताप—नारकी जीव विचार करता है कि मैंने पूर्वभवमें गाँवमें, वनमें अग्नि डालकर ज्वालायें बढ़ाया और जलचर, थलचर, नभचर और बिलोंमें रहने वाले असंख्यात जीवोंको मारा। वे ही उस पाप करते समय जब उसके स्मरण में आते हैं तो उसका हृदय दयारहित होकर करोंतके समान भेदता है। इस प्रसंगमें यह भी बात बतायी जा रही है कि कौन कौनसे पाप करनेसे जीव नरकगतिमें जन्म लेता है? जो लोग बैरसे या कौतूहलसे गाँवमें या वनमें आग लगा डालते हैं वे कितनी हिंसा करते हैं? वहाँके जलचर जीव मरें, थलचर जीव मरें और आकाशमें उड़ने वाले जीव मरें। तो ऐसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पापकर्म हैं। ये इतने घोर पाप कर्म हैं कि इनके फलमें नरक आयुका बंध होता है। नरकमें आकर इस जीवको उन जीवोंके द्वारा जिन्हें मारा था दुःख उठाना पड़ता है, वे इसकी हिंसा करते हैं। नारकी जीवका अर्थ ही यह है कि एकको दूसरेसे प्रेम नहीं है। जैसे यहाँ मनुष्योंमें कुछ ऐसे भी मनुष्य हैं कि परस्परमें बड़ा प्रेम रखते हैं। पक्षियोंमें भी कुछ पक्षी ऐसे होते हैं कि जो परस्परमें प्रेमसे रहते हैं, पर नारकियोंमें तो ऐसी प्रकृति है कि वे नारकी जीव परस्पर में प्रीतिपूर्वक नहीं रह सकते।

किं करोमि क्व गच्छामि कर्मजाते पुरः स्थिते।
शरणं कं प्रपश्यामि वराको दैववञ्चितः ॥१७१४॥

नारकीका अशरणतामें विलाप—फिर विचार करता है यह नारकी कि ऐसे नरकोंके दुःखोंमें भी ये कर्मसमूह मेरे सामने हैं। अब मैं क्या करूँ? नरक भूमिमें पड़ा, नरक भवमें फंसा और फिर ये असाता वेदनीय आदिक अनेक कर्म मेरे सामने हैं, उदयमें आ रहे हैं, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किसकी शरण देखूँ? कभी संतापसे तृप्त होकर वृक्षकी छायाके नीचे जाता हूं तो वहींकी पत्ती तलवारकी धारके समान गिरती है। कभी डरकर नारकी जीवके समीप जाऊँ तो वही नारकी घात कर डालता है। पृथ्वीपर ही पड़ा रहूं, न हो कोई दूसरा मारने वाला तो वहाँके भूमिजन्य दुःखोंसे पीड़ित रहता हूं। कहाँ जाऊँ, अब तो मुझे सुखका कोई उपाय नहीं दिखता।

यन्निमेषमपि स्मर्तुं द्रष्टुं श्रोतुं न शक्यते।
तद्दुःखमत्र सोढव्यं वर्द्धमानं कथं मया ॥१७१५॥

नरककी दुःखवेदना सहनेका विषाद—फिर विचार करता है कि इतना भी तो कुछ दुःखसे छुटकारा नहीं कि नेत्रके टिमकार मात्र भी समय कुछ चैनसे रह सकूँ। इतने कठिन दुःखके निमेष मात्र भी उनका स्मरण करे, दो वर्णन सुने तो इतना देखने सुननेकी भी सामर्थ्य नहीं। प्रतिक्षण बढ़ते हुए यहाँके दुःख हैं, इन्हे मैं कैसे सहन करूँ? नारकी जीव ऐसा चिंतन करता है। ऐसा ध्यान यह संस्थानविचय धर्मध्यान वाला ज्ञानी सम्यग्दृष्टि कर रहा है। जैसे यहाँ कितने ही दुःख ऐसे हैं कि दूसरोंका दुःख देख ले तो जितना दुःख वे दूसरे न मानते हों उससे ज्यादा दुःख यह मान लेता है। यह सोचकर कि ऐसे ही दुःख अब हमपर भी तो आने को हैं। बुखारकी याद आती है। थोड़ी हरारत हुई तो मालूम पड़ा कि अब बुखार आ गया है, इतना क्लेश करता है यह मनुष्य कि बुखार आ जाय तब उतना क्लेश नहीं मानता जितना कि क्लेश पहिले मानता। कितने ही दुःख यहाँ भी ऐसे हैं जिन्हें देखा नहीं जा सकता, याद नहीं किया जा सकता, सुना भी नहीं जा सकता। नरकोंमें तो दुःख ही दुःख भरे हैं। पापके उदयका फल अधिकसे अधिक मिल सके ऐसा वह नरकका स्थान है। वहाँ नारकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव विचार करता है कि इन दुःखोंको मैं कैसे सहूं ? यहाँ मनुष्य मोहमें कितना मस्त रहते हैं कि उन्हें रंचमात्र भी अपने भविष्यकी परलोककी सुधि नहीं है। मेरा क्या होगा, वर्तमान में सुख मिलना चाहिए। तो कल्पनाके अनुसार वे वर्तमानमें मौज मानते हैं पर वस्तुतः मौज वहाँ भी नहीं है। आनन्द तो एक ही है। जहाँ निराकुलता हो वह आत्मीय आनन्द है, इन्द्रियजन्य आनन्दमें यह तारीफ नहीं है कि निराकुलता रह सके। कदाचित थोड़ा कुछ समय अशान्तिका उपशम भी हो तो आगे पीछे विकट अशांति उत्पन्न करते हैं। इन्हीं विषयानन्दोंके फलमें और जीवोंको सतानेके फलमें नरकगतिमें जन्म लेना पड़ता है।

एतान्यदृष्टपूर्वाणि विलानि च कुलानि च।
यातनाश्च महाघोरा नारकाणां मयेक्षिताः ॥१७१६॥

नारकियोंका अपूर्व कठोर पीडनमें विलाप—फिर चाह करता है यह नारकी जीव कि नरकोंकी भूमि नारकियोंके कुल और नारकियोंकी महा तीव्र वेदना, ये सब बातें मैंने अब तक नहीं देखीं, ये नवीन ही बड़ी तीव्र यातनाएँ दिखनेमें आ रही हैं। ऐसी यातनाएँ अन्यत्र कहीं नहीं देखीं। नरकभवमें जो वेदनाएं होती हैं वैसी वेदनाएँ न पशुवोंमें हैं, न पक्षियोंमें हैं, न मनुष्योंमें हैं, न देवोंमें हैं। किसी भी गतिमें ऐसी वेदनाएं नहीं हैं जैसी कि नरकगतिमें हैं। नरकगतिकी बात बहुत-बहुत सुनकर कुछ असर यों नहीं होता कि किन्हींको विश्वास ही नहीं है कि नरक हुआ करता है। यहाँ पशु और पक्षियों के दु:खका वर्णन करें तो जल्दी असर होता है लेकिन यह तो बतावो कि जिन सर्वज्ञदेवके शासनमें सात तत्त्व नौपदार्थ द्रव्यास्तिकाय वस्तुस्वरूपका जो वर्णन है वह वर्णन हमारे अनुभव में उतरा, उसे मैंने युक्तियोंसे समझा, वह यथार्थ है। ऐसे यथार्थ प्रवक्ता गणधर आदिक और मूलवक्ता सर्वज्ञदेवके शासनमें वह नरक और स्वर्गोंका वर्णन है, जिसकी कोई भी बात अनुभवगम्य युक्तिगम्य यथार्थ सिद्ध होती है और मेरी उस बातमें जिसमें कि अनुभव और युक्ति नहीं, जो परोक्षभूत है वह बात श्रद्धालु भक्त पुरुष असत्य कभी नहीं मानते। यह नारकी जीव उस नरकभूमिमें पहुंचकर ऐसा बड़ा दिल देखकर सोचता है कि ऐसा स्थान तो हमने कभी भी नहीं देखा। उनका शरीर देखकर, हुंडकसंस्थान विचित्र बेढंगा शरीर देखकर सोचता है नारकी कि ऐसा शरीर तो हमने कभी भी नहीं देखा, भयानक पशुवों जैसा शिर मुँह बना हुआ जैसा चाहे डावांडोल शरीर बना लिया। उनको ही हाथ नख शस्त्र जैसे छेदने वाले हैं, ऐसे बेढंगे शरीर हमने कभी नहीं देखे। ऐसी तीव्र वेदनाएँ जहाँ इतना आताप कि गरमीके मारे मेरूपर्वत समान लोह भी गल जाय, जहाँ इतनी ठंढ कि ठंढके सामने मेरूपर्वत समान लोह पिण्ड भी गलकर खण्ड खण्ड होकर खिर जाय, ऐसी यातनाएं हमने कहीं नहीं देखीं। शरीरके खण्ड-खण्ड हो गए लेकिन जान नहीं जाती, वे टुकड़े फिर पारे की तरह मिल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाते हैं और फिर शरीर बन जाता है। ऐसी महान घोर यातनाएँ ये नरकोंकी मैंने कहीं नहीं देखीं, ऐसा विचार करता है नारकी।

विषज्वलनसंकीर्णं वर्द्धमानं प्रतिक्षणम्।
मम मूर्ध्नि विनिक्षिप्तं दुःखं दैवेन निर्दयम्॥१७१७॥

सिरपर आ पड़ी विपदामें नारकीका आक्रन्दन—तो नारकी विचार करता है कि विष और अग्निसे व्याप्त क्षण-क्षणमें बढ़ने वाले ये सब दुःख, कर्ममें दयारहित होकर मैंने माथे पर डाल रखे हैं। तो कर्मोदयवश नारकियोंको ऐसा कठित दुःख भोगना पड़ता है जैसे कभी यहाँ दुःख आये तो मनुष्य कह बैठता है कि ओह! यह विपत्ति तो मुझसे नहीं सही जाती है। ऐसी कठिन कठिन विपत्तियों वाली उन नरकोंकी भूमिके दुःख असाता आदिक पापकर्मके कारण सहन करने पड़ते हैं। अधोलोकके स्वरूपके चिन्तनमें ज्ञानी पुरुष उन नरक और नारकियोंकी बातोंका चिन्तन कर रहे हैं कि वे नारकी किस तरह विह्वल रहते हैं, क्या क्या सोचते रहते हैं, कैसे कठिन कठिन दुःख पा रहे हैं? यहाँ देखो पंच पाप, व्यसन, विषयासक्त, बैरविरोध—इन सब पापकर्मोंका फल है। संस्थानविचय धर्मध्यानमें लोककी रचनाका विचार चलता है उन रचनाओंका यथार्थ बोध करनेपर वैराग्यकी बुद्धि होती है। स्नेह और मोह करनेकी बान फिर नहीं रहती।

न दृश्यन्तेऽत्र मे भृत्या न पुत्रा न च बान्धवाः।
येषां कृते मया कर्म कृतं स्वस्यैव घातकम्॥१७१८॥

जिनके लिये पाप किये उनके नरकमें न दिखनेपर सकृत पापका पश्चात्ताप—अहो! अब वे नौकर मुझे नहीं दिख रहे हैं जिन नौकरोंके लिए मैंने अपना ही घात करने वाले कर्म किया। अब वे पुत्र मुझे यहाँ नहीं दिख रहे जिन पुत्रोंके वास्ते मैंने अनर्थ अपना ही घात करने वाले नाना पापकर्म किया। जिनके पीछे मैंने पापकर्म किया, जिसके फलमें नरकमें जन्म लेना पड़ा, अब वे लोग यहाँ एक भी नहीं दिख रहे हैं। सारा क्लेश हमें अकेले ही भोगना पड़ रहा है। वे बान्धव परिवार मित्रजन वे सब कुछ भी यहाँ नहीं दिखते हैं। जो अन्याय करके, लोगोंको धोखा देकर धनोपार्जन किया जाता है अथवा नाना प्रकार के छल कपट किए जाते हैं, उस द्रव्यका जो जो लोग भोग करते हैं उन सबमें पाप बँट जायें, ऐसा नहीं है। जिसने जो पाप किया उसका वह पूरा पाप है। दूसरे घरके परिवारके लोग यह जानकर भी कि यह धन बहुतसे लोगोंको सताकर आया है, अन्याय करके आया है, वे मौजसे खायें तो वे नया पाप और बाँधते हैं, पर इस पुरुषके पापको वे बाँटते नहीं हैं। जो मनुष्य जैसा अपना परिणाम करता है उसके अनुसार कर्मका बंध उसको स्वयं होता है। उसमें ऐसा नहीं है जैसे कि लोग सन्तोष करते हैं कि भले ही हम पाप कर्म करते हैं, मगर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस धनका भोग तो घरके ये दसों लोग करते हैं उन दसोंमें वह पाप बँट जायगा तो मेरे पाप कम हो जायेंगे, ऐसी बात नहीं है क्योंकि पापका भण्डार कम नहीं है। तो जिन लोगोंके लिए मैंने पापकर्म किया, अपने आपकी बरबादीके कर्म किया। अब वे लोग यहाँ एक भी नहीं दिखते हैं। मेरा कोई साथी नहीं हो रहा है।

न कलत्राणि मित्राणि न पापप्रेरको जनः।
पदमप्येकमायातो मया सार्द्धं गतत्रपः ॥१७१९॥

जिनके लिये पाप किये उनके यहां न आ सकनेपर व्यर्थ कृत पापका विषाद—वे स्त्री पुत्र मित्रादिक पापकी प्रेरणा करने वाले ये मनुष्यादिक ये एक भी कदम मेरे साथ नहीं आये जिनके लिये मैंने नाना पापकर्म किया। वे ऐसे निर्लज्ज हो गए कि एक कदम भी मेरे साथ नहीं आये। जिनके लिए मैंने नाना पापकर्म किया, जिन्होंने मुझे पापमें प्रेरणा दी, जिनके बहकावेमें आकर मैंने पाप किया तो उस समय तो वे बहुत हृदय मिले चल रहे थे लेकिन अब वे ऐसा निर्लज्ज हो गए हैं कि एक कदम भी मेरे साथ नहीं आये, पश्चाताप करता है, चिन्तन करता है। जब कोई बात बीतती है खुदपर उस समय जो भाव आता है जो विचार उठता है वह विचार उसीके खुदके विचार हैं, दूसरेके नहीं। मनुष्यभवमें भी जब कोई वेदना होती है, हर तरहसे बरबाद हो जाता है, कोई पूछने वाला नहीं होता है अथवा कोई उस दुःख दर्दको बाँट सकने वाला नहीं होता है तो उस समय वह भी अपने आपको असहाय निरखता है। मेरा कोई साथी नहीं, मेरा कोई सहाय नहीं, इस प्रकार वह नारकी जीव भी उस कठिन वेदनामें रहकर अपनेको निरन्तर असहाय निरखता है। ओह! जिनके पीछे मैंने अनेक पाप किए वे कोई सहाय नहीं हो रहे हैं ऐसी उसके एक झुँझलाहटसी होती है, और उसे खेद होता है कि यदि मैं उस समय ऐसे पापकर्मोंमें न पड़ता तो मैं कितना स्व-रक्षित रहता।

आश्रयन्ति यथा वृक्षं फलितं पत्रिणः पुरा।
फलापाये पुनर्यान्ति तथा ते स्वजना गताः ॥१७२०॥

पूर्व जन्मके स्वजनोंकी स्वार्थपरताका विचार—वह नारकी जीव पुनः ऐसा विचार करता है कि जैसे पक्षी पहिले तो फूले हुए वृक्षोंका आश्रय करते हैं, परन्तु जब वृक्षमें फल नहीं रहते हैं तो वे सब पक्षी उड़ जाते हैं। यही हालत यहाँ भी है कि जब तक उन कुटुम्बियोंने मित्रोंने हमसे मित्रता रखी जब तक कि उनके हम काम आये, जब तक उनके विषय साधनोंमें हम सहायक रहे, उनके सुखके साधनोंको जब तक हम जुटाते रहे तब तक तो वे मेरे साथी थे लेकिन जब भव छूटा और हम उन पापफलोंसे नारकी हुए तो उस समय कोई भी साथ न आया, सभी जहाँके तहाँ रह गए अन्यथा कहीं चले गए। वह नारकी इस तरह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विचार कर रहा है। कभी तो मरने वाला टोटेमें रहता है जीने वाला नफेमें रहता है और कभी जीने वाला टोटेमें रहता है और मरने वाला नफेमें रहता है। जिस जीवने पापकर्म किया, मरकर पचकर कष्ट सहकर लोगोंको बहुत सुख पहुंचाया, उनके सुख साधन जुटाया, अब वृद्ध हो गया, कुछ करनेमें समर्थ नहीं रहा ऐसा पुरुष मर गया तो वह पुरुष तो मरकर नरकोंमें जाकर घोर यातनाएँ सहेगा, वह तो नुकसानमें रहेगा और ये जीने वाले सुख साधनोंका लाभ उठायेंगे और एक जो व्यथासी बन रही थी, कष्ट करना पड़ता था उससे वह छूट जाता है। कोई पुरुष बड़े अच्छे आचरणसे रहनेवाला अपनी सब व्यवस्थावोंसे सुन्दर जीवन बिताने वाला और इस ही कारण सर्व कुटुम्बियोंको बड़ा प्रिय लगने वाला वह यदि गुजर जाय तो वह तो मरकर नया शरीर पायगा, वहाँ अपने जीवनमें अ आ इ ई शुरू कर लेगा, वह अपने ढंगसे है और जीने वाले लोग उसकी याद कर करके अपने स्वार्थसे रो रो करके दुःखी हो जाते हैं, तो वह मरने वाला तो लाभमें रहा और ये जीने वाले टोटेमें रहे। यहाँ नरकगतिमें जन्म लेने वाला नारकी टोटेमें रहा, अपने आपको बड़े क्लेशमें निरख रहा, और सोच रहा है कि ओह ! वे सब लोग जो मेरे हर बातमें साथी थे, अब यहाँ कोई भी नहीं आया, सभी उड़ गए फलहीन वृक्ष देखकर। इस जगतमें कोई किसीका मित्र नहीं है, बन्धु नहीं है, दोस्त नहीं है, सभी अपने अपने स्वार्थकी ही सिद्धिमें लगे हैं। स्वयंमें जो कषायकी वेदना होती है उसको शान्त करनेमें ही लगा करते हैं। यह पूरबकी प्रतीति है। स्वरूप ही ऐसा है, ऐसा सुनकर किसीसे घृणा करनेकी बात न सोचना, स्वरूपको समझना है। प्रत्येक जीव केवल अपने आपके प्रयोजनकी सिद्धिमें रहा करता है, कोई किसीका पालक पोषक रक्षक मित्र हो ऐसी कोई बात नहीं है। किसीमें अपने आपके स्वार्थसिद्धि करते हुएमें कोई अनुकूल पड़ जाय तो उसे मित्र मान लेते हैं, पर जब एक जीव दूसरेका कुछ कर ही नहीं सकता, न सुधार न बिगाड़ तो कोई जीव किसी दूसरेका शत्रु अथवा मित्र कैसे बन सकता है ? सभी अपने-अपने स्वार्थकी सिद्धिमें लगे हैं। सभी जीवोंको यों देखना कि यह मेरा मित्र है यह मेरा शत्रु है, केवल भ्रम मात्र है, वस्तुतः तो मैं ही अपना शत्रु हूं। जब अपने स्वभाव दर्शनसे चिगकर परनिमित्तमें लगता हूं परके आश्रयमें परकी दृष्टिमें लगता हूं तो मैं ही अपने आपका शत्रु बन जाता हूं और जब मैं परका स्नेह रागद्वेष छोड़कर अपने स्वरूपके निकट बसा करता हूं तो मैं ही अपना मित्र बन जाता हूं, है नहीं कोई शत्रु मित्र। लेकिन यहाँ नारकी यह चिन्तन कर रहा है कि जिनके पीछे मैंने बहुत श्रम किया, पाप किया उनमें से यहाँ एक भी मेरे साथ नहीं आये।

शुभाशुभानि कर्माणि यान्त्येव सह देहिभिः।
स्वार्जितानीति यत्प्रोचुः सन्तस्तत्सत्यतां गतम् ॥१७२१॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर्मोंका स्वयं फल भोगनेके तथ्यका विचार—नारकी जीव विचार कर रहा है कि जो बड़े-बड़े पुरुष कहते थे कि अपने ही उपार्जन किए हुए शुभ अशुभ कर्म जीवके साथ जाते हैं और कोई साथ नहीं जाता, तो यह बात मुझे आज बिल्कुल सत्य लग रही है। यही तो होता है कि यहाँ जन्म हुआ पूर्वभवसे आकर लेकिन कुछ भी साथ नहीं आया। कितना धन कमाया लाखों करोड़ोंकी सम्पदा जोड़कर रख ली, मगर उसमें से एक धेला भी साथ नहीं आया, एक दो बार नास्ता ही कर लें इतनी भी चीज साथ नहीं आयी, और आये हैं तो ये जो पापकर्म बाँधे थे वे ही साथ आये हैं। जिन जिनसे मोह किया, प्यार किया, जिनके पीछे बड़े बड़े विकल्प किया उनमें से कोई साथ नहीं आया, यह मैं अकेला ही इन सब दारुण दुःखोंको भोग रहा हूं। सो यह बात बिल्कुल सच निकली जैसा कि संत पुरुष कह गए थे कि ये जीव अपने ही अपने उपार्जन किए हुए शुभ अशुभ कर्मोंको साथ ले जाते हैं, दूसरा और कोई साथ नहीं जाता। जिस शरीरका इतना पोषण करते हैं, जिस शरीरको खिलानेमें आसक्त होकर हम अपनी सब कुछ सुध बुध खो बैठते हैं वह शरीर भी साथ नहीं जाता है। हाँ सूक्ष्म शरीर तैजस कार्माण शरीर साथ जाता है जो नवीन शरीरकी रचनाका बीजभूत बनता है, अर्थात् कर्म तो साथ जाते हैं जीवके मरनेपर, पर चेतन अचेतन परिग्रह जो कुछ भी इकट्ठे हुए हैं वे कुछ भी साथ नहीं जाते। क्षणभरमें ही देख लो कितना महान अन्तर हो गया? अभी क्षणभर पहिले तो थे करोड़पति, लोग इसकी हू हजूरीमें रहते थे और क्षणभर बाद ही हो गया नारकी, अकेला ही नरकभूमिमें पहुंचकर नारकी दुःख सहने लगा। तब तो कुछ नहीं विचारा इस जीवने कि मेरा सही कर्तव्य क्या है, अकर्तव्य न करना चाहिए, लेकिन उन कर्मों के फलमें आज जो यह दुर्गति हुई है उस दुर्गतिको तो भोगना ही पड़ेगा, वे भोगे बिना छूट नहीं सकते। जो कोई प्रबुद्ध नारकी है वह तो कुछ विचार करके ज्ञानबल बढ़ाता है और अज्ञानी नारकी उन कष्टोंको सह-सहकर असाता कर्मोंका फल भोगता है।

धर्म एव समुद्धर्तुं शक्तोऽस्माच्छ्वभ्रसागरात्।
न स स्वप्नेऽपि पापेन मया सम्यक् पुरार्जितः ॥१७२२॥

उद्धारक धर्मका सेवन न किये जानेका विषाद—नारकी जीव विचार करता है कि इस नरकरूपी समुद्रसे उद्धार करनेके लिए एक धर्म ही समर्थ है, लेकिन मुझ पापीने स्वप्नमें भी कभी धर्मका उपार्जन नहीं किया जिसके फलमें अब नरककी महती यातनाएँ भोगनी पड़ रही हैं। जीवका उद्धार करनेमें समर्थ एक धर्म ही है। उद्धार क्या चीज? शांति होना; अनाकुलता होना, कष्ट न होना इसीका नाम उद्धार है। जीवका उद्धार अर्थात् जीवको शान्ति प्राप्त होना, शान्तिका हेतु एक धर्म ही है। धर्मको छोड़कर और कुछ शान्तिका उपाय नहीं है। धर्म नाम है आत्माके स्वभावका। आत्माके स्वभावको जानकर उस स्वभावमें ही उपयोग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रमाना इसका नाम है धर्मपालन। यह बात अपने जीवनमें कितने अंशमें बनती है इस पर कुछ दृष्टि जरूर करना चाहिए। आत्मा ज्ञानरूप है। यह ज्ञान अपने आधारभूत ज्ञानस्वरूपको न जाने और अपने आधारसे विमुख होकर बाह्यमें दृष्टि करके पदार्थोंकी जानकारी बनाये वह सब अधर्म है, अशान्तिका हेतुभूत है। अपने आपमें सत्य क्या है, इसका निर्णय तब तक नहीं हो सकता जब तक पर्यायबुद्धिको न छोड़ें। मेरा वास्तविक स्वरूप जो अपने आपके सत्त्वके कारण सहज है किसी परकी अपेक्षा नहीं रखता, स्वयं जो मेरा स्वरूप है, जिस स्वरूपसे मेरा निर्माण है उस स्वरूपकी खबर इस मनुष्यको तब आ सकती है जब इन चतुराइयोंका परित्याग कर दे, अर्थात् इस लोकमें कुछ जानकारी देह जाति कुलका कुछ लगाव अथवा धर्मके नामपर जो जो कुछ भी हमने जाना है उपदेशोंसे, दूसरोंसे वे भी विकल्प करते हैं। ये सारे विकल्प जब टूटें तो उन विकल्पोंसे रहित अवस्थामें स्वयं अपने आपको विदित हो सकता है कि मेरेमें सत्य तत्त्व क्या है ? हम अध्ययन करते हैं, शास्त्र भी पढ़ते हैं, जो हमने सीखा है ठीक है, सीखा है, मगर सीखा इसलिए है कि इन सब सीखोंको भी भूलकर इन सब सीखोंके विकल्पोंको भी तोड़कर हम एक परमविश्राममें अपना उपयोग बनायें। वहाँ ही सत्यका अनुभव हो सकता है। जब तक हम कोई विकल्प पकड़े हुए हैं तब तक हमें सत्यका अनुभव नहीं होता।

धर्मोद्भवके आधारका विचार—धर्म कहीं बाहर नहीं है, जो जगतमें भ्रमण करके हम उस धर्मको पा लें। धर्म न किन्हीं क्षेत्रोंमें है, न किन्हीं बाह्य पदार्थोंमें है, और न वह मेरा धर्म किसी देव, शास्त्र, गुरुसे प्राप्त होता है। वह तो अपने आपमें अपनी सहज कलासे स्वयं प्रगट होता है। हाँ देव, शास्त्र, गुरु, क्षेत्र, तीर्थ, वन्दना आदिक ये सब हमारी पात्रता बनानेके कारण हैं कि हम अपने आपमें बसे हुए धर्मका अनुभव करें। कोई देव या कोई गुरु मुझे धर्म दे जाय, ऐसा धर्म कोई देने लेनेकी चीज नहीं है। हाँ गुरु स्वयं धर्मयुक्त हैं, हम उनकी संगतिमें रहकर और उनके अनुभव वचनोंको सुनकर हम अपने आपमें स्वयं ज्ञान बनाते हैं और धर्मका अनुभव कर लेते हैं। धर्ममय यह आत्मा स्वयं है, अपने धर्मका आश्रय न किया जानेके कारण जगह-जगह इन जीवोंको रुलना पड़ता है। हमारा आत्मा स्वयं ज्ञान और आनन्द स्वरूप है, ज्ञानका स्वरूप है प्रतिभास, मात्र जानन। उस आत्माको निर्विकार, उपाधि रहित निरखें तो हमें अपने स्वरूपका भान होता है। सबसे बड़ी अटक है धर्मसे विमुख होनेमें पर्यायबुद्धि। प्रथम तो यह जीव इस देहमें ही आत्मबुद्धि कर रहा है, जिस जीवको जो देह मिला उसे ही 'यह मैं हूं' इस प्रकार स्वीकार करता है और इसी कारण देहके विषयोंके साधनोंमें अपना हित समझता है। देहसे आत्मबुद्धि हटे, देहसे निराला मैं कोई ज्ञानमात्र तत्त्व हूं इस प्रकारकी दृष्टि आये तो आत्मा धर्मपालनका अधिकारी हो सकता है। जब तक अपनी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सुधि नहीं हुई, अपना परिचय नहीं मिला धर्म कहाँ करेंगे ? किसका नाम धर्म हुआ ? मनसे जो कुछ विचारा जाता है वह आत्माका स्वरूप नहीं है। वचनोंसे जो कुछ बोला जाता है, जो चेष्टा की जाती है, शरीरसे भी जो चेष्टा की जाती है—खड़े रहना, यात्रा करना, पूजन करना, अमुक अमुक पैरोंकी चेष्टा करना, केवल ये चेष्टामात्र धर्म नहीं है। इन चेष्टावोंके करते हुए जो अपने आपके स्वभावपर दृष्टि जाती है, यह मैं सबसे निराला शाश्वत ज्ञानज्योतिस्वरूप आनन्दमय अमूर्त निर्लेप निरञ्जन अन्तस्तत्व हूं—ऐसी अपने अखण्ड शाश्वत ज्ञानस्वभावकी सुधि आये तो वहाँ धर्मपालन होता है। पूजनसे भी यही बात सीखते हैं, प्रभुके गुणोंका स्मरण अपने आपकी सुधिके लिए है। हम अपनी सुधि तो कुछ करें नहीं भौर बाह्यमें धर्मके नाम पर कितना ही मन वचन कायका विस्तार बनालें तो वहाँ निराकुलता उत्पन्न नहीं होती। धर्म करना अर्थात् अपने स्वभावका आश्रय करना यही एक ऐसा महान पुरुषार्थ है कि जो हमारा उद्धार कर सकता है। उस धर्मका तो पालन किया नहीं, इसके फलमें आज तक जन्म मरणके घोर दुःख सह रहे हैं। कोई प्रतिबुद्ध सम्यग्दृष्टि नारकी हो तो वह ऐसा चिन्तन करता है कि अब जितने अंशमें उसके ज्ञान है उसको शान्ति प्राप्त होती है ? धर्म ही आत्माका उद्धार करनेमें समर्थ है। मैंने स्वप्नमें भी पूर्व जन्ममें धर्म नहीं किया, ऐसा वह नारकी चिन्तन कर रहा है।

सहायः कोऽपि कस्यापि नाभून्न च भविष्यति।
मुक्त्वैकं प्राक् कृतं कर्म सर्वसत्त्वाभिनन्दकम् ॥१७२३॥

लोकमें अशरणताका विचार—इस संसारमें कोई किसीका सहायक नहीं है, सहायक हो कैसे ? वस्तुके स्वरूपपर दृष्टिपात करिये—प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है। उदाहरणमें यहींकी वस्तु ले लीजिए, यह एक घड़ी है और यह एक चौकी है। तो घड़ीका स्वरूप घड़ीमें है और चौकीका स्वरूप चौकीमें है। यह चौकी घड़ीका कुछ नहीं कर सकती। तो एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है। जब घड़ी चौकीपर रखी है तब भी चौकी घड़ीमें कुछ नहीं कर रही, किन्तु चौकीका एक आश्रय लेकर घड़ी अपने स्वरूपमें मौजूद है। परिवारमें १०-५ जीव बस रहे हैं, परस्पर प्रेमसे रहते हैं, एक दूसरेकी सुध लेते हैं, भोजन कराते हैं इतनेपर भी कोई किसीका कुछ नहीं कर रहा। तत्त्व-दृष्टिसे देखो—प्रत्येक जीव अपने भावमात्र है। मेरा स्वरूप है ज्ञानानन्द, उसके ही विस्तारमें वह अपने ज्ञानानन्द भावको छोड़कर दूसरे जीवका कुछ भी करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। सभीके अपनी-अपनी कषाय लगी हैं, राग लगा है, तो उस कषाय और रागकी वेदना शान्त करनेके लिए वे परिवारके सभी लोग आपकी अपनी चेष्टाएँ करते हैं, दूसरेको सुखी करनेके लिए कोई चेष्टा नहीं कर रहे, किन्तु अपनी वेदना मिटानेके लिए वे चेष्टा कर रहे हैं। अनेक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दृष्टान्तोंसे समझ लीजिए। आपके सामने कोई भिखारी बड़े कार्त स्वरमें रोता हुआ आये, आपने दया करके उसे भोजन करा दिया तो लोकव्यवहारमें तो कहा जायगा यह कि देखो अमुक सेठने उस भिखारीका दुःख मेट दिया, पर उस भिखारीकी परिणति भिखारीमें है, सेठ की परिणति सेठमें है, उस सेठने स्वयं अपनेमें उस भिखारी जैसा क्लेश बनाया तो उस अपने ही क्लेशको मिटानेके लिए सेठने उसे भोजन दिया और भोजन करके भिखारी जो सुखी हुआ, उसने अपना दुःख मेटा, सो भिखारीने अपना विचार करके अपना दुःख मेटा, सेठने अपनी वेदना शांत करनेके लिए उसे भोजन दिया। वह दूसरेको सुखी अथवा दुःखी नहीं कर सकता। कोई विरोधी मनुष्य है वह किसीपर आक्रमण करे, किसीको दुःखी करे तो लोकव्यवहारमें यह कहा जाता है कि देखो अमुक बैरीने अमुकको बड़ा परेशान कर डाला, लेकिन वस्तुस्वरूप यह कहता है कि उस विरोधीने केवल अपनी कल्पनाएँ, अपना परिणाम किया, इससे बाहर कुछ नहीं किया। अब उसका ही उदय ऐसा खोटा आया कि उस बैरीके निमित्तसे वह परेशानीमें पड़ गया। उसमें दूसरेने कुछ नहीं किया। तो एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है, निमित्त भले ही बना रहे, पर कर रहे हैं सभी स्वतंत्र रूपसे अपना-अपना परिणमन।

पुण्य, पाप परिणाम—जब किसी जीवका भवितव्य अच्छा है, पुण्यका उदय है तो दूसरे जीव भी उसके सहायक बनते हैं और अगर उसका ही उदय प्रतिकूल है तो दूसरे जीव उसकी रक्षामें निमित्त भी नहीं बन पाते। कोई भी दूसरा जीव किसी दूसरे जीवका न कभी सहायक हुआ, न सहायक है और न कभी सहायक होगा। पापोंसे बुद्धि हटे, विषयोंसे प्रीति हटे, बाह्यपरिग्रहोंकी तृष्णा हटे, अपने आपके स्वरूपका भान हो, अपनी ओर रहे तो यही वास्तविक अपना सहारा है। बाह्यमें किसी भी पदार्थकी आशा करना कि ये मेरे सहायक होंगे यह तो एक भ्रमकी बात है, पर मोहमें यह जीव परको सहायक मानता है। बालक उत्पन्न हुआ तो छोटी ही अवस्थामें उसे निरखकर लोग ऐसी कल्पना बनाते, ऐसी बुद्धि बनाते कि यह बड़ा होगा, मेरे साथ बड़े विनयका व्यवहार करेगा, मुझे सुख शान्ति देगा, मेरा सहायक होगा, मेरा यह बच्चा सहारा है पर यहाँके बच्चोंकी परिणति देखकर आप अनुभव कर लीजिए कि कौन किसका सहारा हो सकता है? कदाचित् कोई बच्चा अनुकूल भी हो तो वह भी मेरे दुःखके लिए है ऐसा आप निर्णय कर लीजिए। कोई बच्चा मेरे प्रतिकूल है तो वह भी मेरे दुःखके लिए है। जो बच्चा प्रतिकूल है वह तो दुःखके लिए है ही, पर जो अनुकूल है, विनयशील है, बड़े प्रेमके बोल बोलता है वह तो मेरे और विशेष दुःखके लिए है, क्योंकि मैं उसके सुखी रखनेके लिए भरसक प्रयत्न करूँगा, रात दिन उसको ही दिलमें बसाकर क्षोभ में रहा करूँगा, तो दूसरा पदार्थ मेरे सुखके लिए कौन हो सकता? तो यहाँ कोई किसीका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहाय नहीं। अपना सहाय तो एक अपना ही ज्ञान है, अपना ही सदाचार है। यहां भी यदि कोई दूसरा मेरी बात पूछता है तो मैं अमुक चंद हूं, अमुक लाल हूं। इस वजहसे लोग मेरी बड़ी पूछ करते हैं यह बात नहीं है किन्तु बड़े अच्छे सदाचारसे रहता हूं, बड़ी नीति व्यवहार से रहता हूं तब लोग पूछ करते हैं। यदि मैं ही किसी दूसरेको गाली देने लगूँ अथवा असद्-व्यवहार करने लगूँ, अभिमानसे रहने लगूँ तो फिर कौन मेरी पूछ करेगा? लोग मुझे बड़ा क्यों मानते हैं? अरे जब मेरी करतूत अच्छी है, व्यवहार न्याययुक्त है इसकी वजहसे लोग पूछ करते हैं। यहाँ जो पूछ भी करते हैं वे अपने सुखी रहनेके लिए पूछ करते हैं, फिर जगत में कौन किसके लिए सहाय है? अपनी जिम्मेदारी अपने आपपर है, दूसरा मेरा कोई जिम्मे-दार नहीं, कोई किसीसे प्रीति करने वाला नहीं। कैसा ही कोई बड़ा प्रीतिवान हो, स्त्री हो, पुत्र हो, निष्कपट भी हो, कोई छल भी न रखता हो तिसपर भी वस्तुस्वरूप यह बतला रहा है कि वह जीव केवल अपने ही भाव बना पा रहा है मेरा परिणमन कुछ नहीं कर सकता।

अपनी ही सुध बनाये रहनेमें श्रेयोलाभ—जब सर्व पदार्थ अपना ही परिणमन करते हैं तब इस स्थितिमें हम यदि अपने आपका कुछ ध्यान रखें, अपनी कुछ लगन बनायें, अपनी ओर आयें तो हमारा जीवन सफल है, नहीं तो बाह्य वृत्तियोंमें हमारा जीवन ऐसा ही बेकार समझिये जैसे अनन्त भव हमारे गुजर गए। जो भी शान्त हुए हैं सबको इस धर्मकी छायामें आना पड़ा है। जो भी शान्त हो सकेंगे, निराकुल हो सकेंगे वे इस धर्मकी छायामें आकर निराकुल हो सकेंगे। हम कभी सुखी होंगे शान्त होंगे पर जितना हम विलम्ब कर रहे हैं, धर्मपालनके लिए हम जितनी देर कर रहे हैं उतना ही इस संसारमें अधिक रुलेंगे। पता नहीं कि यह मानव देह फिर कब मिले? तो यह यथार्थ समझ रखें कि धर्मके लिए हम विलम्ब न करें। यह विश्वास रखें कि परिवारमें ये जो १० जीव हैं ये सब अपने-अपने कर्म लिए हुए हैं। कहो पिता गरीब रहे और बच्चा ऐसा होशियार हो कि थोड़े ही समयमें वह धनिक बन जाय, बड़ी कुशलता प्राप्त कर ले, बड़ी चतुराई आ जाय। तो यह सब जीवोंका अपना अपना उदय है। ऐसा भ्रम करना भूल है कि मैं किसीका जिम्मेदार हूं, मैं ही करने वाला हूं, मैं करता हूं तब इन जीवोंको सुख मिलता है, इनका पालन पोषण होता है। ये सब भ्रम पूर्ण बातें हैं। पुरुषार्थ चलता है मोक्षमार्गमें और भाग्य प्रधान रहता है सांसारिक कार्योंमें। ये दो चीजें हैं—भाग्य और पुरुषार्थ। दोनों बातें चलती हैं यहाँ भी, लेकिन सांसारिक सुख मिले, वैभव मिले, इज्जत मिले, इन सबमें मुख्य है भाग्य और हमारा परिणाम सुधरे, हमारे कर्म कटें, मोक्षमें हमारे कदम बढ़ें इन कामोंमें मुख्य है पुरुषार्थ। दो पुरुष परस्परमें झगड़ गए, एक कहे कि भाग्य बड़ा है और एक कहे कि पुरुषार्थ बड़ा है। राजाके यहाँ न्याय गया तो राजाने उन दोनोंको कच्ची जेल दे दी। एक कोठरीमें बंद कर दिया और कह दिया कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तुम्हारा न्याय दो दिन बाद होगा। उसी कोठरीके अन्दर सेर सेर भरके दो लड्डू एक जगह पहिलेसे ही छिपाकर रखवा दिये। दूसरे दिन जब उन्हें भूख लगी तो उनमें से जो पुरुषार्थ को प्रधान कहता था वह इधर उधर कोठरी भरमें कुछ ढूंढ़ने लगा। उसे एक जगह दो लड्डू दीखे। वह बड़ा खुश हुआ। स्वयं खाया और दूसरेपर भी दया आयी सो उसे भी खिलाया, दोनोंने भूख मेट ली। जब राजाने उन दोनोंको कोठरीसे निकालकर न्याय करनेके लिए खड़ा किया तो उस पुरुषार्थ-प्रधान कहने वाले व्यक्तिने पहिले ही कह दिया कि देखो महाराज! हमने पुरुषार्थ करके दो लड्डू उस कोठरीमें खोज लिए थे, यह भाग्यवादी अपने भाग्यको लिए बैठे ही रहे थे। हमने खुद लड्डू खाकर अपनी भूख मिटाई और इस भाग्यवादीको भी खिलाकर इसकी भी भूख मिटाई, तो महाराज पुरुषार्थ ही प्रधान हुआ। तो भाग्यवादी झट बोल उठा—महाराज हमने कुछ भी प्रयत्न न किया था, प्रेमसे बैठे रहे, पर हमारा भाग्य था तभी तो इनके द्वारा हमें लड्डू खानेको मिले थे। तो महाराज भाग्य प्रधान हुआ। तो ये सांसारिक चीजें भाग्यके अनुसार प्राप्त होती हैं और मोक्षमार्ग सम्बंधी चीजें पुरुषार्थकी प्रधानतासे प्राप्त होती हैं। ज्ञानी जीव तो इन सांसारिक चीजोंसे अपना हित हो नहीं समझता इसलिए न वह भाग्यको महान मानता और न इन सांसारिक सुखोंको। ज्ञानी जीव तो एक धर्मके आश्रयको महत्व देता है। जीवोंका उद्धार करने वाला शरणभूत एक धर्म है। नारकी जीव विचार कर रहा है कि यहाँ मेरा कोई सहायक न हुआ, न है और न होगा। यदि संसार में कोई सहायक हो सकता है तो अपने शुभ कर्म ही सहायक हो सकते हैं।

संस्थानविचय धर्मध्यानमें ज्ञानीका नरक संबंधी दशाका चिन्तन—संस्थानविचय धर्मध्यानमें इस समस्त लोककी रचनाका विचार किया जा रहा है। अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक—इन तीन भागोंमें यह लोक बंटा हुआ है। कैसी-कैसी रचनाएँ हैं, कैसे कैसे जीव रहते हैं इसका वर्णन चल रहा है। अधोलोकमें नारकी जीव बिलोंमें रहा करते हैं। यद्यपि वे बिल इतने बड़े हैं जैसी कि आजकी यह परिचित दुनिया है। लेकिन उन्हें बिल यों कहते हैं कि उसके चारों ओर पृथ्वी है, नीचे अगल-बगल और ऊपर पृथ्वी है। तो जैसे कोई एक फिट लम्बा चौड़ा मोटा काठ पड़ा हो और उसके भीतर १०-२०-५० छिद्र हों तो जैसे उनका मुख किसी तरफ बाहर नहीं निकला है, वह भीतर ही भीतर है ऐसे ही मोटी मोटी ७ पृथ्वी हैं, उनके भीतर कुछ बिल हैं जिन बिलोंमें वे नारकी जीव रहते हैं तो वे बिलोंकी तरह हैं। उन बिलोंमें नारकी जीव निवास करते हैं। नरकमें उत्पत्ति पापकर्मके उदयसे होती है। तो पापकर्मका विपाक इतना कटुक है ऐसा समझनेके लिए संस्थानविचय धर्मध्यानमें अधोलोकका चिन्तन चल रहा है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तत्कुर्वन्त्यधमाः कर्म जिह्वोपस्थादिदण्डिताः ।
येन श्वभ्रेषु पच्यन्ते कृतार्तकरुणस्वराः ॥१७२४॥

नारकियोंके आर्तस्वरताका चित्रण—फिर नारकी जीव ऐसा विचार करता है कि जो अधम पुरुष जिह्वा और स्पर्शन इन्द्रियसे दण्डित होते हैं वे ऐसे कर्म करते हैं जिसके उदय से वे नरकमें उत्पन्न होते, पकाये जाते हैं, रोते हैं, चीत्कार शब्द करते हैं, नाना व्याधियां सहते हैं । देखिये पञ्चेन्द्रियके विषयोंमें घ्राण इन्द्रियका विषय उतना प्रबल नहीं जितना कि स्पर्शन और रसना इन्द्रियका विषय प्रबल है, इसी प्रकार चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियके विषय भी उतने प्रबल नहीं हैं जितने कि स्पर्शन और रसना इन्द्रियके विषय हैं । स्पर्शन और रसना–इन दो इन्द्रियोंमें ये संसारी जीव अधिक आसक्त रहते हैं । जहाँ स्वाद चखनेकी लालसा जीवमें लगी हुई हो, वहाँ अपने धर्म कर्मकी कहाँ सुधि रहती है ? मैं एक चैतन्यमात्र आत्मतत्त्व हूं, अमूर्त हूं, निर्लेप हूं, इस प्रकारकी भावना उसे कहाँ हो सकती है जो रसास्वादनमें मस्त है । इसी तरह जब विषयभोग भोगे जा रहे हों उस समय कहाँ अपने अमूर्त आत्मतत्त्वकी सुधि होती है ? इन अशुभ कर्मोंके कारण इस जीवको नरकोंमें जन्म लेकर घोर यातनाएँ सहनी पड़ती हैं । हम आप सबको यह शिक्षा लेनी है कि इन विषयोंके साधन बनाये रहनेसे इस आत्माका कुछ भी हित नहीं है । विषयोंकी प्रीतिसे लाभ कुछ नहीं होता, अन्तमें पछतावा ही होता है । यह समय गुजर जायगा । यह अमूल्य जीवन फिर मिलना कठिन हो जायगा । इन विषय साधनोंसे प्रीति तजें, उन्हें असार अहितकर धोखामयी समझें, उन्हें अपने चित्तसे हटा दें । ऐसी बात यदि किसी भी क्षण बन सके तो अपने आपमें एक ऐसा अद्भुत आनन्द प्रकट होगा जो आनन्द परमात्माके होता है । उसका आंशिक अनुभव कर लेंगे और तब समझ जायेंगे कि आत्माका असली स्वरूप यह है, उसे दृष्टिमें रखना सो धर्मका पालन है, और यह धर्मपालन ही हम आपका उद्धार करनेमें समर्थ है ।

चक्षुरुन्मेषमात्रस्य सुखस्यार्थे कृतं मया ।
तत्पापं येन सम्पन्ना अनन्ता दुःखराशयः ॥१७२५॥

उन्मेषमात्र सुखके लिये किये गये पापके संतापका चित्रण—लोकके वर्णनमें अधोलोककी रचनाएँ बतायी जा रही हैं । अधोलोकमें ७ नरक हैं । उन नरकोंमें रहने वाला नारकी जीव ऐसा विचार करता है कि मैंने पूर्व भवमें केवल इतने समयके सुखके लिए जैसे नेत्रके टिकारनेमें जितना समय लगता है उतने समयके सुखके लिए इन्द्रिय विषयोंके आनन्दके लिए जो पाप किया उस पापके फलमें यह बहुत अनन्त दुःखों की राशि उत्पन्न की है याने विषय सुखोंके थोड़ेसे समयके लिए जो पाप किया, जो घमंड बनाया, जो परदृष्टियां कीं, जो छल अन्याय किया, उनके फलमें अब ये नरकमें अनन्ते दुःख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भोगने पड़ रहे हैं—ऐसा यह नारकी जीव विचार कर रहा है। सो नारकियोंमें जो कोई विवेकी हो सो ही ऐसा विचार कर सकता है बाकी तो अज्ञानी नारकी मरने मारनेमें ही अपना समय गंवाते हैं।

यानि सार्द्धं ततः पाति करोति नियतं हितम्।
हन्ति दुःखं सुखं दत्ते यः स बन्धुर्न योषितः ॥१७२६॥

धर्मकी बन्धुता व स्वजनोंकी अबन्धुताका विचार—फिर यह नारकी विचार करता है कि धर्मरूपी बन्धु ही साथ जाता है, और जहाँ जाता है वहाँ रक्षा करता है, और शेष बंधु जिनके लिए पाप किया वे कोई यहाँ नहीं आये और उन पापोंका फल अकेला ही भोगना पड़ रहा है। मनुष्योंको यह बहुत आवश्यक है कि अपने परिणामोंमें क्रूरता न लावें, और किसी दूसरेको सताना, धोखा देना, झूठ बोलना या कोई छल करना, इन बातोंमें लगे तो ये बातें तो बड़ी दुःखदायी हैं। थोड़ासा लाभ भी समझते हैं, मगर उनके फलमें नरक गतिमें दुःख भोगना होता है। नरक गति यहीं है वास्तवमें। जिनेन्द्रके कहे हुए वचन कभी झूठे नहीं होते। जब उन्होंने बताया ७ तत्त्व ९ पदार्थ वस्तुस्वरूप आत्मधर्म मोक्षमार्ग संसारबंधन आदिकके उपदेश जब उनके यथार्थ सत्य उतरे हैं तो उन्होंने जो जो भी उपदेश किया है वे सब यथार्थ हैं। अब यह रचना परोक्षभूत है। स्वर्गोंकी रचना बिल्कुल परोक्ष है इन्द्रियोंसे परे है, नरकोंकी रचना भी इन्द्रियाँ जान नहीं सकतीं तो उनके जाननेका हमारे पास कोई साधन नहीं है, और हम ऐसा सोचें कि जो चीज हमें नहीं दिखती है वह चीज है ही नहीं तो यह बात कोई ठीक माने नहीं रखती। चीजें तो बहुतसी यहाँकी भी नहीं दिखतीं, पीछे दिखतीं, पर मानते हैं कि ये हैं। तो अरहंतदेवके शासनमें जो नरक और स्वर्गोंकी रचनाका वर्णन है सो देखो समस्त ग्रन्थोंमें एकसा वर्णन है और अकेले अकेलेके मापका वर्णन है, वह वर्णन यथार्थ है। नरक भूमि है, वहाँ जीवको पापोदयमें जन्म लेकर दुःख भोगना पड़ता है। जिन लोगोंके लिए पापकर्म किए जाते हैं वे कोई वहाँ साथी नहीं बनते। वह नारकी विचार करता है कि यह धर्म ही मेरा बन्धु है, वही मेरा रक्षक है ऐसे धर्मरूपी बन्धुको मैंने पहिले पोषा ही नहीं, उसका पालन ही नहीं किया और जिनको मित्र समझा उनमें से कोई यहाँ साथ नहीं आया। नारकी जीव ऐसा विचार रहा है। धर्म नाम है अपने आपके असली स्वरूपका जानना और ऐसी प्रतीति रखना कि यह मैं हूं अन्य कुछ नहीं हूं, यही मेरा स्वरूप है, अन्य कोई चीज मेरी वस्तु नहीं है, मैं चैतन्यमात्र हूं, ज्ञानानन्दस्वरूप हूं, रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित हूं, देहसे भी न्यारा हूं, निर्लेप हूं, ऐसा ज्ञानानन्दमात्र मैं हूं। इस मेरेका दुनियामें और कुछ नहीं है, देह भी नहीं, घर भी नहीं, लोग भी नहीं, इज्जत पोजीशन आदि ये सब चीजें भी नहीं। मैं तो एक ज्ञानानन्दस्वरूप हूं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस प्रकारकी प्रतीति करना, ऐसा ही ज्ञान बनाना, और ऐसा ही जानकर परकी उपेक्षा करके अपने आपमें रत होना यही धर्म है और इस धर्मका लक्ष्य करके फिर जो कुछ भी इस धर्मकी उपासनामें प्रवृत्ति की जाती है वह सब व्यवहारधर्म है। जिन्होंने धर्मका साधन किया, धर्मका शरण गहा उनका तो उद्धार हुआ और जो विषयोंकी उपासनामें रहे वे संसारमें घूमते ही रहे। नारकी जीव विचार कर रहा है कि मैंने धर्म नहीं पोषा इस कारण नरकभूमिमें आकर ये दुःख सहने पड़ रहे हैं। संसार दुःखमय है पर यह मोही प्राणी उन पञ्चेन्द्रियके विषयोंमें ही रत होकर सुख मान रहा है, कभी कोई जरा भी कष्ट आया तो उसमें झट वह घबड़ा जाता है। इस मोही जीवके दो प्रकृतियाँ पड़ी हैं—एक तो विषयोंमें सुख मानना और किसी भी प्रकारका क्लेश आये तो उसमें बड़ा दुःख अनुभव करना। वह यह नहीं सोच सकता कि पशु पक्षियोंके भवोंमें, नारकोंके भवोंमें कितने कठिन कठिन दुःख हैं, उन दुःखोंके आगे इस मनुष्यभवका कौनसा दुःख है ?

परिग्रह महाग्राह संग्रस्तेन्नस्तचेतसा।
न दृष्टा यमशार्दूलचपेटा जीवनाशिनी ॥१७२७॥

परिग्रह पापके संतापका चित्रण—अधोलोकमें उत्पन्न हुआ नारकी जो कोई विवेकी है वह ऐसा विचार करता है कि परिग्रहरूपी महादाहसे पीड़ित होकर मैंने इस यमकी चपेटको नहीं देखा अर्थात् परिग्रहोंमें इतना आसक्त रहा कि उसकी धुनमें सारा जीवन खोया और अन्तमें मरण करना पड़ा। परिग्रहोंमें आसक्त होकर निरंतर पाप ही कर रहा है। सूत्र जी में बताया है कि जो बहुत आरंभ परिग्रह रखता है उसे नरक आयुका बंध होता है। बहुत-बहुत अपने काम-काज बढ़ाना, दुकान मिल आदिक बढ़ाना यह तो आरम्भ है और परिग्रह नाम मूर्छाका है। जो जितना परिग्रह रखता है प्रायः उसको उतनी मूर्छा लगी रहती है। जहाँ परपदार्थमें ममता का परिणाम हो उसका नाम परिग्रह है। कहो ६ खण्डकी विभूति है और मूर्छा बिल्कुल न हो। जो यह जानता है कि ये सब बाहरी चीजें हैं, पुण्यके अनुसार आती हैं, उसकी उपेक्षा करना है। जिसे यह ज्ञान है कि ये सब बाह्य वस्तु हैं, इनसे मेरा कोई सम्पर्क नहीं है, मैं आत्मा इन परिग्रहोंसे निराला हूं, कोई मेरा स्वामी नहीं, मैं अपने सतसे परिपूर्ण हूं और ये बाहरी स्कंध हैं, परिग्रह हैं, इनसे मेरा कोई सम्पर्क नहीं, ऐसा जो जानता है वह बड़ी विभूति पाकर भी उससे उपेक्षा भाव रखता है। इस वैभवकी उपेक्षा करनेसे कहीं वह वैभव घटता नहीं है और कहो बढ़ जाय। जितनी मायासे उपेक्षा रखो उतनी ही आती है और जितना मायाकी ओर अपन जायें उतनी ही माया दूर होती है। तो जो उपेक्षा रखता है उसके पुण्य रस बढ़ता है, वैभव कम नहीं होता है। तो ६ खण्डकी विभूति वाला पुरुष भी यदि ज्ञानी है, अन्तरङ्गसे मूर्छा परिणाम नहीं रखता है तो वह निष्परिग्रह ही कहा गया है, और कोई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भिखारी ही क्यों न हो, जो कुछ भी उसके पास है उसमें यदि उसे मूर्छा है तो वह परिग्रही है और वह नरक गतिमें जन्म लेगा। नरक गतिमें जन्म लेनेके मुख्य दो कारण हैं—एक तो बहुत आरम्भ करना और दूसरा बहुत परिग्रह रखना। मूर्छा रखे तो इस परिणामके फलमें नरकगतिका बंध होता है और वहाँके घोर दुःख सहन करने पड़ते हैं।

पातयित्वा महाघोरे मां श्वभ्रेऽचिन्त्यवेदने।
क्व गतास्तेऽधुना पापा मद्वित्तफलभोगिनः ॥१७२८॥

वित्तफलभोगियोंके स्वार्थपरत्वविषयक आक्रन्दन—नारकी सोचता है कि मैंने अन्याय करके धन कमाया, अब उस धनका जिन जिनने उपभोग किया वे आज मुझे इन महाघोर नरकोंमें पटककर कहाँ गए ? वे तो यहाँ कोई दिखते ही नहीं। जो कुटुम्बी जन मेरे उपार्जित किए हुए धनके फलको भोग रहे थे वे पापी मुझे इन घोर नरकोंमें डालकर अब यहाँ दिखते भी नहीं, कहाँ चले गए, वे हमारे इस दुःखमें कोई साथी नहीं हो रहे हैं, और है सही बात, यहाँ जितने लोग घरमें आकर इकट्ठे हुए हैं—कुछ पता तो नहीं कि कौन कहाँ था, कौन किस गतिसे आया, क्या सम्बंध था, कुछ भी तो नहीं पता, अटपट कहीसे आकर यहाँ पैदा हो गए। अनन्त जीव हैं, उनमें से कोई जीव अपने घर उत्पन्न हो गया, कोई यह हिसाब तो नहीं कि इस जीवको इस घरमें ही आना था और यह मेरा कुछ लग रहा है। इस जीवमें ऐसी मोहकी आदत पड़ी है कि जो आ गया अपने घर उसीसे यह जीव मोह कर बैठता है। तो यों यह जीव चेतन अचेतन परिग्रहोंमें मूर्छा रखता है और उसके फलमें नरकोंमें जन्म लेता है। तो जिन कुटुम्बियोंसे बड़ी प्रीति रखा, जिनसे अपना बड़प्पन माना, जो मेरे लिए सर्वस्व थे, जिनका खूब ध्यान लगाया, जिनके लिए ही प्राण थे, जिनके लिए ही सर्वस्व था वे आज कोई मेरे साथी नहीं हुए, उन पाप कर्मोंका फल मुझे अकेले भोगना पड़ रहा है।

इत्यजस्रं सुदुःखार्ता विलापमुखराननाः।
शोचन्ते पापकर्माणि वसन्ति नरकालये ॥१७२९॥

महादुःखपीड़ित नारकियोंके विलापका चित्रण—इस प्रकार निरन्तर महान दुःखोंसे पीड़ित होता हुआ यह नारकी जीव मुखसे पुकार विलाप करता हुआ अपने पूर्वके पापकर्मोंका स्मरण करता हुआ बड़ा सोच करता है और नरकमें दुःख भोगता है। यहाँ जैसे मनुष्यभवमें कोई पाप किया हो और पीछे कोई दुर्गति हो जाय, दरिद्रता आ जाय, अपमान हो जाय, घर बरबाद हो जाय तो जैसे यहाँ मनुष्य बड़ा सोच करता है, अपनी पुरानी बात सोच सोच करके मैंने देखो ऐसे पाप किये, उसके फलमें इसी भवमें निर्धन हो गए और कोई पूछने वाला नहीं रहा, तो कुछ नारकी जीव तो अवधि ज्ञानी भी होते, वे पूर्व भवकी बातें भी विचार लेते हैं तो वहाँ बड़ा पश्चाताप करते हैं कि मैंने पूर्वभवमें ऐसे नाना पापकर्म किया, जिनके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

फलमें यहाँ बड़े दुःख भोगने पड़ रहे हैं। वह पापकार्य मूलमें एक ही प्रकारका है—परकी ओर दृष्टि लगाना। परसे अलग होकर बाहरी पदार्थोंमें ही चित्तको फंसाना, जिससे विषय सुखोंमें आसक्ति होती है और विरोधी जीवोंके प्रति बड़ा द्वेष जगता है। मूलमें तो एक पर-दृष्टि है और उसके विस्तारमें वे तो हैं ही, मगर प्रवृत्ति रूपमें ५ पाप हैं—हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, कुशील सेवन करना और परिग्रहमें ममता रखना। इन सभी प्रकारके पापकर्मोंके फलमें नरक गतिमें जन्म लेना पड़ता है, सो यह जीव बड़े दुःखमें पड़ता है, निरन्तर विलाप करता रहता है, अपने उन पापकर्मोंका शोक करता रहता है, पर होता क्या है शोकसे ? उन नरकोंकी आयु इतनी विकट है कि शरीरके खण्ड-खण्ड भी हो जाते हैं पर उनका मरण नहीं होता। मरण जैसे दुःख पा लेते हैं फिर भी मरण नहीं होता, वे शरीरके खण्ड-खण्ड फिर इकट्ठा हो जाते हैं, फिर पूरा शरीर बन जाता है, फिर मरने मारने वाले बन जाते हैं।

इति चिन्तानलेनोच्चैर्दह्यमानस्य ते तदा।
धावन्ति शरशूलासिकराः क्रोधाग्निदीपिताः ॥१७३०॥
वैरं पराभवं पापं स्मारयित्वा पुरातनम्।
निर्भर्त्स्यं कटुकालापैः पीडयन्त्यतिनिर्दयम् ॥१७३१॥

अन्य नारकियोंके द्वारा आक्रमणका संताप—इस प्रकार चिन्तारूपी अग्निमें जलते हुए उन नारकियोंके ऊपर उसी समय अन्य पुराने नारकी टूट पड़ते हैं, आक्रमण कर बैठते हैं। नारकी उत्पन्न हुआ तो वहाँ सब नई नई चीजें देखता है। अरे मैं किस भूमिमें आ गया ? कैसी कठिन कठिन रचना है, सब नई चीजें देखकर वह नारकी चिंतातुर होता और कुछ अपने पूर्व भवके पापोंका स्मरण करके पश्चाताप करता है, और कोई नारकी आकर शस्त्रोंसे उसके खण्ड खण्ड कर डालता है। महाक्रोधी भयंकर चीत्कार करते हुए अन्य नारकी जीव उसपर टूट पड़ते हैं और उसे पीड़ित करते हैं। नारकी पूर्वभवके पापोंको याद करता है। ओह ! मैंने पूर्वजन्ममें ये पाप किए थे इसलिए अब उन पापकर्मोंका फल भोगना पड़ रहा है। दूसरे नारकी उसके ही शरीरके मांसको उसे खिलाते हैं और कहते हैं कि ले तू खूब मांस अब खा ले, पूर्व भवमें मांस खानेका तू बड़ा लोलुपी रहा, किसी नारकीने पूर्व भवमें खूब शराब पी हो तो अन्य नारकी उस नारकीको तप्त लोहा, तांबा आदिका तप्तायमान जल पिलाते हैं, कहते हैं कि ले, तूने पूर्वभवमें बहुत शराब पी, अब पी ले खूब शराब। किसी ने पूर्व जन्ममें कहो उसका उपकार किया हो पर वहाँपर उसे वह विरोधी जंचता है। चाहें किसी माँ ने अपने बच्चेकी आँखमें अंजन लगाया हो बड़ी हित बुद्धिसे, पर मां और बेटा यदि नरकमें जन्म लेते हैं तो वह बेटा यों विचार करता है कि इसने पूर्व जन्ममें मेरी आँखोंमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सींक घुसेड़कर मेरी आँखें फोड़ना चाही थीं। तो वे नारकी पूर्वभवके पापोंकी याद दिलाते हैं, बैरकी याद दिलाते हैं और बहुत कटुक वचनोंसे उसका तिरस्कार करते हैं। बड़ी निर्दयतासे जिस प्रकार भी बनता है वे पुराने नारकी उस नये नारकीको दुःख देते हैं। जब वह नया नारकी समर्थ हो जाता है तो वह भी दूसरे नारकियोंको मारने लगता है। बहुतसे लोग उन नारकी जीवोंके फोटो बनाते हैं उनका मुख ऊँट जैसा, बैल जैसा, जिनके सींग भी लगे हैं, तो वे कोई पशु हों ऐसी बात नहीं है। वे स्वयं नारकी ही हैं जो अनेक प्रकारसे अपने शरीरकी रचना कर लेते हैं। उनका बड़ा भयानक रूप हो जाता है, जिस प्रकार बने वे दूसरे नये नारकीको दुःख देनेकी ही बात सोचा करते हैं। वे सभीके सभी नारकी परस्परमें ही लड़ते हैं और परस्परमें ही एक दूसरेका घात करते हैं।

उत्पाटयन्ति नेत्राणि चूर्णयन्त्यस्थिसंचयम्।
दारयन्त्युदरं क्रुद्धास्त्रोटयन्त्यन्त्रमालिकाम् ॥१७३२॥

नारकियों द्वारा नारकियोंके दुःखका चित्रण—वे पुराने नारकी उस विलाप करते हुए नये नारकीके नेत्रोंको उखाड़ लेते हैं, उनके ऐसे वैक्रियक शरीरके अंग हैं कि वे अपने हाथको जो चाहे सो बना डालते हैं। जैसे शेरका पञ्जा बनाना है तो उनका हाथ ही पञ्जा बन जाता है। उन्हें कोई शस्त्र चाहिए तो उनका हाथ ही शस्त्र बन जाता है। जैसे देख लो—मनुष्य लोग अपने ही हाथकी कितनी ही चीजें बना लेते हैं, पकड़नेकी सम्सी बनालें, मारनेके लिए गदा बना लें, टेढ़ा करके हाथ मारें तो कहो तलवार जैसी चोट ला दें, अंगुलियोंसे चोंट लें तो कहो चींटी बना लें, इसी हाथसे कटोरा, चम्मच आदिका काम ले लें तो जैसे यहां ही मनुष्य लोग अपने हाथके कई आकार धारण कर सकते हैं, इसी प्रकार वे नारकी अपनी विक्रियासे अपने हाथके ही अनेक शस्त्र बना लेते हैं। विक्रियासे उनके हाथ बढ़ते भी तो हैं, उन्हें मारनेके लिए किसी शस्त्रकी जरूरत हुई तो वह शस्त्र उन्हें कहीं बाहर से नहीं लाना पड़ता, उनके ही हाथ वह शस्त्र बन जाते हैं। जैसे किसी नारकीको किसी नारकी का सिर कुल्हाड़ीसे काटना है तो हाथ उठाते ही वह हाथ कुल्हाड़ी बन जाता है। तो एक नारकी दूसरे नारकीको देखकर क्रोधमें आकर उसकी आँखोंको उखाड़ लेता है। कोई नारकी हड्डियों को चूर्ण चूर्ण कर डालते हैं, उदरको फाड़ डालते हैं और अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस नारकी की आँतोंको तोड़ डालते हैं। नारकियोंके भी बैक्रियक शरीर हैं और देवोंके भी पर इन दोनोंके वैक्रियक शरीरोंमें बहुत अन्तर है। देवोंको भूख प्यास ही नहीं लगती, हजारों वर्षोंमें जब कभी भूख प्यास लगी तो उनके ही कंठसे अमृत झरता है जिससे वे तृप्त हो जाते हैं। और नरकोंमें भूख प्यासकी इतनी तीव्र क्षुधा है कि सारा अन्न भी खा जावें फिर भी क्षुधा न मिटे, सारे समुद्रका जल पी जावें फिर भी तृषा न मिटे, लेकिन खानेको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वहां एक दाना नहीं और पीनेको वहां एक बूंद पानी नहीं। देवोंके शरीरका घात नहीं किया जा सकता और नारकियोंके शरीरके खण्ड खण्ड हो जाते हैं, हालांकि वे नारकी बीचमें मर नहीं सकते, इस कारण वे टुकड़े फिर मिल कर शरीररूप हो जाते हैं, वेदना वैसी ही होती है जैसी कि मनुष्योंको होती है। तो वे नारकी एक दूसरे पर क्रुद्ध होकर अपने ही हाथोंको शेरके पञ्जे जैसा बनाकर दूसरे नारकी की आँतोंको फाड़ डालते हैं।

जैसे यहाँ एक कुत्ता दूसरे कुत्तेको देखकर शान्त नहीं रहता है भौंकता है, उसपर आक्रमण करता है, ऐसी प्रकृति है कुत्तेमें और कुत्तेमें यही बुरा अवगुण बताया है कि वे दूसरे कुत्तेको देखकर गुर्राते हैं, उस पर आक्रमण करते हैं तो ऐसे ही ये नारकी जीव भी दूसरे नारकीको देखकर क्रुद्ध होकर उसपर आक्रमण करते हैं। मनुष्य लोग तो यहां फिर भी कुछ विरोध जंचने पर धैर्य धारण करते हैं पर वे नारकी रंच भी धैर्य नहीं धारण करते, एकदम ही दूसरे नारकी पर टूट पड़ते हैं। वे नारकी इतने समर्थ हैं कि दूसरे नारकी का जो चाहें सो कर दें। कहो छुरेसे उसका पेट फाड़ दें, शस्त्रसे गला काट दें अथवा अग्निमें जलाकर भस्म कर दें। अग्नि भी उन्हें कहीं बाहरसे नहीं लानी पड़ती है। उनका ही शरीर अग्नि बन जाता है। तो वे नारकी जीव एक दूसरेको देखकर परस्परमें कलह करते हैं और एक दूसरे नारकीको दुःखी करते हैं।

निष्पीडयन्ति यन्त्रेषु दलन्ति विषमोपलैः।
शाल्मलीषु निघर्षन्ति कुम्भीषु क्वाथयन्ति च ॥१७३३॥

कुम्भीपाक आदिकी वेदनाका चित्रण—वे नारकी जीव एक दूसरेको घानीमें अर्थात् कोल्हूमें डालकर पेल देते हैं, उस नारकीके शरीरका चूरा-चूरा हो जाता है। उनको वह कोल्हू कहीं बाहरसे नहीं लाना है, उनका ही शरीर कोल्हूरूप बन जाता है। उनकी इच्छा हुई कि मैं इसे पत्थरकी दरेतीमें दल दूँ अथवा चक्कीमें पीस दूँ तो उनका ही शरीर दरेती चक्की आदि बन जाता है और उसमें उस नारकीको डालकर पीस डालते हैं, उस नारकीके शरीरको चूर-चूर कर डालते हैं। लोहेके काँटों वाले वृक्षोंसे वे उस नारकीको रगड़ते हैं, कड़ाहीमें डालकर उनको उबालते हैं। जैसे बड़े-बड़े कड़ाहे गर्म हों, उनमें खूब तप्तायमान तेल हो, उसमें निर्दयी लोग पशु पक्षी आदिकको डालकर उबाल लेते हैं ऐसे ही नारकी जीव एक दूसरे नारकीपर क्रुद्ध होकर तप्तायमान कड़ाहीमें डालकर उन नारकियोंको कष्ट देते हैं। उन नारकियोंके शरीरके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं, फिर भी उनके ऐसा अशुभ कर्मका उदय है कि वे शरीरके खण्ड-खण्ड फिर पारेकी तरह मिलकर शरीर रूप हो जाते हैं और फिर मरने मारने के लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसे दुःखपूर्ण जीवनको वे नारकी व्यतीत करते हैं यह सब उनके पाप कर्मोंका फल है। तो वह नारकी विचार कर रहा है कि मैंने पूर्वजन्ममें ऐसे पापकर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किया था जिनका फल यहाँ अकेले भोगना पड़ रहा है। कोई दूसरा साथी नहीं है। यह सब अर्थ संस्थानविचय धर्मध्यानी प्राप्त कर रहा है कि अधोलोकमें इस तरहकी प्रवृत्तियाँ हैं।

असह्यदुःखसंतानदानदक्षाः कलिप्रियाः।
तीक्ष्णदंष्ट्रा करालस्या भिन्नाञ्जनसमप्रभाः ॥१७३४॥
कृष्णलेश्योद्धताः पापा रौद्रध्यानैक भाविताः।
भवन्ति क्षेत्रदोषेण सर्वे ते नारकाः खलाः ॥१७३५॥

नारकियोंकी अशुरूपताका चित्रण—पापके उदयका तीव्र फल मिलनेका स्थान या तो निगोद है या नरक है। यहाँ नरक गतिका वर्णन चल रहा है कि नरकोंमें रहने वाले नारकी दूसरेको असह्य दुःख देनेमें निरन्तर चतुर रहा करते हैं। दूसरे नारकियोंको निरन्तर दुःखी करनेमें ही वे अपनेको सन्तुष्ट मानते हैं। वहाँ दिन रात तो नहीं हैं पर अपने शब्दोंमें हम यों कह रहे हैं कि वे नारकी रात दिन चौबीसों घंटे केवल दूसरे नारकियोंको कठिनसे कठिन वेदनाएँ पहुंचानेमें ही अपनेको सन्तुष्ट मानते हैं। जैसे यहाँ भी मनुष्योंमें अनेक लोग इस प्रकृति के होते हैं कि दूसरोंको दुःखी होता हुआ देखनेमें बड़ा मौज मानते हैं, ऐसे ही नारकियोंमें भी ऐसी क्रूरता है कि वे दूसरे नारकीको असह्य दुःख देनेमें ही अपनेको सन्तुष्ट मानते हैं। नरकमें पहुंचना रौद्रध्यानके प्रतापसे होता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहमें आनन्द मानना यह रौद्रध्यान है, ऐसे रौद्रध्यानके कारण वे नरकमें गए तो वहाँ भी रौद्रध्यानकी विशेषता है। नरकोंमें एकेन्द्रिय जीव उत्पन्न नहीं होते, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय और चारइन्द्रिय जीव भी नरकमें नहीं उत्पन्न होते, पञ्चेन्द्रियमें असंज्ञी जीव पहिले नरकमें कदाचित् उत्पन्न हो सकते हैं पर प्रायः संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव ही नरकमें जाते हैं। तो जो असंज्ञी जीव हैं, जो चारइन्द्रिय तकके जीव हैं उनमें रौद्रध्यानकी विशेषता नहीं है। रौद्रध्यान उनके भी होता है मगर तीव्र रौद्रध्यान कर सकनेमें समर्थ मन वाले जीव ही हो सकते हैं। उस रौद्रध्यानके कारण नरकमें गए। नारकी जीव मरकर तुरन्त नरकमें नहीं जाते, देवगतिके जीव मरकर, भोगभूमिया मनुष्य नरकमें नहीं जाते, केवल कर्मभूमिया मनुष्य और तिर्यञ्च मरकर नरक गतिमें जाते हैं। तो रौद्रध्यानकी जड़से जिनकी नरक आयु बँधी और नरकमें उत्पन्न हुए तो जीवनभर उनके रौद्रध्यानकी प्रमुखता रहती है। वे नारकी कलहप्रिय हैं, वे चाहते ही नहीं कि हम शान्तिसे रहें, और दूसरे भी शान्तिसे रहें। शान्तिका वहाँ कोई स्थान नहीं है, वे एक दूसरेकी कलह ही देखना चाहते हैं। वे नारकी जीव भयानक मुख वाले हैं, उनका सारा शरीरका आकार भी भयानक है। उनके निरन्तर क्रूरता ही बसी रहा करती है। यहाँ ही देख लो—जो मनुष्य क्रूर हैं अथवा जिनकी क्रोध करनेकी प्रकृति है उनका चेहरा भयानक दीखता है और जो शान्तिप्रिय लोग हैं उनके चेहरेमें कोई भयानकता नहीं टपकती। फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वे नारकी तो हुंडकसंस्थान वाले हैं, वे निरन्तर क्रूरताका परिणाम रखते हैं, तो उनका चेहरा अत्यन्त भयानक हो जाता है। बिखरे हुए काजलके समान उनके शरीरकी काली प्रभा है। उनका परिणाम कृष्णलेश्या, नील लेश्या और कापोतलेश्यामय बना रहता है, इस कारण सदा उद्धत रहा करते हैं। उनके मुख्यतासे कृष्ण, नील और कापोत लेश्यायें हैं इस कारण निरंतर उनके रौद्रध्यानकी भावना रहा करती है। वह नरकका क्षेत्र ऐसा ही दूषित है कि क्षेत्रके दोषसे सारे नारकी दुष्ट होते हैं। ऐसी नरक भूमिमें ये मनुष्य तिर्यंञ्च पापोंमें व्यसनोंमें आसक्ति रखनेसे उत्पन्न होते हैं। जीवको स्वदृष्टि न मिले और बाहरी विषयोंमें ही उसकी हित बुद्धि जाय इस कारण बाह्य पदार्थोंमें इसका आकर्षण होता है। ऐसी जो स्थिति है यह स्थिति ही पाप है। परपदार्थोंमें रुचि होना, परपदार्थोंमें दृष्टि लगाना, उसे ही हित मानना, अपने निकट आना ही नहीं, अपनी सुधि हो ही नहीं, परवस्तुके पीछे दौड़ लगाये, ऐसी जो जीवकी स्थिति है यह स्थिति स्वयं पाप है और ऐसी स्थितिमें पाप कर्मका बन्ध होता है जिसके फलमें नरक जैसे कठिन दुःख भोगने पड़ते हैं।

वैक्रियकशरीरत्वाद्विक्रियन्ते यदृच्छया।
यन्त्राग्निश्वापदाङ्गैस्ते हन्तुं चित्रैर्वधैः परात् ॥१७३६॥

विक्रियानिर्मित शस्त्रों द्वारा हननकी वेदना—उन नारकियोंका शरीर वैक्रियक है, वे अपनी इच्छाके अनुसार जैसी उनकी भावना है उस भावनके अनुकूल अपना रूप बना लेते हैं। कभी वे ही नारकी पानी बन जाते हैं। पापका कितना तीव्र उदय है कि उनके दुःखके साधन यहाँ वहाँसे खोजकर नहीं लाने पड़ते, उनका शरीर ही घानी बन जाता है, दो नारकी मिलकर एक नारकीको मार रहे हों तो उनमें से एक नारकी घानी बन गया और एक नारकी बैल बन गया। झट उसे घानीमें पेल देते हैं। उस नारकी की भावना हुई कि मैं इसे अग्निमें जलाकर भस्म कर दूं तो उनका ही शरीर अग्नि बन जाता है। उनका ही शरीर हिंसक जन्तु बन जाता है। उसकी इच्छा हुई कि मैं शेर बनकर इसकी हड्डियोंका चूर चूर कर दूं तो उसका ही शरीर शेररूप बन जाता है। उनके शरीरकी रचना ही ऐसी है जो दुःख देनेका जो साधन चाहें, तुरन्त उनका ही शरीर उस साधनरूप बन जाता है। औदारिक शरीर नहीं है किन्तु वह शरीर ही इस प्रकारका विलक्षण है कि जो शरीर दुःखका बहुत-बहुत कारण बन सकता है। तो वह नारकी जीव अपनी इच्छासे नानारूप बनाता है और अनेक प्रकारसे परस्पर एक दूसरेको मारनेके लिए वह विक्रिया करता रहता है। अभी यहीं देख लो—नाटकोंमें लोग कोई भयानक चेहरा अपने मुखके सामने लगा लेते हैं तो वे कितने भयानक लगते हैं? फिर जिन नारकियोंके शरीरमें ऐसी विक्रिया है कि वे जैसा चाहें भयानक रूप धारण कर लें तो फिर उनकी भयानकताका तो कहना ही क्या है? ऐसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भयानक मुद्राको देखकर यदि मनुष्य हों तो कहो अपने प्राण ही खो दें। पर वे नारकी इतना अभ्यस्त हैं कि वे परस्परमें लड़कर कटा मरा करते हैं।

न तत्र बान्धवः स्वामी मित्रभृत्याङ्गनाङ्गजाः ।
अनन्तयातनासारे नरकेऽत्यन्तभीषणे ॥१७३७॥

अनन्त यातनावोंका धाम—वह नरक अत्यन्त यातनावोंका घर है। यहाँके मनुष्य तो जरा जरासे दुःखको पाकर घबड़ा जाते हैं। थोड़ासा भी घरमें क्लेश हुआ तो ऐसा अनुभव करते कि हमारा घर तो एक नारकी जीवनसा बन गया, लेकिन और जीवोंके दुःखको देखकर यह निर्णय होता कि हम आपको इस पर्यायमें कठिनसे भी कठिन दुःख आयें तो वे कुछ भी दुःख नहीं हैं। क्या दुःख आ गया ?....इष्ट वियोग हो गया। यही तो दुःख मानते हैं ये जीव, पर वह दुःखकी क्या चीज है ? अरे जीव हैं, जन्म लेते हैं, मरण करते हैं, कोई यहाँ आ गया, इस भूमिमें कुछ दिन रहकर चला गया। यह तो संसार है। यहाँ तो आना जाना लगा ही रहता है। इसमें मेरा क्या बिगड़ा, पर कल्पनाएँ करते हैं और उन कल्पनाओंसे अपना दुःख बढ़ाते हैं। कौनसा और दुःख हो गया ? मान लो कि हजारोंका घाटा पड़ गया तो क्या हो गया ? यह वैभव तो आता जाता रहता है, इसकी ऐसी प्रकृति ही है, और वह पुण्यवानका आश्रय करता है तो उसे छोड़कर चला जाता है। इतनेपर भी हम मनुष्य हैं तो पुण्यवान तो हैं ही, और जीवोंकी अपेक्षा तो हमारा पुण्य विशेष है ही। कितनी ही दरिद्रता की स्थिति आ जाय, पर मनुष्यभवका पाना स्वयं एक पुण्यका फल है, और फिर उदरपूर्ति के लायक तो वैभव बना ही रहता है। प्रत्येक मनुष्य अपनी उदरपूर्ति अपने अपने उदयके अनुसार करता ही रहता है। कौनसा दुःख आ गया ? और भी दुःख सोच लो, शरीरमें बाधा बढ़ गई, कोई रोग हो गया, कठिन वेदना हो गयी तो यह जीव बड़ा दुःख मानता है। हाँ इसे थोड़ा दुःख कह सकते, लेकिन जिस समय भेदविज्ञान जगता है, शरीर और आत्मा भिन्न भिन्न दिखते हैं उस समय शरीरकी वेदना भी शान्त हो जाती है। मनुष्यभवमें और विशेषकर जैन शासनका शरण पाकर हम अपनेको दुःखी अनुभव करें तो यह हमारे लिए एक मूर्खतापूर्ण बात होगी। कोई भी परिस्थिति आये पर अपनेको दुःखी अनुभव न करें और बहुत सुखी हैं, शान्त हैं, पवित्र हैं इस प्रकारकी अपनी दृष्टि बनाएँ। देखिये ये नारकी जीव नरकमें कैसे घोर दुःख भोगते हैं, उनका वहाँ न कोई बन्धु है, न कोई स्वामी है, न कोई हितू है, न कोई मित्र है, न कोई नौकर है, न कोई स्त्री है। मनुष्यभवमें तो अनेक नौकर स्त्री पुत्रादिक होते हैं, पर उन नारकियोंके ये कोई भी नहीं हैं। तिर्यञ्चोंके—गाय भैंस, पशु पक्षी इनका तो एक दूसरेसे प्रेम हो जाता, एक दूसरेके मित्र बन जाते, एक दूसरेके सहयोगी हो जाते, जितना बन सकता उतनी सेवा करते, पक्षी भी एक दूसरेकी सेवा करते हैं, उनके पास

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहना, उनको दाना चुगाना, उनको अपने पंजेसे पकड़कर कहींका कहीं अच्छे स्थानपर रख देना, तो तिर्यञ्चोंमें भी मिलेंगे बन्धु मित्र, पर नारकियोंके बन्धु मित्र होने असम्भव हैं। वहाँ कोई गर्भजन्मकी बात है नहीं जिससे कि कुटुम्ब मान लिया जाय। सभी नारकी जमीनमें ऊपरसे उनके उत्पादस्थान हैं क्रूर भयानक, वहाँसे वे औंधे मुंह होकर नीचे टपक जाते हैं, ऐसा ही उनका जन्म है, फिर वहाँ कुटुम्बका कुछ नहीं है। मित्र होनेका यों प्रश्न नहीं कि वे सभी प्रकृतिसे क्रूर स्वभाव वाले हैं, एक दूसरेको सुहाते भी नहीं हैं, तो उनके न कोई मित्र है, न स्त्री है, न पुत्रादिक हैं। केवल एक अनन्त यातनावोंका वहाँ स्थान है। ऐसी अत्यन्त भीषण यातनाएँ वे नारकी जीव अनगिनते लाखों वर्षों तक सहते रहते हैं।

नरकदुःख परिचयसे आत्महित कर लेनेका शिक्षण—हम आप सबका यह मनुष्यभव एक कितना अच्छा स्थान है, हित करनेका कितना अच्छा मौका है, अपने आपको शान्तिके पथमें ले जानेका कितना अच्छा साधन मिला है, पर इस साधनको हम उपयोगमें न लें और विषय कषायोंकी वाञ्छामें ही इसको खो दें तो यह सब तो हमारे अनर्थकी बातें हैं। कितना श्रेष्ठ भव है, कितना ज्ञान मिला है, कैसा ज्ञानावरणका क्षयोपशम है, कितना हम उत्कृष्ट विचार कर सकते हैं? एक बाह्यकी ओरसे अपना मुख मोड़लें, अपने आपकी ओर उन्मुख हो जायें तो हम आप अपना कितना भला कर सकते हैं, अगिला भव भी हमें धर्मसे पूरित मिलेगा, जैनशासनकी उपासना कर सकेंगे, निकट कालमें हम मुक्त हो सकेंगे। अपने जीवन का लक्ष्य बनायें कि हमें तो अष्टकर्मोंके बन्धनसे छूटना है। छूटें चाहे जब, पर लक्ष्य अपना यहीं बनायें, धनी बननेका, एम. एल. ए., मिनिष्टर आदि बननेका लक्ष्य बनानेसे कुछ भी आत्मसिद्धि न मिलेगी बल्कि मलिनताएँ और बढ़ जायेंगी, छल कपट और विशेष आ जायेंगे, अपवित्रता और बढ़ गयी, पापकर्मोंका और अधिक बँध होगा। तो लाभ कुछ नहीं मिला। लाभ मिलेगा इस ही लक्ष्यमें कि हमें तो कर्मोंसे मुक्ति पाना है। बहुत भव बिताये, अनन्त जन्ममरण किए, अनेक संग प्रसंग किए उनमें कोई सार नहीं निकला। जैसे अनन्त भव गवां दिये वैसे ही आज यह मनुष्यभव भी मिला है। इस मनुष्यभवमें पूर्वभवकी नाईं विषयोंके प्रसंगमें क्षण गवां दिए तो आत्माको क्या लाभ है? बहुत बड़ी जिम्मेदारीका भव है यह मनुष्यभव। हम चाहें तो इस संसारके संकटोंसे सदाके लिए छूट जानेका उपाय बना सकते हैं, अगर हम चाहें तो निगोदमें भटकते रहनेका भी उपाय बना सकते हैं। हमारी स्थिति संसारी अन्य जीवोंकी अपेक्षा बहुत उत्तम है मगर सदुपयोग करें तो उत्तम है। यदि सदुपयोग न किया, अन्य मोही प्राणियोंकी भांति ही हम भी बाहरकी चीजोंमें मुग्ध हो गए, उन बाहरी व्यासंगोंमें ही रत बन गए तो हमने और की भांति और अपने पूर्वभवकी भांति इस भवको बरबाद ही किया समझें।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तत्र ताम्रमुखा गृध्रा लोहतुण्डाश्च वायसाः ।
दारयन्त्येव मर्माणि चञ्चुभिर्नखरैः खरैः ॥१७३८॥

नरकोंमें विक्रियासे घातक पक्षी बनकर कष्ट पहुंचानेकी यातना—उन नरकोंमें ऐसे कौवा, गृद्ध आदिक पक्षी हैं। जिनकी चोंच नुकीली है, कठोर है। देखो नरकोंमें सिवाय नारकी जीवोंके और स्थावर जीवोंके कोई जीव न मिलेंगे। ये गृद्ध, कौवा आदिक जो पक्षी हैं वे पक्षी नहीं हैं, वे नारकी ही हैं जो कि विक्रियासे अपना शरीर उस रूप बना लेते हैं। उनकी चोंच ऐसी तीक्ष्ण धार वाली है कि उन नारकी जीवोंके मर्मको बिगाड़ डालते हैं। उन नरकोंमें निरन्तर कलह मची रहा करती है। क्या जीवन है वह ? जैसे किसीके घर रात दिन लड़ाई होती रहे तो पड़ौसके लोग कहते हैं कि देखो इन्होंने पूरा नरक बना रक्खा है। जहाँ निरन्तर अशान्ति रहे, एक दूसरे को न सुहाये, संक्लेश परिणाम ही बना रहे, कलह प्रपंच घृणा जहाँ अपना साम्राज्य रखता है वह जीवन भी नारकी जीवनके तुल्य माना गया है। यह बात नारकियोंके निरन्तर रहा करती है।

कृमयः पूतिकुण्डेषु वज्रसूचीसमाननाः ।
भित्वा चर्मास्थिमांसानि पिबन्त्याकृष्य ॥१७३९॥

विक्रियानिर्मित कीट जोंकों द्वारा होने वाले उपद्रवोंका चित्रण—उन नारकी जीवों के पीबके कुण्डोंमें बज्रकी सुईके समान जिनके मुख हैं ऐसे कीड़े बाजोंके नारकी जीवोंके चमड़े और हाड़माँसको विदार कर रक्तको पीती हैं। नारकी जीव कहते उसे हैं जो शान्त न रह सकें। नारक शब्दका अर्थ है—जो जीवोंको निरन्तर पीड़ित करता रहे। हर तरहसे दुःख देकर भी वे नारकी जीव कभी भी तृप्त नहीं होते। उनके निरन्तर चाह बनी रहती है कि मैं इस तरहसे इनको दुःख पहुंचाऊं। जैसे किसी मनुष्यका तलवारसे खण्ड-खण्ड कर देने पर भी शान्ति नहीं मिलती इसी प्रकार उन नारकी जीवोंको दूसरे जीवोंका खण्ड-खण्ड कर देने पर भी शान्ति नहीं मिलती। अनेक प्रकारके और और भी उपाय करके उन नारकी जीवोंका घात करते रहते हैं। कहीं चक्कीमें पीस दिया, कहीं कोल्हूमें पेल दिया, कहीं कड़ाहीमें उबाल दिया, कहीं कीड़े व जोंक आदिक बनकर उनके शरीरको बिगाड़ दिया, इस तरहकी अनेक विक्रियायें करके वे नारकी जीव दूसरे नारकी जीवोंका घात करते रहते हैं। यहाँ तो थोड़ासा मच्छर भी काटते हैं तो लोगोंको वह वेदना असह्य मालूम पड़ती है। मक्खी जो कि काटती भी नहीं है वह भी यदि शरीरमें कहीं बार बार बैठती रहती है तो उसकी भी वेदना लोगोंको असह्य मालूम होती है, फिर उन नारकी दुःखोंकी तो कहानी ही क्या कही जाय ? वे नारकी जीव बड़ी भीषण वेदनाएं बहुत काल तक सहते रहते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बलाद्विदीर्य संदंशैर्वदनं क्षिप्यते क्षणात्।
विलीनं प्रज्वलत्ताम्रं यैः पीतं मद्यमुद्धतैः ॥१७४०॥

नरकोंमें मदिरापानका फल—पूर्वभवमें जिन जीवोंने मद्यपान किया था उद्धत होकर वे जीव मरकर नरकोंमें उत्पन्न होते हैं तो दूसरे नारकी जीव मायामयी नारकीके मुखको संडासीसे फाड़ फाड़कर पिघलाये हुए तांबेको पिलाते हैं, लो तुम्हें मद्य बहुत अच्छा लगता था, अब खूब पी लो। शराब पीना, मांस खाना यह कितना खोटा आचरण है। इसको हम आप यों समझते हैं कि उससे बहुत दूर रहें, उसे देखना भी नहीं चाहते, और जो मद्यपान करते हैं उन्हें कितना ही समझावो कि न पियो मगर वे यही कहेंगे कि उससे हमें बड़ा विश्राम मिलता है, बड़ी नींद आती है। अरे इस शरीरको विश्राम देनेकी जिसकी भावना बनी, शरीर को ही जो यह मैं आत्मा हूं ऐसी जिसकी मिथ्याबुद्धि लगी हुई है वह ब्रह्मके मर्मको क्या जाने, और उस मद्यपानके फलमें नरकमें जन्म लेना पड़ता है, इसलिए नहीं कि पिया था इसलिए पिलाते हैं। उनका यह एक बहाना है दूसरे नारकीके विदारण करनेका। नहीं चाहता वह नारकी उसका पीना। पिलाते समय वह अपने मुखको दबोच लेता है किन्तु वे नारकी जबरदस्ती उसके मुखको संडासीसे फाड़ फाड़कर अग्निसे गले हुए तांबेका रस पिलाते हैं। कोई गर्म पानी ही पी लेवे तो उसका मुख जल जाता है फिर वह तांबेका रस जो कि अत्यन्त गर्म होता है उसे उस नारकीको पिलाया जाता है तो जरा सोचो तो सही कि उसका क्या हाल होता होगा? तो जैसे वहाँ मद्यपायी जीवका संडासीसे मुख फाड़-फाड़कर ताँबा, लोहा, चाँदी, सोना आदिकका गलित रस पिलाया जाता है इसी प्रकार जो मांसभक्षी जीव वहाँ उत्पन्न होते हैं उन नारकी जीवोंको दूसरे नारकी निर्दय होकर उनके ही शरीरका मांसखण्ड निकालकर या उसमें जो कुछ भी भाग है उस खण्डको निकालकर उसे भून भूनकर पका पकाकर उनको ही खिलाते हैं और कहते हैं कि ले खा ले मांस! तू मांस खानेका बड़ा शौकीन था। इस प्रकार नारकी जीव दूसरे नारकी जीवों को दुःख देनेकी आदतके कारण दुःख देते हैं, और करीब करीब उस ही प्रकारका दुःख देते हैं जिस प्रकारका उन्होंने पापकर्म किया था।

परमांसानि यैः पापैर्भक्षितान्यतिनिर्दयैः।
शूलापक्वानि मांसानि तेषां खादन्ति नारकाः ॥१७४१॥

मांसभक्षणका फल—जिन पापी प्राणियोंने मनुष्यभवमें निर्दय होकर दूसरे जीवोंका मांस खाया है वे पापी मनुष्य मरकर नारकी होते हैं तो उनके शरीरके मांसके भी खण्ड पका पकाकर नारकी जीव खाते हैं। यह सब एक दुःखकी यातना बतानेका वर्णन है। नारकी जीवोंको खानेको कुछ नहीं मिलता है जिससे उनकी तृषा शान्त हो जाय और चेष्टा करते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वे दूसरेके शरीरके खण्ड खण्ड पकाकर खानेकी, मगर वह सब एक वैक्रियक स्कंध है, वहाँ उनकी क्षुधा शान्त नहीं होती। वे नारकी जीव ऐसी याद दिला दिलाकर कि तूने पूर्वभवमें जीवोंका मांस खाया है, तुझे मांस खानेका बड़ा शौक है इसलिए ले अब तू अपना ही शरीर का मांस खा, यों कहकर उस नारकीके शरीरके खण्ड-खण्ड करके पका करके उस ही नारकी के मुखमें डालते हैं और दूसरे नारकी भी एक अपना दिल बहलानेको दूसरेके शरीरके मांसके टुकड़ोंको पका पकाकर खाते हैं। उनके शरीरमें यद्यपि मांस नहीं होता मनुष्य और तिर्यञ्चों की तरह, लेकिन नारकियोंका वैक्रियक शरीर देवोंके वैक्रियक शरीरके समान नहीं है। नारकियोंके शरीरमें दुःख जैसे उत्पन्न होता उस तरह मनुष्योंके शरीरकी बनावटके माफिक कुछ अंश होता है। जो लोग यहाँ मांस खाते हैं उनकी कितनी बेसुधी और भूल है? उनके चित्त में रंच भी यह बात नहीं आती कि दूसरे जीव भी इस प्रकार तड़फ तड़फकर मरते हैं जिनका कि मांस खाया जा रहा है, जरा भी दया उनके चित्तमें नहीं है। यदि दया आ जाय तो फिर मांस कहाँ खा सकते हैं? ऐसे निर्दय जीव नरकमें उत्पन्न होते हैं और नाना दुःख भोगते हैं।

य: प्राक्परकलत्राणि सेवितान्यात्मवञ्चकैः।
योज्यन्ते प्रज्ज्वलन्तीभिः स्त्रीभिस्ते ताम्रजन्मिभिः ॥१७४२॥

परस्त्रीसेवनका फल— जिन मनुष्योंने पूर्वभवमें परस्त्री सेवन किया है उनको अन्य नारकी तांबेकी अग्निसे लाल की हुई पुतलियोंको जिनका आकार स्त्रीकी तरह है उन्हें चिपकाते हैं कि ले तुझे परस्त्रीकी बड़ी अभिलाषा थी तो इस ताती पुतलीका संगम कर। इस तरह अन्य नारकी जीव उन कामी पुरुषोंको उन ताती पुतलियोंको चिपकाकर त्रास देते हैं। इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है कि यह जीव जैसे परिणाम करता है उस प्रकारका कर्मबन्ध होता ही है, और प्रायः उस कर्मका उदय आनेपर उस उदयके अनुसार उसका फल भोगना पड़ता है। कभी ऐसा लगता है कि कोई मनुष्य कर तो रहा है पाप, लेकिन फल मिल रहा है अच्छा तो उसका कारण यह है कि इस पुरुषने पूर्वजन्ममें पुण्य विशेष कमाया था जिसके उदयमें पाप कर्म करनेपर भी उसका असर नहीं हो पा रहा है, लेकिन उस पापकर्मका असर अवश्य होगा। कुछ समय बाद होगा। देर है पर अंधेर नहीं है। जो मनुष्य पापकर्म करता है वह उस पापकर्मके फलमें नियमसे दुर्गति प्राप्त करता है। हाँ कोई ज्ञानबल ऐसा आ जाय, पहिले ही सम्यक्त्वकी भावना जग जाय तो वह पापबंधको हटा दे, पापकर्मकी निर्जरा कर दे यह बात तो अलग है मगर ऐसा तो कोई बिरला ही संत पुरुष हो जो बाँधे हुए कर्मोंको टाल सकता है।

न सौख्यं चक्षुरुन्मेषमात्रमप्युपलभ्यते।
नरके नारकैर्दीनैर्हन्यमानैः परस्परम् ॥१७४३॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नरकोंमें क्षणमात्र भी साताका अभाव—नरकमें नारकी जीव परस्पर एक दूसरेको मारते हैं, सो वे दीन नारकी एक पलक मात्र सुखको नहीं प्राप्त कर सकते। निरन्तर छेदना, बेदना, अग्निमें गिरा देना, गर्म तैलकी कड़ाहोंमें गिरा देना, कोल्हूमें पेल देना, करौतोंसे काट डालना, नाना तरहके नारकी जीव वहाँ त्रास दिया करते हैं। उनको कोई सहाय नहीं हो पाता। कोई नारकी किसीको आक्रमणसे बचा दे ऐसा वहाँ प्रेम बिल्कुल नहीं है। जैसे यहाँ मनुष्योंमें किसी मनुष्यपर कोई वार करता हो तो दूसरा कोई मनुष्य उस वारको रोक देता है, इस तरहका प्रेम करने वाला उन नरकोंमें कोई नहीं है। हाँ केवल जिन्होंने तीर्थंकर प्रकृति का पहिले बंध किया था क्षयोपशम सम्यक्त्वमें और फिर वह नरकमें पहुंचा, अथवा क्षायक सम्यग्दृष्टि भी पहिले नरकमें उत्पन्न हो सकता है। यदि पहिले नरककी आयु बाँधली हो ऐसा कोई हो यह तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होता है उन नारकियोंके जिनके गर्भमें आनेसे ६ महीना पहिले देव जाकर एक कोट रच देते हैं जहाँ वे नारकी सुखपूर्वक रहते हैं। अन्यथा यह बड़े असमंजसकी बात होगी कि यहाँ तो गर्भमें आनेसे ६ महीना पहिले रत्न वर्षा हो रही हो और जिस जीवकी खुशीमें रत्नवर्षा हो रही हो वह जीव नरकमें कूदता फांदता हो तो ऐसा ही प्राकृतिक नियम है कि ६ महीना पहिले नरकोंमें देव जाकर एक कोट रच जाते हैं जिससे तीर्थंकर होने वाला नारकी वहाँ सुखपूर्वक रहता है। इसके अलावा वहाँ और कोई खैर नहीं है। निरन्तर नाना प्रकारके त्रास मिलते हैं। तो उस नारकी जीवने जिसने पूर्वभवमें तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया था और नरक आयुका भी बंध किया था, तीर्थंकर प्रकृतिके बांधने वाले वे जीव नरकमें तो उत्पन्न होते, अब नरकसे निकलकर मनुष्य होकर तीर्थंकर होकर उसी भवसे मोक्ष जायेंगे। जो पंचकल्याणकधारी तीर्थंकर होते हैं वे या तो स्वर्गसे आकर होते हैं या नरकसे अन्य भवोंसे आकर नहीं होते। जो पुरुष क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि है उसने पहिले सम्यक्त्वसे पहिले नरक-आयुका बंध कर लिया हो, बादमें क्षायोपशमिक सम्यक्त्व हो जाय और तीर्थंकर प्रकृतिका बंध भी करले ऐसा पुरुष मरते समय क्षायोपशमिक सम्यक्त्वसे तो छूट जायगा और नरकमें उत्पन्न होगा और अन्तर्मुहूर्तके लिए तीर्थंकर प्रकृतिका बंध रुक जायगा। तीर्थंकर प्रकृति निरन्तर बंध वाली प्रकृति है। वह बंधती है तो बराबर बंधती चली जाती है जब तक उसका गुणस्थान पूरा न हो। वह क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि था तो मरणके समयमें तीर्थंकर प्रकृतिका बंध रुक जायगा और नरकमें जन्म लेनेके बाद भी वह अन्तर्मुहूर्त तक व्रतपूर्ण नहीं होता है और तीर्थंकर प्रकृति न बँधेगी इन दो अन्तर्मुहूर्तके बाद, फिर तीर्थंकर प्रकृति नरकमें भी बराबर बंधती रहती है और जिसने पहिले नरक आयुका बंध किया, पीछे क्षायक सम्यक्त्व हुआ और [क्षायक सम्यक्त्वकी स्थितिमें तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया उनके सम्यक्त्व न छूटेगा। मरण समय भी तीर्थंकर प्रकृतिका बंध रहेगा और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नरकमें उत्पन्न होते समय भी तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध बराबर होगा; लेकिन ऐसा जीव सिर्फ पहिले ही नरकमें जाता है और नरकके नीचे सम्यग्दृष्टिका उत्साह नहीं है अर्थात् सम्यक्त्व रहती हुई अवस्थामें रहता हो तो वह पहिले नरकसे नीचे नहीं जाता है ।

किमत्र बहुनोक्तेन जन्मकोटिशतैरपि ।
केनापि शक्यते वक्तुं न दुःखं नरकोद्भवम् ।।१७४४।।

नरक दुःखोंकी वचनागोचरता—आचार्यदेव कहते हैं कि बहुत कहनेसे क्या लाभ ? अर्थात् थोड़ेमें ही बहुत समझ लेना चाहिए कि नरकोंमें उत्पन्न हुए जो दुःख हैं उनको कोई करोड़ों जिह्वावों द्वारा भी नहीं बखाना जा सकता है । वे नारकी जीव एक दूसरेको मारते हैं, घात करते हैं, पर क्रूर वचन कहकर घात करते हैं, ऐसे क्रूर वचन कि जिन वचनोंका ही घाव बहुत तीक्ष्ण हो जाता है । मर्मभेदी वचनोंका भी दुःख सहें और मनमें तो तड़फन होती ही है उसका दुःख सह सकें, और शारीरिक दुःख अनेक हैं वे दुःख सहें । तो ऐसे जो दुःख नरकमें सहे जाते हैं उन दुःखोंका वर्णन करनेके लिए कोई समर्थ नहीं है । ऐसा दुःख इस जीवको अनेक बार सहना पड़ा लेकिन इस मनुष्यभवमें कभी कोई दुःखी होता है तो उसे बहुत बड़ा दुःख मानता है । यह सुधि नहीं करता कि इससे भी अनंत गुने दुःख हमने नरकोंमें भोगे, निगोदमें भोगे, अन्य पर्यायोंमें भोगे, ये दुःख कोई कठिन दुःख नहीं हैं ।

विस्मृतं यदि केनापि कारणेन क्षणान्तरे ।
स्मारयन्ति तदाभ्येत्य पूर्ववैरं सुराधमाः ।।१७४५।।

परस्पर बैरका स्मरण कराकर पीड़ित कराये जानेकी वेदना—यह वह नारकी कुछ थोड़ा बहुत भूल भी जाय एक दूसरे को सतानेमें तो वहाँ असुर जातिके देव जो संक्लिष्ट हैं उन्हें याद दिलाते हैं कि देखो वह तुम्हारा पूर्वभवका बैरी है । जैसे बहुतसे मनुष्योंको तीतर, कुत्ता मनुष्य आदिक लड़ानेका बड़ा शौक होता है, उनकी लड़ाईको देखकर वे बड़े खुश होते हैं ऐसे ही असुर जातिके देव हैं । असुर कुमारके देवोंमें सभी देवोंकी इस प्रकारकी अभिलाषा नहीं रहती, कोई खोटी जातिके देव असुरोंमें भी जो ऊधमी हैं उनकी ऐसी प्रकृति होती है । भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी आदिके जितने भी इन्द्र हैं उन सब इन्द्रोंमें असुर कुमार जातिके जो इन्द्र हैं उनका वैभव बहुत बढ़ा चढ़ा होता है । यों समझना कि सौधर्म स्वर्गके इन्द्रोंके प्रति असुर कुमारके देवोंकी ईर्ष्या चलती रहती है । वैभव असुर कुमारका अन्य इन्द्रोंकी अपेक्षा बढ़ा चढ़ा है तो वहाँ नरकोंमें ऐसे असुर कुमार जातिके देव पहुंचते हैं और उन नारकियोंको याद दिलाते हैं । देख तेरी आँखोंमें इसने शूल छेदी थी, यह तेरा बैरी है, चाहे उसने आँखोंमें अंजन ही लगाया हो, लेकिन ऐसी ऐसी बातें कहकर उन नारकियोंको वे आपसमें लड़ाते रहते हैं । तो स्वयं मारने पीटनेका तो दुःख उनके है ही, मगर असुर जातिके देवोंके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्वारा भी उन्हें बहुत कुछ दुःख पहुंचाया जाता है।

बुभुक्षा जायतेऽत्यर्थं नरके तत्र देहिनाम।
यां न शामयितुं शक्तः पुद्गलप्रचयोऽखिलः ॥१७४६॥

नरकोंमें क्षुधाकी तीव्र वेदना—उस नरकमें नारकी जीवोंको ऐसी कठिन भूख लगती है कि समस्त पुद्गलोंका समूह भी खा लें तो भी उनकी भूखका शमन करनेमें समर्थ नहीं है। भूख ही तो है। सम्भावनामें ऐसा कह रहे हैं कि तीन लोकके सारे पुद्गल भी खा लें तो भी भूख नहीं मिट सकती। अभी तक तो तीन लोकके अनाजकी ही बात कह रहे थे अब तो पुद्गलोंकी बात कह रहे हैं। इसमें उन नारकियोंकी वेदना बतलायी जा रही है कि उनको क्षुधा की कितनी तीव्र वेदना सहनी पड़ती है। क्षुधाकी वेदना बड़ी वेदना है। क्षुधाकी वेदना न हो तो यहां कोई मनुष्य किसी दूसरेकी पूछ ही न करे। कोई व्यवस्था ही फिर न बन पाये। घरमें सभी लोग व्यवस्था पूर्वक रहते हैं इसमें मुख्य कारण क्षुधाकी वेदना है। कभी कोई विवशता हो जाय, भोजन न मिले, किसी फंदेमें पड़ जाय तो उस समय देखो उस भूखे व्यक्ति का कैसा बुरा हाल होता है, और लोग तो भूखे नहीं हैं फिर भी अनेक बार कुछ न कुछ खाते पीते ही रहते हैं। उनका वह शौक है, नहीं तो कोई पुरुष यदि भूख आनेपर ही खानेका भाव रखता है तो ऐसी अधिकसे अधिक दो बेलायें हो सकती हैं। मगर स्थिति ऐसी है कि चाहे खूब खा पीकर चंगे मंगे होकर निकले हों पर कोई चाट चटपटी वाला दिख जाये तो आने दो आनेकी चाट खाने भरको पेटमें जगह निकल ही आती है। तो बहुतसे लोग खानेके शौकसे भी बार-बार कुछ न कुछ खाते पीते रहते हैं, पर इस तरहकी प्रवृत्तिसे ऐसा कर्मोंका बंध होता है कि जिससे क्षुधाका दुःख लम्बा ही होता चला जाता है, उन नारकियोंको इतनी कठिन भूख लगती है।

तृष्णा भवति या तेषु वाऽवाग्निरिवोल्वणा।
न सा शाम्यति निःशेषपीतैरप्यम्बुराशिभिः ॥१७४७॥

नरकोंमें तीव्र तृषाकी वेदना—उन नारकी जीवोंकी तृषा भी बड़वाग्निके समान अत्यन्त तीव्र होती है। ऐसी तीव्र होती है कि सारे समुद्रका पानी भी पी लें तो भी तृषा नहीं मिट सकती। यह सम्भावनामें वेदनाका स्वरूप कहा जा रहा है, और यह सम्भावना असत्य नहीं है। जैन शासनमें जो कुछ भी देते हैं सम्भावना उपमा आदिक वे सब यथार्थ देते हैं। उपमा भी एक सम्भावना है। जैसे पल्योंका प्रमाण बताया है—हजारों लाखों, करोड़ोंकी बात क्या, अनगिनते वर्ष लग जाते हैं, इतना है पल्यके समयका प्रमाण। उसे और कैसे बताया जाय? जिसकी गिनती नहीं उसे उपमा द्वारा बताया गया है। सम्भावना द्वारा बताया गया है कि दो हजार कोशका लम्बा चौड़ा गहरा गड्ढा हो, उसमें ऐसे पतले-पतले छोटे-छोटे बालके

http://www.jainkosh.org

टुकड़े डाले जायें कि जिनका दूसरा टुकड़ा न हो सके, उस गड्ढेको खूब भर दिया जाय और उसपर हाथी घुमाकर खूब ठसाठस भर दिया जाय, फिर सौ सौ वर्ष बाद एक एक बालको निकाला जाय। यों सारे बालोंको निकालनेमें जितना समय लगे उसे कहते हैं व्यवहारपल्य। पहिले तो यहीं देख लो व्यवहार पल्यमें ही अनगिनते वर्ष हो गए, फिर उससे असंख्यातगुने समयका नाम है उद्धारपल्य, इससे असंख्यात गुणे समयका नाम है अद्धापल्य। तो उसे अनगिनते समयको बतानेका साधन उपमा और सम्भावना है। तो ये सारी उपमायें और सम्भावनाएँ सही हैं। ऐसे ही जम्बूद्वीपका प्रमाण बताया कि इतना लम्बा चौड़ा जम्बूद्वीप है, उससे दूने दूने और और अनेक द्वीप हैं, उन सभी समुद्रोंका जल वे नारकी पीवें तो भी उनकी तृषा नहीं बुझ सकती, इतनी कठिन तृषाकी वेदना उन नारकी जीवोंके होती है।

बिन्दु मात्रं न तैर्वारि प्राप्यते पातुमातुरैः।
तिलमात्रोऽपि नाहारो ग्रसितुं लभ्यते हि तैः ॥१७४८॥

नरकोंमें तिल बिन्दु मात्र भी आहार जलकी अलभ्यता—उन नारकोंमें भूख प्यास की अत्यन्त तीव्र वेदना होती है लेकिन उन नारकियोंको न तो खानेके लिए एक दाना मिलता है और न पीनेके लिए एक बूंद पानी मिलता है। इस प्रकार वे नारकी जीव भूख प्यासकी वेदनासे पीड़ित होकर निरन्तर भूख प्यास आदिककी वेदनाएँ सहते रहते हैं। इससे सिद्ध है कि उन नारकोंमें इतने घोर दुःख हैं कि जिन दुःखोंको भोगनेके बाद यद्यपि अशुभ कर्मोंका बंध होता है कि लेकिन इतना तीव्र बंध नहीं हो पाया, उस कठिन दुःखमें इतने कर्म झड़े कि वह जीव मरकर फिर तुरन्त नारकी नहीं होता। नारकी जीव मरकर या तो कर्मभूमिया मनुष्य बने या कर्मभूमिया तिर्यंच बने, बादमें फिर नरकमें चला जाय, यह सम्भव है। वेदना वहाँ इतनी तीव्र होती है क्षुधा और तृषा की कि वह अत्यन्त असह्य है। क्षुधाकी वेदनासे भी खोटी वेदना तृषा की है। क्षुधाके २ दर्जे हैं और तृषाके ४ दर्जे हैं। क्षुधा है तीव्र और मंद और तृषा है अत्यन्त तीव्र, तीव्र, मंद और अत्यन्त मंद। जरासी भूख अगर लग जाये तो वह मालूम भी नहीं पड़ती। तीव्र भूख लग जाय तभी क्षुधा सताती है। प्यास तो थोड़ी भी हो तब भी मालूम हो जाती है। तो यहाँ मनुष्य भवमें बिना भूखके ही बहुत-बहुत खाते रहते हैं और अनेक कर्मबन्ध करते रहते हैं। लोग बड़ी असंयम भरी प्रवृत्तियां कर रहे हैं, पर इसके फलमें नरक जैसी दुर्गतियोंमें जन्म लेना होता है। अभी इस मनुष्यभवमें तो कुछ पुण्यका उदय है ना तो जैसी चाहे स्वच्छन्द होकर प्रवृत्तियाँ करलें परन्तु उनका फल अच्छा नहीं है।

तिलादप्यतिसूक्ष्माणि कृतखण्डानि निर्दयैः।
वपुर्मिलति वेगेन पुनस्तेषां विधेर्वशात् ॥१७४९॥

देहके तिल तिल खण्ड किये जानेकी वेदनायें—तिल तिलके बराबर भी उन नार-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कियोंके शरीरके टुकड़े कर दिये जाते हैं लेकिन वे सारे खण्ड फिर मिलकर शरीर बन जाते हैं। वहाँ इस ही प्रकारका विलक्षण कर्मोदय है। चारों गतियोंके जीवोंमें तिर्यञ्च नारकी ही ऐसे हैं जो मरना चाहते हैं, बाकीं तीन गतियोंके देव मरना नहीं चाहते। पशु पक्षी मनुष्य और देव। देव तो मरना ही क्यों चाहेंगे बड़े सुखके साधन हैं पर अत्यन्त हीन अवस्थाका भी मनुष्य तिर्यंच हो, रोगी दुःखी हो तो मरण तो वह भी नहीं चाहता लेकिन नारकी जीव मरना चाहते हैं। मेरी मृत्यु हो जाये, मैं यहाँसे छुटकारा पाऊँ। तो जो मरना चाहते उनका बीचमें मरण नहीं होता और जो मरना नहीं चाहते उनका बीचमें मरण भी हो सकता है। मनुष्य और तिर्यञ्च तो असमयमें भी मर जाते हैं पर नारकी जीवोंका असमयमें मरण नहीं होता। तिल तिल बराबर शरीरके खण्ड हो जायें तो भी वे खण्ड खण्ड फिर मिलकर शरीर रूप हो जाते हैं और फिर एक दूसरेको मरने मारने लग जाते हैं।

यातनारुक्शरीरायुर्लेश्या दुःखभयादिकम्।
वर्द्धमानं विनिश्चेयमधोऽधः श्वभ्रभूमिषु ॥१७५०॥

अधः अधः नरकोंमें तीव्रातितीव्र वेदना और उनसे बचनेका उपाय—उन नरककी भूमियोंमें पीड़ा, रोग, शरीर, आयु, लेश्या, दुःख, भय ये सब नीचे नीचे नरकोंमें बढ़ते हुए चले गए हैं, पहिले नरकसे दूसरे नरकमें अधिक हैं, दूसरेसे तीसरेमें, तीसरेसे चौथेमें, चौथेसे ५वें में, पांचवेंसे छठेमें और छठेसे सातवेंमें। इस क्रमसे अधिक अधिक बढ़ते चले जाते हैं। ऐसे नरकोंमें यह जीव अपना जन्म पापकर्मोंके उदयसे लिया करता है। तो वे पापकर्म न बनें, परिणाम स्वच्छ रहें, पापोंसे विरक्ति रहे, संयमका अनुराग रहे ऐसी मनुष्योंको चर्या होनी चाहिए अन्यथा इसी प्रकार दुर्गतियोंमें जन्ममरण लेना ही उनका फल है। इनसे बचनेके लिये मनुष्यको धर्मध्यानमें प्रयत्न करना चाहिये। धर्म चार प्रकारके होते हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। ये चारों धर्मध्यान सम्यग्दृष्टि ज्ञानीके होते हैं, फिर भी मुख्यताकी अपेक्षा आज्ञाविचय धर्मध्यान तीसरे गुणस्थानसे शुरू मानते हैं। अपायविचय धर्मध्यान चौथे गुणस्थानसे मानते हैं, विपाकविचय धर्मध्यान ५वें गुणस्थानसे मानते हैं और संस्थानविचय धर्मध्यान मुनियोंके मानते हैं। यह मुख्यताकी अपेक्षा है। संस्थानविचयका अर्थ है लोकके आकारका विचार करना। लोकमें कहाँ कहाँ कैसी कैसी रचनाएं हैं उनका चिन्तन करना और समय कबसे क्या चला आया है और कौन कौन कब होते हैं उनके चारित्रका चिन्तन यह सब संस्थानविचय धर्म ध्यान है। जिस उपयोगमें लोकके आकारकी रचनाकी बात बनी रहती है उसमें वैराग्यका ज्यादा वास होता है, जो लोग छोटी सी भूमिमें, जरासे क्षेत्रमें अपना परिचय रखते हैं और आत्मीयताका व्यवहार करते हैं उनके राग बढ़ता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संस्थानविचय धर्मध्यानमें वैराग्यवर्द्धक रचनापरिचय—लोकरचनाके चिन्तनमें इस समय अधोलोकका चिन्तन चल रहा है। अधोलोकमें ७ नरकोंकी रचना है। जो मनुष्य तिर्यंच पाप करते हैं वे मरकर नरकमें जन्म लेते हैं। उन नरकोंमें उत्तरोत्तर नीचे नीचे नरकोंमें अधिक-अधिक वेदना है। ऊपरके नरकोंमें गर्मी और नीचेके नरकोंमें ठंडकी वेदना है। गर्मी की वेदनासे ठंडकी वेदना अधिक मानी गयी है। ऊपरके नरकोंसे नीचेके नरकोंको जमीनको छूनेसे भी बड़ा दुःख है। नीचेके नरकोंमें अधिक बार नारकी जमीनपर उछलता है। उत्तरोत्तर नीचेके नरकोंमें नारकियोंके शरीरमें रोगकी बहुलता है। यद्यपि नारकियोंका वैक्रियक शरीर है मगर वह दुःखदायी शरीर है, अतएव उन शरीरोंमें रागादिक ही बसते हैं। इन नारकियोंके शरीरकी लम्बाई इस प्रकारसे है—७ वें नरकके नारकियोंका ५०० धनुषका शरीर होता है, छठवें नरकमें २५० धनुषका शरीर होता है, ५वें नरकमें १२५ धनुषका, चौथे नरकमें ६२।। धनुषका, तीसरे नरकमें ३१। धनुषका, दूसरे नरकमें १५ धनुष ३ हाथका और पहिले नरकमें ७ धनुष ३।। हाथका शरीर होता है। तो नीचेके नरकोंके शरीर बड़े बड़े हैं, उनकी आयु भी उत्तरोत्तर अधिक है। पहिले नरकके नरकोंकी आयु अधिकसे अधिक १ सागरकी है, दूसरे नरककी आयु ३ सागर है, फिर ७, १०, १७, २२ और ३३ सागरकी आयु ७ वें नरकमें है। उन नरकोंमें इतने घोर दुःख हैं और इतनी लम्बी उनकी स्थिति है। दुःख डर सभी उत्तरोत्तर अधिक बढ़ते गए। नारकियोंके इन दुःखोंका चिन्तन करके ज्ञानी जीव संसार शरीर भोगोंसे और अधिक विरक्ति प्राप्त करते हैं।

मध्यभागस्ततो मध्ये तत्रास्ते झल्लरीनिभः।
यत्र द्वीपसमुद्राणां व्यवस्था वलयाकृतिः ।।१७५१।।

लोकके मध्यभागके वर्णनका आरम्भ—अधोलोकके ऊपर मध्य लोक आता है। मध्य लोक मेरु पर्वतके बराबर माना जाता है। जितनी मेरु पर्वतकी लम्बाई है उतनी ही मध्य लोककी मोटाई है। मेरु पर्वत जमीनसे ९९ हजार योजन ऊपर है और जमीनके नीचे चलनेमें १००० योजन गहरा है। यों १ लाख योजनका मध्यलोककी ऊर्ध्व लोककी मोटाई समझिये, और चारों दिशावोंमें यह मध्यलोक कितना बड़ा है, तो आगे द्वीप समुद्रकी रचना आयगी उससे विदित होगा यह मध्यलोक एक गोलाकार है, अथवा किन्हीं आचार्योंके मतसे चौकोर है और उसमें गोलाकाररूपसे अनेक द्वीप समुद्रकी रचनाएं हैं। पृथ्वीका विस्तार सुनकर चित्त में यह भावना बन जाती है कि इतना बड़ा लोक है, ऐसी ऐसी जगह हैं, वहाँ यह जीव अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है और कहीं भी टिककर नहीं रहा, जन्म मरण कर रहा है। तो आजका परिचित इतनासा क्षेत्र यह मेरे लिए क्या सर्वस्व है ? जितने परिचित क्षेत्रमें विकल्प बढ़ाकर अपने आपको अंधेरेमें ले जाया जा रहा है। यह ममताके योग्य क्षेत्र नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विस्तार समझकर चित्तमें यह बात आती है।

जम्बूद्वीपादयो द्वीपा लवणोदादयोऽर्णवाः।
स्वयंभूरमणान्तास्ते प्रत्येकं द्वीपसागराः ॥१७५२॥

मध्यलोकमें असंख्याते द्वीपसमुद्रोंका निर्देश—उस मध्यलोकमें सबसे बीचमें मेरूपर्वत है, उस मेरूपर्वतको मध्यमें लेकर चारों ओर एक जम्बूद्वीपकी रचना है जिसका विस्तार एक लाख योजनका है। जम्बूद्वीप ही देखिये कितने बड़े विस्तार वाला है? जम्बूद्वीपकी चर्चा अनेक मतोंमें उनके पुराणोंमें आ गयी है। तो मालूम होता है कि जम्बूद्वीपके ज्ञानकी बात बहुत पुरानी परम्परासे चली आ रही है। दो हजार कोशका एक योजन माना गया है। करीब २॥ मीलका एक कोश होता है। ऐसा एक लाख योजनका जम्बूद्वीप है। वर्तमानमें जितनी भूमि मानी जा रही है करीब १०—१५ हजार मील की मानी जा रही है। तो इतना सा यह क्षेत्र तो जम्बूद्वीपका एक छोटासा हिस्सा है। आजके भूगोल प्रकरणमें जमीन गोल मानी गई है, और वह गोल भी सही गोल नहीं किन्तु कुल लम्बाई लिए हुए और कुछ नीचे बहुत सूक्ष्मता लिए हुए जमीन गोल मानी गयी है, किन्तु जैन शासनमें जमीनको एक थालीके समान चपटी गोल माना है लेकिन इस जमीनपर इस अवसर्पिणी कालमें जमीनकी वृद्धिका ही मलमा इकट्ठा हुआ है। जो मलमा प्रलय काल आनेपर ध्वस्त हो जायगा। यह उठा हुआ मलमा आजके वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें गोल रूप रख रहा है। यह गोल मलमा केवल भरत क्षेत्रके आर्यखण्डमें पाया जाता है, म्लेच्छमें नहीं और शेष भूभागमें नहीं। तो यह जम्बूद्वीप जिसके एक कोनेमें हम आप रहते हैं वह एक लाख योजनका लम्बा है, उसके चारों ओर दो लाख योजनके व्यासका लवण समुद्र है, उसके चारों ओर और भी द्वीप तथा समुद्र हैं। इस तरह असंख्याते द्वीप समुद्र दूनी दूनी रचना वाले हैं। अब आप समझिये कि यह एक राजू कितना बड़ा होता है? ये असंख्याते द्वीपसमुद्र जितनी मापमें हैं वह एक राजू पूरा नहीं है और फिर एक राजू यह एक प्रस्ताव रूपमें है, इतना ही लम्बा, चौड़ा, मोटा घनाकार होता है। ऐसे ऐसे ३४३ घनराजू प्रमाण यह मध्य लोक है, इसमें हम आप प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं। निगोद स्थावर आदिक बनकर रहे, और जहाँ जो जीव पाये जाते हैं वे जीव बनकर हुए, किन्तु आज तक न तो सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुए और न दक्षिण, लोकपाल, शुचि आदिक हुए। जिन जन्मोंको पाकर यह जीव कुछ ही भवोंमें मुक्त हो जाता है, ऐसे कोई जन्म नहीं पाये और उसका परिमाण यह है कि भटक भटककर आज इस पंचमकालमें हम आप उत्पन्न हुए हैं। यद्यपि यहाँ भी सम्यग्दर्शनका साधन होता है और यथायोग्य संयमका साधन होता है पर हमारा यह भव यह बताता है कि हमने अबसे पूर्व कोई ऐसा विशिष्ट जन्म नहीं पाया कि जिस जन्मके बाद एक दो भव लेकर ही मुक्ति हो जाय। इस जीवको मुक्तिसे रोकने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वाला बाधक भाव है ममत्व। किस किस तरहका ममत्व जीवमें पाया जाता है ? किसीको शरीरमें ममता है, किसीको अपनी इज्जतमें ममत्व है, चाहे शरीर दुर्बल हो जाय, खानेको न मिले पर इज्जत प्राप्त हो, इस प्रकारका ममत्व किसीको होता है। इज्जत क्या कि कुछ लोग यह कह दें कि यह बड़े अच्छे हैं। कौनसे लोग ? ये ही दु:खी संसारी कर्म वाले ये प्राणी। इस ही का नाम तो इज्जत है। सो अनेक लोग इज्जतमें ममत्व रखते हैं। कोई धनमें ममत्व रखते हैं, कोई परिजनोंमें, कुटुम्बियोंमें ममत्व रखते हैं। जिसको जिससे स्नेह होता है उसको उसमें गुण ही गुण दिखते हैं। ये ममत्वके कारण दिखते हैं। तो यों ममता परिणाम करके जीव इस संसारमें रुलते जाते हैं। किसीका रहा कुछ नहीं अब तक, और जो समागम मिलेगा यह भी रहेगा कुछ नहीं, लेकिन ममता किए बिना यह मोही जीव चैन ही नहीं मानता, व्यर्थ का ममत्व किए जा रहे हैं। ममता करनेसे कोई चीज अपनी बन जाय तो चलो ममता कर लें ठीक है, अपना तो हो जायगा पर ममताका ही भाव जीव बना पायगा। इस जीवका कुछ हुआ नहीं अब तक, न कोई जीव इसका बना, न कोई वैभव इसका बन सका। सब अपना अपना स्वतंत्र स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं।

द्विगुणा द्विगुणा भोगा प्रावर्त्यान्योन्यमास्थिताः।
सर्वे ते शुभनामानो वलयाकारधारिणः ॥१७५३॥

अगले अगले द्वीपसमुद्रोंके परिमाणकी द्विगुणद्विगुणता—मध्य लोकमें जो द्वीपसमुद्र बताये गए हैं वे दूने दूने विस्तार वाले हैं और एक दूसरेको घेरे हुए हैं, गोल आकारके हैं, उनके नाम भी बहुत शुभ हैं। जैसे जम्बूद्वीप धातकीद्वीप, पुस्करद्वीप, कालौदधि, लवणसमुद्र आदिक सभी शुभ नाम वाले हैं। ये द्वीपसमुद्र हैं असंख्यात, गिनतीसे बाहर और ऐसी गिनतीसे बाहर जो अनेक कल्पनाएँ करके भी गिनती मानी जा सकती है, उससे भी परे इतने असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। उन सबके नाम तो बताये जा सकते हैं क्योंकि भगवानके ज्ञानसे बाहर नहीं है। गणधरदेव अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी होते हैं, लेकिन उन नामों को लिखनेके लिए इतने कागज कहाँ मिलेंगे ? असंख्याते द्वीप समुद्रोंके नाम लिखे नहीं जा सकते, बताये नहीं जा सकते। उनको पढ़ेगे तो कितने जीवन तक पढ़ेंगे ? इतने द्वीपसमुद्र हैं और वे मध्यलोकमें समाये हुए हैं। एक कविने कल्पना की कि देखो यह मनुष्य कितनी अच्छी सुरक्षित जगहमें उत्पन्न होता है कि जो दुष्ट नारकी थे उन्हें तो नीचे ढकेल दिया ताकि ये मनुष्योंको बाधा न पहुंचायें। वे नरकमें पड़े हैं और जो देव हैं वे ऊपर बसाये गए कि उनकी छायामें यह मनुष्य लोक रहें और मनुष्यलोकके चारों तरफ अनेक द्वीप अनेक समुद्र हैं, असंख्याते कोटकी रचनाएं हैं, असंख्याते खाइयाँ हैं तिस पर भी यह मनुष्य रक्षित नहीं है, जब चाहे मरणको प्राप्त हो जाता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मानुषोत्तरशैलेन्द्रमध्यस्थमतिसुन्दरम् ।
नरक्षेत्रं सरिच्छैल सुराचलविराजितम् ॥१७५४॥

नरलोकके क्षेत्रका परिमाण—यह मनुष्यलोक ढाई द्वीपमें है अर्थात् पूरे जम्बूद्वीपमें दो लाख योजनका लवणसमुद्र है। लवणसमुद्रके चारों तरफ चार लाख योजन घातकी खण्ड द्वीप है और घातकी खण्ड द्वीपके चारों ओर ८ लाख योजनका कालोदधि समुद्र है और कालोदधि समुद्रके चारों तरफ १६ लाख योजन चौड़ा पुस्कर द्वीप है। पुस्कर द्वीपके उत्तरार्द्धमें ८ लाख योजन चौड़ा पुष्करार्द्ध द्वीप है। ऐसे ढाई द्वीप क्षेत्रमें यह मनुष्य रहता है इससे आगे नहीं। यह क्षेत्र ४५ लाख योजनका है। इतने लम्बे क्षेत्रमें किसी भी प्रदेशसे ये सिद्ध भगवान मुक्त होकर सिद्ध लोकमें जा विराजते हैं। तो ४५ लाख योजनका ही सिद्ध लोक है। इस ढाईद्वीपमें ऐसी कोई जगह नहीं बची जहाँसे मनुष्य निर्वाणको न पधारे हों। इसमें कुछ शंका ऐसी की जा सकती है कि समुद्रोंसे कैसे मोक्ष पधारे ? तो समुद्रसे मोक्ष जाने की यह विधि बनी है कि कोई मुनि महाराजको तपस्या करते हुएमें किसी बैरीने समुद्रमें पटक दिया हो, किन्तु उन मुनिराजका ध्यान उस समय उत्तम ही रहा, वहाँ ही केवलज्ञान प्राप्त किया और वहीसे मुक्त हो गए। तो समुद्रके भी प्रत्येक प्रदेशसे अनगिनते मुनिराज मोक्ष पधारे। एक शंका और की जा सकती है कि जो मेरु पर्वत है उसका जो बीचका स्थान है, जहाँ एकदम चोटी ऊँची चली गई है और उस चोटीके ऊपर एक बालके अन्तरके बाद स्वर्गकी रचना चालू होती है, वहाँसे कैसे मुक्त गए होंगे ? तो वहाँसे मुक्त होनेकी यह विधि बनी है कि कोई ऋद्धिधारी मुनि ऋद्धि बलसे उस मेरु पर्वतके भीतरसे भी गमन कर रहा हो तो उस मेरुके मध्य क्षेत्रमें रुककर वहाँ ही उत्कृष्ट ध्यानी बन जाय, आयु पूरी होनेका समय आ जाय, केवलज्ञान हो जाये और मुक्ति सिधार जाये तो वहाँसे भी मुक्ति होती है। इस ढाई द्वीपमें कोई भी ऐसा प्रदेश नहीं बचा जहाँसे अनेक जीव मोक्ष न गए हों। कुछ नई स्मृतियोंके अनुसार हम कुछ स्थानोंको सिद्ध क्षेत्र मानकर पूजते हैं, पर वस्तुतः तो सिद्ध क्षेत्र प्रत्येक स्थान है। जिस जगह हम रहते हैं, घरमें बसते हैं, जहाँ बैठे हैं, जहाँ भी जायें, सभी जगह सिद्ध क्षेत्र है। तो ऐसा स्मरण करके जैसे लोग सोचा करते हैं कि भाई हम तीर्थ क्षेत्रमें हैं पापकी बात न विचारें, तो तीर्थक्षेत्र तो सर्वत्र है। हम सभी जगह पापकी बात न विचारें। जैसे मरण काल जब आता है तो मरने वाला भी सोचता है। लोग भी समझते हैं कि अब तो इसका मरण काल है। अपना परिणाम निर्मल रखो। तो मरण काल तो प्रति समय है। जो समय गया वह समय फिर नहीं आनेका है। बचपन गया, अब इस भवमें बचपन वापिस नहीं आनेका। जो जीवन गया वह वापिस तो नहीं आता। जो समय गया वह गया ही है ना। तो वह मरण है, प्रति समय जीवका मरण हो रहा है। तो मरण समयमें परि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

णाम सुधारो, इसका अर्थ यह जानें कि प्रत्येक समयमें अपना परिणाम सुधारें।

तत्रार्यम्लेच्छखंडानि भूरिभेदानि तेष्वमी।
आर्या म्लेच्छा नराः सन्ति तत्क्षेत्रजनितैर्गुणैः ।।१७५५।।

मनुष्य क्षेत्रमें अनेक आर्यखण्ड व म्लेच्छखण्डोंका निर्देश—इस मनुष्य क्षेत्रमें अनेक आर्यखण्ड हैं और म्लेच्छ खण्ड हैं। ५ भरत खण्ड और ५ ऐरावत खण्ड हैं और प्रत्येक भरत खण्डमें आर्यखण्ड है; और म्लेच्छ खण्ड ५ हैं। आर्यखण्डमें आर्य पुरुष रहते हैं, म्लेच्छ खण्डमें म्लेच्छ पुरुष रहते हैं, अर्थात् आर्योंके उत्तम आचार उत्तम गुण हैं और म्लेच्छोंके जघन्य आचार और धर्मशून्यता उनमें पायी जाती है। हम आप ऐसे आर्यखण्डमें उत्पन्न हुए हैं और जितनी आजकी मानी हुई दुनिया है अमेरिका, चीन, जापान, भरत आदि सभी देश इस आर्य खण्डमें हैं। इस क्षेत्रके हिसाबसे आजकी दुनियामें रहने वाले जितने पुरुष हैं, चाहे वे किसी भी देशके हों वे सब आर्य कहलाते हैं। उन आर्योंमें भी और कुछ विशिष्ट पुरुष हुआ करते हैं, जिसे सम्यक्त्व हो गया वह दर्शनार्य कहलाता है और जिसके चारित्र हुआ वह चारित्रार्य कहलाता है। ये पुरुष और भी श्रेष्ठ पुरुष हैं, जिन्होंने अपने उपयोगसे उस सहज स्वरूपको 'यह मैं हूं' ऐसा मान लिया, मैं ज्ञानानन्द मात्र हूं, आकाशनिर्लेप हूं, इसके स्वरूपमें न द्रव्यकर्म है, न भावकर्म है, न कोई नोकर्म है, सबसे निराला केवल चैतन्यस्वरूपको रखने वाला यह मैं आत्मतत्त्व हूं। यद्यपि उन प्रदेशोंमें भावकर्मके उदय चलते हैं, रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक रूप परिणमें। जब अपने ज्ञानस्वभावको निरखते हैं तो यह निर्णय होता है कि मैं स्वभावमात्र हूं, मुझमें रागादिक विकार नहीं हैं, क्योंकि रागादिक विकार मेरे स्वभावमें नहीं पाये जाते। जैसे जलके स्वभावमें गर्मी नहीं पायी जाती, क्योंकि गर्मी अगर स्वभावमें आ जाय तो जल कभी ठंडा ही नहीं हो सकता। ऐसे ही मेरे स्वभावमें रागादिक विकार नहीं पाये जाते। वह तो एक चैतन्यकी स्वच्छता लिए हुए एक परमतत्त्व है। जैसे दर्पणमें दर्पणके सामनेके पदार्ज प्रतिबिम्बित हो जाते हैं, झलकते हैं लेकिन वह सब झलकना, वह सब रूप रंग वे सब दर्पणमें नहीं पाये जा रहे हैं। इस उपाधिके सम्बंधसे और दर्पणकी स्वच्छताके कारण ये पदार्थ प्रतिबिम्बित हो गए, पर यह प्रतिबिम्ब दर्पणका निजी स्वभाव नहीं है, निज रूप नहीं है। दर्पणका निजी रूप तो स्वच्छतामात्र है जिस स्वच्छताके कारण पदार्थ प्रतिबिम्बित हो गए। इसी प्रकार आत्मा भी एक स्वच्छताको लिए हुए परमतत्त्व है, इस आत्मामें रागादिक विकार झलकते हैं, उत्पन्न होते हैं तो कर्मउपाधिका निमित्त पाकर उत्पन्न होते हैं। ये रागादिक विकार आत्मामें स्वयंमें स्वयंके सत्त्वके कारण स्वयंके स्वरूपसे नहीं हैं। स्वयंके स्वरूपमें तो वह स्वच्छता है, वह चैतन्य ज्योति है जिस ज्योतिमें ये रागादिक विकार झलक सकते हैं। मैं द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मसे रहित केवल ज्ञानज्योति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मात्र तत्त्व हूं, यह प्रतीति तो महापुरुषोंके उपयोगमें समा गयी, और ऐसे उत्तम रूपसे समा गई कि धुनि बन गई, इस ही के मूल कारण अब परपदार्थोंमें ममता नहीं रही, रुचि नहीं रही, व्यग्रता नहीं रही, किसी प्रकारका लोक संकोच नहीं रहा, कोई शंका भय नहीं रहा, एक आत्मतत्त्वको निरखकर। लो मैंने सर्वस्व पा लिया, अब किसी भी प्रकारका मेरेमें भय नहीं है, कोई विपदा ही नहीं। जिन्होंने अपने अमूर्त स्वभावको अपने लक्ष्यमें लिया है उसमें अब क्या आयगा? उसमें शरीर ही नहीं तो रोग क्या आयगा, जब शरीर ही नहीं तो इष्ट-अनिष्ट के दुःख भी कहाँ हैं, बंधु मित्र भी इस आत्मामें कहाँ हैं? आत्मा जब किसी शरीररूप है ही नहीं तो उसमें क्या विडम्बनाएँ हैं? जिन्होंने अपने सहज ज्ञायकस्वरूप आत्मतत्त्वको लक्ष्यमें लिया है वह पुरुष दर्शनार्य कहलाता है और ऐसे ही रूपमें जो स्थिर रहा करता है वह चारित्रार्य है। ये विशिष्ट आर्यपुरुष हैं। इस क्षेत्रमें हम आप जन्मे हैं। हम आप भी अपने धर्मकी ऊँची साधना बना सकते हैं। दृष्टि हो अपने आपपर और दया हो अपने आपकी तो मुक्तिके मार्गकी बात हम आपको आज भी प्राप्त हो सकती है और वही प्राप्त करना चाहिए बाकी तो सारे समागम नष्ट हो जाने वाले हैं। इनकी रुचिसे अपनेको कुछ भी लाभ नहीं मिलता।

क्वचित्कुमानुषोपेतं क्वचिद्व्यन्तरसंभृतम्।
क्वचिद्भोगाधराकीर्णं नरक्षेत्रं निरन्तरम् ॥१७५६॥

मनुष्यलोकमें कुभोगभूमि, भोगभूमि व व्यन्तरावासोंका संकेत—यह मनुष्य लोकका क्षेत्र कहीं कहीं तो कुमानुषोंसे भरा हुआ है, कहीं व्यन्तरोंसे भरा है, कहीं भोगधारियोंसे भरा है। ऐसे इस मनुष्य लोकमें कुछ स्थान तो कर्मभूमिके है, कुछ स्थान भोगभूमिके हैं। और इस ही मनुष्यलोकमें कुछ स्थानोंमें व्यन्तर भी रहते हैं। लोककी रचनाके चिन्तनमें यह ज्ञानी जीव इस समय मध्यलोककी रचनाका विचार कर रहा है। नाना क्षेत्र नाना रचनायें उपयोग में आनेसे वर्तमान समागमोंका मोह नहीं रहता। इस इतने बड़े लोकमें ऐसे ऐसे स्थानोंमें हम अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं और वहाँ भी मेरा कुछ बनकर नहीं रहा। तो यहांके जो समागम हैं वे मेरे बनकर रहेंगे क्या? तो रचनाओंका चिन्तन करने से रागद्वेषमें शिथिलता हो जाती है। इस मनुष्य लोकमें कुछ रचनाएँ तो भोगभूमिकी रचनायें हैं जहाँ जुगलियाँ उत्पन्न होती हैं, मनोवाञ्छित भोग कल्पवृक्षोंसे प्राप्त हो जाते हैं, कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती है। और ये भी आयुसे पहिले नहीं मरते। वह भोगभूमियोंसे भरा हुआ कुछ क्षेत्र है और कुछ कुभोगभूमि है जिसमें खोटे मनुष्य भी रहते हैं और कुछ क्षेत्रोंमें कर्मभूमि की रचनायें हैं, जहाँके उत्पन्न हुए मनुष्य तपश्चरण करके संयम धारण करके मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं। यों मध्यलोकका कुछ वर्णन करके अब आचार्यदेव ऊर्ध्वलोकका वर्णन करते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ततो नभसि तिष्ठन्ति विमानानि दिवौकसाम् ।
चरस्थिरविकल्पानि ज्योतिष्काणां यथाक्रमम् ॥१७५७॥

मनुष्यक्षेत्रके ऊपर तथा मध्यलोकमें अन्यत्र ऊपर ज्योतिष्क देवोंके आवासका संकेत— ऊर्ध्व लोकके वर्णनसे पहिले मध्यलोकसे ऊपरी भागका वर्णन किया जा रहा है कि ज्योतिषी देव ऊर्ध्वलोकमें नहीं रहते, ये मध्यलोकमें ही हैं। लेकिन मध्यलोकमें ऊपर रहते हैं। सो ज्योतिषी देवोंके ये विमान जो कुछ भी नजर आते हैं, सूर्य, चन्द्र, तारे ये सब विमान हैं, ये कोई तो स्थिर हैं और कोई चलने वाले हैं। मनुष्य लोकमें तो प्रायः चलने वाले विमान हैं, ध्रुवतारा वगैरह कुछ ही ऐसे विमान हैं जो जहाँके तहाँ रहते हैं, बाकी तो सभी विमान सुदर्शन मेरुकी परिक्रमा देते रहते हैं। मनुष्य लोकसे बाहरके जितने विमान हैं ज्योतिषियोंके वे सब स्थिर रहते हैं, वे यत्र तत्र भ्रमण नहीं करते।

तदूर्ध्वे संति देवेश कल्पाः सौधर्मपूर्वकाः ।
ते षोडशाच्युत स्वर्गपर्यन्ता नभसि स्थिताः ॥१७५८॥

ऊर्ध्वलोकमें कल्पवासी देवोंके आवासोंका निर्देश—ज्योतिषी देवोंके विमानोंके ऊपर कल्पवासी देवोंके विमान हैं जहाँ १६ स्वर्गोंकी रचना है। मेरु पर्वतसे एक बाल मोटाईके अन्तरके बाद स्वर्गकी रचना शुरू हो जाती है। तो स्वर्गोंकी रचना कुछ अलग नहीं है किन्तु पटलके रूपमें सब रचनाएँ पायी जाती हैं। जैसे बीचमें एक विमान हो, चारों दिशावोंमें विमानोंकी लाइन लगे और विदिशामें भी विमानोंकी लाइन लगे और बीचमें जो अन्तर पड़ गया उसमें फैल फूट फूटकर अनेक विमान रहते हैं, ऐसे एक फैलावमें जितने ये सब विमान हैं उसे एक पटल कहते हैं, फिर कुछ और ऊपर आकाशमें दूसरा पटल है। इस तरहसे ये सब ६३ पटल हैं जिनके कुछ पटल स्वर्गोंमें हैं, कुछ पटल स्वर्गोंके ऊपर कल्पातीत विमानमें हैं। उन सोलह स्वर्गोंमें इन्द्र, लोकपाल, सामानिक, प्रकीर्णक त्रायस्त्रिंश, पारिसद, किलविसक आदि ऐसे १० प्रकारके देव रहते हैं, उनमें ऐसी कल्पना है। सोलह स्वर्गोंमें कोई इन्द्र है, कोई सामानिक। इन्द्र ही देव कहलाते हैं जिनकी सब देवोंपर हुकूमत चले। सामान्तिक देव वे कहलाते हैं जिनका आराम इन्द्रकी तरह है मगर हुकूमत नहीं चलती। जैसे जिस प्रकार राजा खाता पहिनता है उसी प्रकार राजघरानेके कुटुम्बके लोग भी खाते पहिनते हैं पर हुकूमत केवल एक राजाकी चलती है इसी प्रकार इन्द्र और सामान्तिक देव हैं। त्रायस्त्रिंश देव एक मंत्रीकी तरह हैं। जैसे मंत्रीगण राजाको सलाह देते हैं, राजाके खास अंग हैं इसी प्रकार ये त्रायस्त्रिंश देव इन्द्रके खास अंग हैं। ये ३३ संख्यामें होते हैं इसलिए इनको त्रायस्त्रिंश कहते हैं। यों समझिये कि राजाके ३३ मंत्री हों तो इसमें प्राकृतिक बात यह देखो कि कितनी बढ़िया संख्या है यह ३३ की। जिसके कोरम ११ बैठते हैं। तो उनमें अपने आप बहु सम्मति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नजर आती है परिषद जातिके देव उनके सभासदकी तरह हैं। ये अंगरक्षककी तरह हैं जो इन्द्रके साथ रहते हैं और इन्द्रकी रक्षा करते हैं। यद्यपि इन्द्रकी रक्षा करना कोई आवश्यक नहीं है क्योंकि वे स्वयं स्वरक्षित हैं। किसी भी देवकी आयु बीचमें नष्ट नहीं होती लेकिन एक वैभव है, इस तरहकी विभूति है। लोकपाल कोतवालकी तरह प्रजारक्षक है। कोतवाल का बड़ी ईमानदारीका दर्जा है। वह लोकपाल अर्थात् उन देवोंका कोतवाल एक ही भवके बाद मोक्ष प्राप्त करता है और कोई जाये चाहे न जाय। लोकपालके बाद हैं प्रकीर्णक देवोंकी तरहके देव, जो बड़े देवोंके बाहनके काम आयें। अर्थात् हाथी, घोड़ा, बैल, सिंह आदिकके रूप रखकर उन इन्द्र आदिक देवोंको अपने ऊपर सवारी करके ले जाते हैं। यद्यपि इन्द्रादिक देवों को सवारीकी आवश्यकता नहीं पर वह तो उनके पुण्यके वैभवकी बात है। एक किलविसक जातिके देव हैं, वे बड़े गरीब देव हैं। सभी देवोंमें निकृष्ट देव हैं जो बाहर बाहर ही रहते हैं। सभावोंमें और बड़े देवोंमें इनका प्रवेश नहीं होता है। इस प्रकारकी कल्पना १६ वें स्वर्गमें पायी जाती है। १६ स्वर्गोंसे ऊपर कल्पनाएँ नहीं हैं। सोलहवेंसे ऊपर जो देवोंकी रचनाएँ हैं उन्हें कल्पनातीत कहते हैं।

उपर्युपरि देवेश निवासयुगलं क्रमात्।
अच्युतान्तं ततोऽप्यूर्ध्वमेकैकत्रिदशास्पदम् ॥१७५९॥

ऊर्ध्वलोकमें कल्पवासियोंके कल्प और इससे ऊपर अन्य विभावोंका संकेत—देवोंके निवास ८ कल्पोंमें हैं, ८ जोड़ियोंमें हैं। एक एक जोड़ीमें दो दो स्वर्ग चलते हैं। इस तरह सोलह स्वर्गोंकी रचना है, उनके ऊपर एक-एक विमान करके ९ तो ग्रैवयक हैं, एक अनुदिश का पटल है, एक अनुतर विमानका पटल है। इसमें सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं, और नवग्रैवयकके विमानोंमें मुनि ही उत्पन्न हो सकते हैं, चाहे सम्यग्दृष्टि हों अथवा मिथ्यादृष्टि हों। सोलह स्वर्गोंमें तो सभी श्रावक उत्पन्न हो सकते हैं। बारह स्वर्गों तक तिर्यञ्च विशिष्ट उत्पन्न हो सकते हैं। इस प्रकार ऊर्ध्व लोकमें स्वर्गोंकी और स्वर्गोंसे ऊपर विशिष्ट विमानकी रचनायें हैं।

निशादिनविभागोऽयं न तत्र त्रिदशास्पदे।
रत्नालोकः स्फुरत्युच्चैः सततं नेत्रसौख्यदः ॥१७६०॥

वैमानिक देवोंमें पुण्यफलकी महिमाका चित्रण—पुण्यका फल स्वर्गलोकमें और ऊपरके विमानोंमें है। जैसे पापका फल विशेष नरकमें उत्पन्न होकर भोगना पड़ता है ऐसे ही पुण्य विशेष फलित होता है स्वर्गोंके ऊपरके विमानोंमें। उन स्वर्गादिकमें रात दिनका विभाग नहीं। सूर्य चन्द्र तो यहीं मध्यलोकमें हैं, ऊर्ध्वलोकमें नहीं हैं। वहाँ तो रत्नोंका ही बहुत बड़ा प्रकाश है, जो नेत्रोंको सुख देने वाला है। सूर्यकी किरणें तो तीक्ष्ण होती हैं। सूर्यकी किरणों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की ओर तो आँखें भली प्रकार देख भी नहीं सकतीं, लेकिन वहाँ स्वर्गोंमें ऐसे रत्नोंका प्रकाश है जो नेत्रोंको सुख देने वाला है। वहाँ रात दिनका भेद नहीं है। लेकिन समय तो सब जगह चलता है। यहाँ हम समयको रात दिनमें बाँट लेते हैं, वहाँ रात दिन नहीं किन्तु समयका व्यतीत होना तो बराबर निरन्तर जारी है। तो पुण्यका यहाँ विशेष फल होता है। पुण्यके अनुकूल ये स्थान बने हुए है जहाँ उत्पन्न होकर ये जीव मनचाहे सुख भोगते हैं।

वर्षातपतुषारादिसमयैः परिवर्जितः।
सुखदः सर्वदा सौम्यस्तत्र कालः प्रवर्तते ॥१७६१॥

स्वर्गोंमें शीतातपादिक दुःखोंसे रहितता—उन स्वर्गोंमें वर्षा शीत तुषार गर्मी ये समय नहीं हैं। ऐसी ये ऋतुएँ नहीं होतीं। वर्षाके समय भी लोगोंको बहुत सी असुविधायें हो जाती हैं। घर चू रहा है, ज्यादा बरष गया है, बाहर भ्रमण करने भी नहीं जा सकते, अनेक असुविधायें होती हैं पर स्वर्ग और ऊपरके विमान ये तो पुण्यके स्थान हैं, यहाँ असुविधा वाली बातें न होना चाहिए। सो वहां ये कोई ऋतुवें नहीं होती हैं। जहाँ विकलत्रय जीव भी उत्पन्न नहीं हैं कि कीड़ा मकोड़ा मक्खी मच्छर आदिककी तरह उन्हें सतावें, वहाँ वर्षा भी नहीं होती, शीतकाल भी नहीं होता, वहां देवोंका शरीर ही वैक्रियक है और फिर ऐसी बाधा देने वाली ऋतुवें भी नहीं हैं। ठंडका भी बहुत कठिन क्लेश होता है। जब ठंढ अधिक पड़ती है तो लोग उस ठंढसे परेशान होकर यह कहने लगते कि इस ठंढसे तो गरमी अच्छी है और जब गरमी अधिक पड़ती है तो उससे भी बहुत परेशान होकर लोग कहने लगते कि इस गरमी से तो ठंढ अच्छी है। तो ठंढ गरमी—इन दोनोंमें बहुत अधिक वेदनाएँ है। इस ठंढ और गरमीका समय स्वर्ग लोकसे और ऊपर नहीं है, वहां सदा एक मध्यस्त काल रहता है। जैसे यहाँ बसंत ऋतुमें या फागुन चैतके महीनोंमें जब कि न अधिक गरमी है और न अधिक ठंढ है, एक सम जलवायु रहता है, उसमें किसीको कोई ढंढ गरमी की वेदना नहीं होती, इस प्रकारका मध्यस्त काल ऊर्ध्व लोकमें बना रहता है जिससे वहांके देव बाहरी बाधावोंसे भी परे रहा करते हैं।

उत्पातभयसन्तापभङ्गचौरादिविद्वराः।
न हि स्वप्नेपि दृश्यन्ते क्षुद्रसत्त्वाश्च दुर्जना ॥१७६२॥

वैमानिक देवोंके आवासमें उत्पात भय आदिका अभाव—उन स्वर्गोंमें न कहीं उत्पात है, न कहीं उपद्रव है, न कोई किसी पर उपसर्ग करता है, न लड़ाई झगड़े हैं। लड़ाई झगड़े का कारण तो परिग्रह है। उन्हें कमाई करनी नहीं, आजीविकाके साधन बनानेकी जरूरत नहीं, उनका वैक्रियक शरीर है, जब कभी हजारों वर्षोंसे भूख लगती है तो उनके ही कंठसे अमृत झड़ जाता है और वे तृप्त हो जाते हैं। उनको शृङ्गारके लिए वस्त्र आभूषण ये स्वयं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्राप्त हो जाते हैं। तो वहां कलहकी कोई गुञ्जाइश नहीं है, फिर भी सूक्ष्मतासे तो यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें कभी लड़ाई ही नहीं होती। होती है किसी प्रकारकी उनके ढंगकी मगर ऐसी कलह ऐसा उत्पात कारणोंका अभाव होनेसे नहीं होते जैसा कि मनुष्य लोकमें हुआ करता है। वहां भय भी कुछ नहीं है। भय किसी भी देवको नहीं है क्योंकि सभी सुरक्षित हैं। बीचमें किसीका मरण नहीं होता लेकिन पुण्य पापके फल सर्वत्र फलते हैं। वहां इन्द्रोंका और बड़े देवोंका छोटे देव कुछ भय मानते हैं, वह भय एक पुण्यसे प्रेरित भय है। उनकी आज्ञामें रहना पड़ता है इस कारणसे थोड़ी बहुत भयकी बात है पर जैसा भय यहां है कि आजीविका रहेगी कि नहीं, कहीं मरण न हो जाय, ऐसा भय उन देवोंके नहीं है। वहां कोई संताप भी नहीं है। संताप यह दो प्रकारसे होता है—एक तो शारीरिक संताप और दूसरा मानसिक संताप। इष्टवियोग हो गया उसका खेद मान रहे हैं तो देवतावों को कोई शारीरिक संताप तो होते ही नहीं, इष्टवियोग भी उनके नहीं होता। वहाँ ऐसा ही नियोग है कि कोई देव गुजर गया तो उसके स्थान पर वहां जो भी देव होगा वह देव उसका इष्ट हो जायगा, वहां कोई देवांगना मर गयी तो वहां जो दूसरी देवांगना हो वह उस देवकी इष्ट बन जायगी। तो वहां संताप नहीं होता, चोर शत्रु आदिक की भी वहां बाधा नहीं है। किसका क्या चुरायें ? यहां तो परिग्रहका सम्बन्ध आजीविकासे है तो कुछ परिग्रह मनुष्य लोग चुरा भी लेते हैं पर वहां क्या चुरायें ? चोरी करके कहां रखना, उसका क्या उपयोग करना ? यद्यपि वहां भी बड़े वैभव वाले, छोटे वैभव वाले देव हैं और वे कुछ मनमें संताप भी करते हैं दूसरेके बड़े वैभवको निरखकर, लेकिन चुरानेका काम वहां नहीं है। यह तो पुण्योदयसे जिसे जो वैभव मिला उसे पा करके वह अपने भाव बनाता रहता है। तो वहां चोरीकी भी बात नहीं है। वहां वंचक भी नहीं, ठगने वाले भी नहीं। जैसे यहां जेबकतरे लोग या और और भी अनेक पद्धतियोंसे चोरी करने वाले लोग पाये जाते हैं वैसे वहां चोरी कोई देव नहीं करते। चोरी करनेका, ठगाई करनेका परिणाम वहां है ही नहीं। यहां तो मनुष्य लोग ठगाई करनेके चोरी करनेके नाना प्रकारके उपाय रचते हैं। जैसे अभी यात्राके प्रसंगमें ही कितनी ही तरहसे लोगोंको ठगनेकी बात देखनेमें आयी। कुछ पैसे बिखेर दिया और कह दिया कि देखो तुम्हारे ये पैसे गिर गये, वह पैसे उठाने लगा उतनेमें ही उसकी कोई चीज लेकर वह चम्पत हो गया। किसीने पानी भरनेके लिया लोटा या गिलास मांगा तो अपरिचित होकर भी वह उसे बड़े प्रेमसे दे देता और जहां वह नहाने लगा तो झट उसकी कोई कीमती चीज लेकर चम्पत हो जाता। एक नया रिवाज और देखा सुना कि कोई जड़ी बूटी लगा दी शिरके पास। वह अपना सर खुजाने लगा, इतनेमें ही उसकी कोई कीमती चीज लेकर भाग गया। मौका मिल गया तो झट जेब काटकर धन चुरा लिया। तो जैसे यहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मनुष्योंमें नाना तरहकी ठगाई चलती है इस तरहकी ठगाई उन देवोंमें नहीं है। क्षुद्र जीव, दुर्जन क्रूरता वाले जीव ऊर्ध्व लोकमें नहीं होते हैं।

चन्द्रकान्तशिलानद्धाः प्रवालदलदन्तुराः।
वज्रेन्द्रनीलनिर्माणा विचित्रास्तत्र भूमयः ॥१७६३॥

देवभूमियोंकी शोभनता—इन देवोंके निवासमें ऐसी भूमि है, उनके रहनेके भवन महलोंमें ऐसी फर्श है जो चन्द्रकान्तमणि अथवा मूँगा आदिक मणियोंसे रची हुई है। कहीं कहीं हीरा नील आदिक नाना प्रकारके चित्र विचित्र रत्न जड़े हुए हैं ऐसे वहांके निवास स्थान हैं। पृथ्वी ही तो है, पर कहीं कहीं की पृथ्वी प्रकृतिसे सुहावनी होती है, कहींकी पृथ्वी नुकीली, कड़ी पत्थरों वाली होती है। वहाँके भवन बहुत कीमती पुष्ट मणि आदिकसे रचे गए हैं। वहाँ के भवन फर्श वहाँकी और और भूमियां नेत्रोंको सुख देने वाली नाना मणि मूँगा आदिकसे रची गई हैं। सुखके जो स्थानक होते हैं। वहाँ केवल इतनी ही सुविधा नहीं होती कि भूख प्यास न लगे और आरामसे समय कटे, रहनेके स्थान, और और भी वचन-व्यवहार इज्जत सम्मान अपमान यश गुणमान आदिक अनेक बातें होती हैं। तो उनके पुण्य फलकी बात चलती है। तो स्वर्गोंमें इस प्रकारकी भूमि और ऐसे भवन हैं कि जो यहाँ बड़ा परिश्रम करके भी बनाये जायें चमक दमक वाले बड़े सुन्दरसे सुन्दर तो ऐसी अच्छी सुन्दरता ऊर्ध्व लोकमें प्रकृत्या बनी हुई है। यह सब वर्णन चल रहा है संस्थानविचय धर्मध्यानका। एक ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष लोकरचनाका विचार कर रहा है, जब लोकके विस्तारपर और रचनापर दृष्टि जाती है तो उस समय वह उपयोग रागद्वेषको पकड़े हुए नहीं रह सकता है। जैसे घर कुटुम्ब का और अपने परिचित क्षेत्रमें जाने आनेका रोक बन जाय, उसे पकड़े हुए रहे, यह बात नहीं बनती है क्योंकि इसकी दृष्टि लोकके एक विस्तारपर है। उन सब रचनावोंको निरख रहा है और उन रचनावोंके सामने वर्तमान समागमोंको महत्त्व नहीं दे रहा। उससे भी बढ़ बढ़कर उत्तम उत्तम स्थान लोकमें हैं। जो विशेष विरक्त पुरुष होते हैं उनकी ही दृष्टिमें यह सारा लोक काल ये सब रचनाएँ बन रही हैं। जो रागी द्वेषी पुरुष हैं, जिनका एक केन्द्रित अपरिचित क्षेत्र है, जहाँ ही रमकर वे अपनेमें मौज मानते हैं उनकी निगाहमें यह विस्तृत लोक नहीं रह पाता है। अगर यह विस्तृत लोक उनके उपयोगमें रहे तो इस थोड़ी सी भूमिका, थोड़ेसे समागमका उसको आदर नहीं होता। तो संस्थानविचय धर्मध्यानमें ज्ञानी योगी मुनि संत जन इस समय लोकरचनाका विचार कर रहे हैं, जहाँ ऊर्ध्वलोकका वर्णन चल रहा है कि पुण्य फल यों यों फलते हैं।

माणिक्यरोचिषां चक्रैः कर्बुरीकृतदिङ्मुखाः।
वाप्यः स्वर्णाम्बुजच्छन्ना रत्नसोपानराजिलाः ॥१७६४॥

http://sahjanandvarnishastra.org/

देवभवनोंकी शोभनता—जहाँकी बावड़ियां ऐसी शोभायुक्त हैं, माणिककी किरणोंके समूहोंसे दशों दिशायें अनेक वर्णमय चित्र विचित्र हो रही हैं तथा स्वर्णमय कमलोंसे आच्छादित हैं और रत्नमय सीढ़ियोंसे सुशोभित हैं। उन सीढ़ियोंपर स्वर्णमय कलसोंकी रचना है और दूसरी ओर चित्र विचित्र मणि वहाँ रुचती हैं तो वह बावड़ी बहुत विशेष शोभाको प्राप्त होती है। उनकी रचनाएँ जगह-जगह हैं। जहाँ जावो तहाँ ही चित्तको हरने वाली हैं। यह पुण्यफल जहाँ विशेष फलता है वहाँ केवल एक दो बात विशिष्ट हों सो नहीं, किन्तु रहनेका घूमनेका स्थान, आरामका स्थान, लोगोंका समागम जिन भवनोंमें रहता है उनकी रचनाएँ सभी कुछ नेत्रोंको हरने वाली हैं। पुण्यफलकी बात ज्ञानी जीवोंको नहीं रुचती है। वे उस पुण्य फलको कुछ महत्त्व नहीं देते हैं। उस पुण्यफलको वे ज्ञानी पुरुष सारभूत नहीं समझते हैं, मगर बताया जा रहा है कि पुण्यफलसे जीव क्या पाते और पापफलसे जीव क्या पाते हैं, और लोककी कैसी कैसी रचनाएँ हैं जहाँ पुण्यफल और पापफल दिखाई दे रहे हैं। संस्थान-विचय धर्मध्यानमें यह ज्ञानी पुरुष लोककी रचनाका चिन्तन कर रहा है और अपने कर्मोंको काट रहा है।

सरांस्यमलवारीणि हंसकारण्डमण्डलैः।
वाचालैरुद्धतीर्थानि दिव्यनारीजनेन च ॥१७६५॥

वैमानिक देवस्थानोंकी मनोहारिता—स्वर्गोंमें सभी रचनाएँ नेत्र और मनको तृप्त करने वाली हैं। वह स्थान ही ऐसा एक पुण्यफलका धाम है कि जहाँ उत्पन्न होने वाले देव अपने मन माफिक समस्त मौज करते हैं। उन स्वर्गोंमें सरोवर भी हैं जिनमें स्वच्छ निर्मल जल भरा हुआ है। सरोवरोंमें हंस वा कारंड आदिक उत्तम-उत्तम जातिके पक्षी भी उसके निकट शोभा बढ़ाते हैं। यद्यपि तिर्यञ्चोंका विकलत्रयोंका पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंका वहाँ सद्भाव नहीं है फिर भी या तो वहाँ बहुत कलापूर्ण पक्षियोंकी मूर्तियाँ हैं प्राकृतिक अकृत्रिम अथवा कुछ खोटे देव अपना दिल बहलानेके लिए अथवा अन्य पुण्यवंत देवोंका मन प्रसन्न करनेके लिए ऐसी विक्रिया करके भी वहाँ शोभा बढ़ाते हैं। उन सरोवरोंके निकट अनेक देवांगनाएँ अप्सरायें विहार करती हैं। जैसे कहीं किसी अच्छे स्थानपर बहुत सुन्दर सरोवर हो तो बहुत से लोग अनेक महिलायें वहाँ जाकर अपने चित्तका परिश्रम दूर करती हैं, इसी प्रकार वे भी जो कुछ मानसिक खेद या श्रम होता है तो उसे दूर करती हैं और मनका सुख वहाँ प्राप्त करती हैं। यह सब वहाँके पुण्य फलकी बात कही जा रही है। यह पुण्यफल ज्ञानियोंकी दृष्टि में हेय है। क्या होगा ऐसे देवभवमें जन्म लेकर कि जहाँ जीवन पर्यन्त विषयसाधनोंमें उपयोग रहे और आत्माकी सुधके लिए अवकाश न मिले। होते हैं कुछ विरले देव सम्यग्दृष्टि लेकिन वे भी रागवश वैसे ही काम करते हैं। यह सब विषय साधनोंका एक काम है। उन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विषय साधनोंके प्रसंगमें जीवका हित नहीं है। इस जीवके साथ कोई शत्रु लगा है तो यह विषयकषायका ही शत्रु लगा है। नीतिकारोंने जीवके ६ शत्रु बताये हैं—काम, क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह। यह बात बिल्कुल तथ्यकी है। इस जीवको बरबाद करने वाला, संक्लेश देने वाला, संसारमें भटकाने वाला बस यह विषय कषाय मोहका परिणाम है। दूसरा जीव या बाह्यपदार्थका आना जाना संयोग वियोग—ये कोई दुःखके उत्पन्न करने वाले नहीं हैं, किन्तु जीवमें जो अज्ञानभाव बसा है और विषय कषायोंसे प्रेम बना है यह ही जीव को दुःख उत्पन्न करता है, ऐसे देवभवमें भी कोई जीव गया तो वहाँ भी एक अनात्मतत्त्वका ही उपयोग प्राय: करके गया।

गाव: कामदुधाः सर्वाः कल्पवृक्षाश्च पादपा:।
चिन्तारत्नानि रत्नानि स्वर्गलोके स्वभावतः ॥१७६६॥

स्वर्गलोकमें कल्पवृक्ष, चिन्तामणि आदिकी स्वत: उपलब्धि—उस स्वर्गमें जो गायें हैं वे कामधेनु हैं। वहाँ गाय होती हैं इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। ये जीव पाये नहीं जाते किन्तु लोकमें प्रसिद्धि है कि कामधेनु कोई होती है कि उससे जो मांगों सो प्राप्त होता है इस आधार पर तथा वहाँकी जो कुछ भी इस आकारकी मूर्तियां बनी हों, रचनायें बनी हों और वे कल्पवृक्ष जैसा फल देनेमें निमित्त हों तो यह भी सम्भव हो सकता है। वहाँ गाय तो कामधेनु हैं, वृक्ष कल्पवृक्ष हैं। अनेक जातिके कल्प वृक्ष हैं जो प्रकाश दें, आभूषण दें, वस्त्र दें, जो देवोंके मन चाहे भाव हों उन पदार्थोंको देनेमें वे एक निमित्त हैं, ऐसा वहाँ वृक्ष कल्पवृक्षका रूप रखते हैं और रत्न हैं सो चिन्तामणि रत्न हैं। लोकमें ये दो तीन बातें बहुत महत्त्वकी मानी जाती हैं। चिन्तामणि रत्न उसे कहते हैं जो हाथमें आये और जो विचारो सो मिल जाय। सो कहीं अलगसे चिन्तामणि रत्नकी यह महिमा नहीं है। यह जीवके पुण्यकी महिमा है। जो पुण्यवान जीव हैं उनके पुण्य ऐसा ही फलता है कि जो चाहे सो तुरन्त प्राप्त होता है। यह सब पुण्यफल बतानेके लिए कहा जा रहा है। ये कोई प्राप्त करने योग्य पदार्थ नहीं हैं। इन अनेक समागमोंसे जीवको लाभ क्या होगा? जीवका उद्धार तो अपने आपके स्वभावके दर्शनसे ही होगा। जो महाभाग जो भव्य पुरुष अपने आपके स्वरूप का इस रूपमें प्रत्यय करते हैं कि मैं सबसे निराला केवल ज्ञानानन्दस्वरूप मात्र हूं, जो इस प्रकार अपने ज्ञानानन्दस्वरूपका चिन्तन करते हैं सत्य कमाई तो वे ही प्राप्त कर रहे हैं, बाकी तो सब संयोग वियोग विडम्बना हैं जहां पड़कर जीवन निकल जायगा, पर अंतमें हाथ कुछ न आयगा। बल्कि यह आत्मा यों ही रीता दूसरी गतिमें जन्म लेगा, पर होता है संसारमें पुण्य पापका ऐसा फल जिसे यहाँ दर्शाया जा रहा है। है क्या यह लोकमें सब कुछ इसका यथार्थ भान किए बिना इससे उपेक्षा कहां जगेगी, वैराग्य कैसे होगा? अपने ज्ञानके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निकट आना कैसे बनेगा, इसलिए इस समस्त सांसारिक व्यवस्थाका तथ्य कहा जा रहा है।

ध्वजचामरछत्राङ्कैर्विमानैर्वनितासखाः ।
संचरन्ति सुरासारैः सेव्यमानाः सुरेश्वराः ॥१७६७॥

छत्र चमर आदिसे सुरेश्वर भवन आदिकी शोभा—उन स्वर्गोंके अधिपति इन्द्र ध्वजा, चमर, छत्रोंसे चिन्हित हुए विमानोंके द्वारा अनेक देवांगनाओं सहित यत्र तत्र विचरते हैं तो उनकी अनेक देव सेवा करते हैं। उन देवोंके शरीर वैक्रियक हैं, उनके भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदिककी कोई वेदना नहीं है, मगर अनेक देवोंके यह मानसिक दुःख अब भी लगा हुआ है। इन्द्रादिक देव जब वहाँ विचरते हैं तो छोटे देव उनकी सेवा करते हैं और वे सेवा करते हुए मानसिक दुःख प्राप्त करते रहते हैं। सो छोटे देव तो बड़ोंकी सेवा करके दुःखी रहते हैं और बड़े देव छोटे देवोंपर हुकूमत करके दुःखी रहते हैं। आप यह मत सोचें कि हुकूमत मानने वाला ही दुःखी रहता है। अरे जितना दुःख हुकूमत मानने वाला मानता है उससे अधिक दुःख हुकूमत करने वाला मानता है। तो वहाँ जब इन्द्र अपनी ध्वजा चमर छत्र आदिकसे सज्जित होकर बड़े वैभव सहित स्वर्गोंमें यत्र तत्र विचरते हैं तो अनेक देव उनकी सेवा करते हैं। उनकी जीहजूरीमें रहते हैं। अब बतलावो क्या सुख रहा? जैसे यहाँके धनी लोग जिन्हें खाने पीनेके लिए कुछ चिन्ता नहीं, पहिनने ओढ़नेकी कुछ चिन्ता नहीं, बहुत कुछ वैभव है। वे धनी किस बातसे दुःखी रहते हैं? कहीं अपमान महसूस कर लें, कहीं ठीक ठीक सम्मान न मिल पाये, कहीं अपनेसे अधिक दूसरेका धन बढ़ गया, यों कितने ही प्रकारके कष्ट बनाते हैं धनिक लोग भी, तो ऐसे ही समझिये कि उन स्वर्गोंमें भी देव यद्यपि क्षुधा तृषा ठंढ गर्मी शारीरिक रोग इन सब बातोंसे बचे हुए हैं, पर इनसे भी बड़ा दुःख मनका दुःख होता है। सो अनेक देव जब दूसरोंकी सेवायें करते हैं तो वे भी मानसिक दुःखोंसे दुःखी हैं और जो देव सेवा लेते हैं उनके भी विकल्प इस तरहके बनते हैं कि वे भी दुःखी रहते हैं। केवल एक कल्पनासे सुख मान लिया गया है।

यक्षकिन्नरनारीभिर्मन्दारवनवीथिषु ।
कान्तश्लिष्टाभिरानन्दं गीयन्ते त्रिदशेश्वराः ॥१७६८॥

स्वर्गलोकमें देवोंकी इन्द्रियसुखप्रियता—स्वर्गोंका जीवन एक विलासताका जीवन है। जैसे यहाँ मनुष्य जब किसी दुःखसे पीड़ित नहीं रहता, दरिद्रता, भूख, प्यास आदिके दुःख नहीं हैं, कोई शारीरिक रोग नहीं है तो उसका मन प्रायः करके विषयोंके सुख भोगनेके लिए ही चला करता है तो सुखमें रहकर जीवोंका मन एक मलिनताकी ओर बहता है, इसी प्रकार वे देव चूँकि शारीरिक बाधावोंसे दूर हैं तो उनका मन भी एक इन्द्रिय सुख लेनेके लिए चला करता है। उन स्वर्गोंमें इन्द्र सुन्दर सुन्दर स्थानोंमें मंदार वृक्षोंकी गलियोंमें जो दोनों ओर से

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

घने सुगंधित वृक्ष हैं, और भी रमणीक वातावरण हैं, यक्ष किन्नर सेवक देवांगनावों सहित वहाँ विहार करते हैं और वे देवांगनाएँ उस समयके आनन्दसे आनन्दित होकर बहुत राग रागनियोंसे पूरित गान करती हैं। देखो—मनुष्य भी तभी गाते हैं जब वे कुछ सुखमें हों। आपने देखा होगा कि बड़े बड़े पुरुष ऐसे गाते हुए नजर नहीं आते जितना कि छोटे लोग रिक्शा चलाने वाले, तांगा हांकने वाले, बोझा ढोने वाले लोग चलते फिरते श्रम करते गाते रहते हैं। उनका चित्त मौजमें रहता है, वे अपनी छोटी बुद्धिके माफिक, अपनी छोटी ममता के माफिक समागम पाकर तुष्ट हो जाते हैं और वे गान करते रहते हैं। तो गाना गाना एक मौज बिना नहीं होता है। तो जब इतना बड़ा मौज, इतने बड़े वैभव सहित, इन्द्रके सहित जा रही हों देवांगनाएँ तो वे देवांगनाएँ बहुत ही सुन्दर राग रससे पूरित गान करती हैं। गाने भी अनेक कलावोंसे सहित होते हैं। जब यहाँके मनुष्य ही बहुत शास्त्रीय ढंगसे गान करते हैं, तो कितनी ही पद्धतियों और कलावोंसे पूरित वह वातावरण बन जाता है। एक बहुत बड़ी बुद्धिमानी जंचती है, लोग उनकी चतुराइयोंपर प्रसन्न हुआ करते हैं, तब उन देवों के नृत्य गानका तो कहना ही क्या है, उनमें तो स्वभावसे ऐसी कला पायी जाती है इसलिए पुण्य फलमें विभोर होकर वहाँ देवांगनायें नाना प्रकारसे नृत्य गान करती हैं। यह स्वर्गोंका ठाठबाट इस प्रकरणमें दिखाया जा रहा है। ज्ञानी जीव उसे एक बन्धनका फल मानता है। जैसे दुःखमयी वातावरण मिलना जीवका बन्धन है ऐसे ही इन सांसारिक सुखोंका समागम मिलना यह भी जीवका बन्धन है। पुण्य और पाप दोनोंके फलको ज्ञानी जीव बन्धन समझता है, पर पुण्यमें ऐसा हुआ करता है उसका प्रदर्शन किया जा रहा है, और जो जीव धर्मकी ओर उन्मुख होते हैं उनको वैसे ही पुण्यका बंध होता है। जो यहाँ बड़े-बड़े महर्षि हुए हैं पंचम कालमें भी उनका श्रद्धान ज्ञान और चारित्र पवित्र था, फिर भी रागभाव तो होता ही है। चाहे वह तपश्चरणका अनुराग हो, चाहे संसारके प्राणियोंके उद्धारका अनुराग हो, चाहे ग्रन्थ रचनाका अनुराग हो तो उसके कारण उन्होंने बड़ा पुण्यबंध किया और उसके फलमें वे करीब करीब स्वर्गमें ही उत्पन्न हुए होंगे, तो स्वर्गोंमें भी वे महर्षि क्या कर रहे होंगे ? वे बड़े ऋद्धिधारी देव बनकर ऐसे ही वातावरणमें होंगे लेकिन उनका सम्यग्ज्ञान जागृत होगा तो वे वहाँ भी निर्लेप रहते हैं, उन विषयोंमें आसक्त नहीं होते हैं, ज्ञानी जीवकी ऐसी ही विशेषता है। नरकोंमें अनेक प्रकारके दुःख भोगकर भी जैसे उन दुःखोंसे अछूते रहते हैं, अपनी श्रद्धा और उपयोगमें ऐसे ही पुण्यके फलमें देव होते हैं तो वहाँ भी अनेक प्रकारके सुखोंके बीच भी उन सुखोंसे वे अछूते रहते हैं।

क्रीडागिरिनिकुञ्जेषु पुष्पशय्यागृहेषु वा ।
रमन्ते त्रिदशा यत्र वरस्त्रीवृन्दवेष्टिताः ॥१७६९॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देवोंका स्वच्छन्द क्रीडन, रमण—उन स्वर्गोंके देव क्रीड़ाके स्थान जिनमें बने हुए हैं ऐसी गुफावोंमें, कंदरावोंमें जिनके द्वारोंपर तथा जिनके भीतर भी पुष्पलता आदिककी बड़ी सुगंध रहती है वहां वे देव अनेक देवांगनावों सहित नाना प्रकारकी आनन्दमयी क्रीड़ा करते हैं। विषय सुखोंमें सागरों पर्यन्तकी आयु भी नहीं जानी जाती है। यहाँ जो पुरुष जीवनभर सुखपूर्वक रहे वे सोचते हैं—अहो! हमारे जीवनके ये ६० वर्ष कैसे निकल गए? पर जब दुःख आता है तो एक घंटा भी दिन और महीना जैसा लगता है, मुश्किलसे व्यतीत होता है। बराबर घड़ीको निरखना पड़ता है, अरे वह समय काटा नहीं कटता है। लेकिन सुखमें ऐसा समय व्यतीत हो जाता है कि जाना नहीं जाता। देवोंकी आयु नारकियोंकी तरह सागर पर्यन्त होती है पर नारकी सदा दुःख भोगते रहते हैं और देव सदा सुखी रहते हैं। नारकियों का वह सागरों पर्यन्तका समय काटा नहीं कटता है पर देवोंका वह सागरोंपर्यन्तका समय उन्हें पता नहीं पड़ता कि कैसे निकल जाता है? अन्तमें जब उनकी आयुका पतन होता है तो उन्हें मध्यलोकमें जन्म लेना पड़ता है, तो वे सभी देव विषय सुखोंमें अपना समय व्यतीत करते हैं। उन्हें काम क्या है? जैसे यहाँ ही कोई मनुष्य बड़े आराममें रह रहा हो, सभी काम नौकर लोग करते हों, उसे किसी बातकी फिकर नहीं है तो वह अपने उपयोग को प्रायः करके विषयसुखोंमें लगाता है ऐसे ही वे देव भी प्रायः करके अपने उपयोगको विषय सुखोंमें लगाते हैं। जैसे यहां पर बिरले ही ज्ञानी जीव ऐसे होते हैं कि जो धर्मचर्चामें, तीर्थयात्रामें, तीर्थंकरोंकी वंदनामें और सधर्मीजनोंके उपद्रवोंके दूर करनेमें अपना कुछ समय व्यतीत करते हैं, बाकी तो सभी विषयसुखोंमें अपने उपयोगको लगाते हैं, ऐसे ही बिरले ही कुछ देवोंको छोड़ कर बाकी सभी देव वहां अच्छी-अच्छी जगह ढूँढ़ते हैं और अपने मन माफिक वहां अपना मौज मानते हैं, यह पुण्यफल उन स्वर्गोंमें हुआ करता है।

मन्दारचम्पकाशोकमालतीरेणुरञ्जिताः।
भ्रमन्ति यत्र गन्धाढ्या गन्धवाहाः शनैः शनैः ॥१७७०॥

स्वर्गलोकमें सुगंधित मन्द समीरसंचरण—उन स्वर्गोंमें मंदार, चम्पक, अशोक, मालती आदि पुष्पों की रजसे रंजित भ्रमर विहार करते हैं। यह एक अलंकार रूपसे कहा जा रहा है और उन सुगंधित पुष्पोंसे छू छूकर बड़ी शीतल पवन चला करती है। मनुष्य जैसे जब मौजमें होता है तो कुछ बेकार विषयोंकी रुचि करता है, जैसे भोजन करना, क्षुधा मेटना, ये कुछ काम वाले विषय हैं। विषय तो नहीं कहते मगर उनमें भी यदि रसास्वादन की भावना है, वासना है तो वे भी बेकार हैं, लेकिन जैसे खाना पीना अति आवश्यक है ऐसे ही अन्य बातें तो आवश्यक नहीं हैं। जैसे अनेक सुन्दर स्थान सुन्दर रूप निरखना यह क्या आवश्यक है इस शरीरके लिए? लेकिन जब मौजमें होता है यह मनुष्य तब उसकी ये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लिप्सायें बढ़ती हैं। अब चलो सुन्दर गाना सुनना है, अब चलो कोई सुन्दर रूप निरखना है, सुगंधित तैल लगाना है, सुगंधित जगह पर जाकर मन बहलाना है। तो ये लिप्सायें मौजमें बढ़ती हैं। पर जैसे बिना बाधाके, बिना किसी वेदनाके कोई औषधिका सेवन नहीं करता इसी प्रकार बिना मनमें वेदना हुए इन विषयोंका कौन सेवन करता? तो ये विषय सुखोंकी चीजें मानव मात्रको प्राप्त हैं। पुण्यके जो विशेष फल हैं उन्हें यहाँ बताया जा रहा है कि स्वर्गोंके ये फल जगह-जगह पाये जाते हैं। अशोक, माल्ती, चम्पक, मंदार आदिक वृक्ष हैं तथा नाना प्रकारकी लतावों वाले सुगंधित वृक्षोंसे वह स्थान सुशोभित है और वहां सुगंधित वायु निरन्तर बहा करती है जो मनको प्रसन्न करने वाली है। वहां वे देव बड़ा मौज मानते हैं। देखो इस मनुष्यलोकके थोड़ेसे दुःखोंसे घबड़ाकर यदि अपने न्यायसे गिर जाय और थोड़ेसे सुखोंके लिए अपने विचारोंको पतित कर दे तो समझिये कि ऐसे बड़े स्वर्गोंके सुखोंसे वह वंचित हो जाता है। और कोई इन सुखोंमें न ललचाये और दुःखोंसे न घबड़ाये, अपने मनका संतुलन रखे तो ऐसे पुण्यका बंध होता है कि उसे सागरों पर्यन्त ऐसे ऐसे सुख प्राप्त होते हैं। यह पुण्यफलका वर्णन चल रहा है।

लीलावनविहारैश्च पुण्यावचयकोतुकैः।
जलक्रीडादिविज्ञानैर्विलासास्तत्र योषिताम् ॥१७७१॥

स्वर्गलोकमें विविध विलास—उन स्वर्गोंमें देवांगनाओंका विलास बड़ी चतुराईसे भरपूर है। क्रीड़ा बनके बिहारोंसे तथा पुष्पोंके चुननेके कौतुकसे तथा जलक्रीड़ाके विज्ञानोंसे बड़ी शोभा है। क्या करें वे देव? उन देवोंका शरीर वैक्रियक है, नाना बाधावोंसे विमुक्त है सो वे अपने चित्तको ऐसे ही बहलाते हैं। जैसे कोई बेकार हो तो उसका मन नहीं लगता, वह यहाँ वहाँ डोलता फिरता है, इसी प्रकार वे देव अपने चित्तको बहलानेके लिए यत्र तत्र विहार करते हैं। अगर उनके चित्तमें तृप्ति होती तो फिर जिस स्थानमें वे एक बार दो बार विहार कर चुके हैं उन्हें बार-बार वहाँ विहार करनेकी क्या आवश्यकता है? वे अगर तृप्त होते तो क्यों वहाँ बार-बार विहार करते? वे प्रायः दुःखी रहा करते हैं। आनन्द तो वास्तवमें विषयातीत आत्मानुभवसे ही प्राप्त होता है, और तो ये सब पञ्चेन्द्रियके विषय सुख आत्माके प्रतिकार हैं। इन पञ्चेन्द्रियके विषय सुखोंमें तो वेदनाएँ ही बसी हुई हैं। ये सब पञ्चेन्द्रिय के विषय विडम्बनारूप हैं जिनको लोग बड़े महत्त्वकी दृष्टिसे देखते हैं। जब तक शुद्धोपयोग नहीं होता है शुभोपयोग साथ चल रहा है। ज्ञानी भी पुरुष हो, शुद्ध अनुभवी पुरुष भी हो लेकिन शुभोपयोग जब चलता रहता है तब उसके फलमें मिलेगा क्या? स्वर्ग ही तो मिलेगा। तो ज्ञानी तो उसे विपदा समझता है, यह भी भोगना पड़ता है। उस ज्ञानीकी दृष्टि तो सर्व कर्मोंसे विमुक्त एक आत्मस्वभावकी ओर रहती है, कुछ विकासकी ओर रहती है, सांसारिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सुखोंके लिए उस ज्ञानीकी दृष्टि नहीं जगती है । लेकिन पुण्यका फल क्या है यह तो प्राप्त होता ही है । ज्ञानी हो तो, मिथ्यादृष्टि हो तो, जिसने भी मंद कषाय किया उसका फल उसे प्राप्त होता है । स्वर्गोंमें इस प्रकारके देव विहार अनेक कौतुक और अनेक तरहकी जलक्रीड़ायें—इन सबमें उनकी बड़ी चतुराई है और बड़ी चतुराईके साथ वे इन सांसारिक सुखोंका भोग किया करते हैं ।

वीणामादाय रत्यन्ते कलं गायन्ति योषितः ।
ध्वनन्ति मुरजां धीरं दिवि देवाङ्गनाहताः ॥१७७२॥

स्वर्गलोकमें भोग, उपभोग, संगीत आदिकी प्रचुरता—वहाँ स्वर्गोंमें वे देव देवियां मनचाहे भोग भोगा करते हैं और उनसे निपटनेके पश्चात् वे अपने गानतानमें रत हो जाते हैं । जैसे यहाँ भी धनी पुरुष और करते क्या हैं सिवाय एक श्रृंगार विलास गान तानके साधनके । ऐसे ही इन श्रृंगार विलास गान तानोंमें ही वे देव देवियां भी अपना समय बिताते हैं । जैसे यहाँ धनिकोंमें बिरले ही पुरुष ऐसे होते हैं जो कि परोपकार करनेकी बात सोचा करते हों, प्रायः सभी लोग इन विषयसुखोंमें ही रत होकर अपना समय बिताते हैं, इसी तरह बिरले ही देव ऐसे ज्ञानवान होते हैं जो कि इन भोगसाधनोंके बीच रहते हुए भी भोगसाधनों से अलिप्त रहा करते हैं । तो उन स्वर्गोंमें वे देवांगनाएँ संभोगके बाद वीणा लेकर सुन्दर गान करती हैं, और मृदंग आदिक अनेक तरहके साधन वहाँ हैं उनको बजाती हैं, गाती हैं और नृत्य करती हैं । यों वे देव देवांगनाएँ विभोर रहा करते हैं । आत्माकी सुध आये ऐसा अवकाश बहुत कम है । देखो जहाँ क्लेश है वहाँ जीवके उद्धारका मौका भी है, और जहाँ क्लेश नहीं है, भोग भोग ही रहते हैं वहाँ उद्धारका अवसर नहीं मिलता । जिन स्वर्गोंमें इष्टवियोग अनिष्ट संयोग, भूख प्यास, क्षुधा, तृषा एवं शारीरिक रोग आदिकी कोई वेदना ही नहीं है तो वहाँ आत्महित करनेका अवसर नहीं प्राप्त होता है । पुण्यके फलको पाकर तो वे देव उसी पुण्यफलमें रत होकर अपने आत्महितकी बातको भूल जाते हैं । एक यह मनुष्यभव ही ऐसा है कि जहाँसे यह जीव सच्चा ज्ञान बनाकर सर्व परकी उपेक्षा करके अपना उद्धार कर सकने में समर्थ होता है ।

कोकिलाः कल्पवृक्षेषु चैत्यागारेषु योषितः ।
विबोधयन्ति देवेशांल्ललितैर्गीतनिःस्वनैः ॥१७७३॥

स्वर्गलोकमें भवन चैत्यालय उद्यान आदिमें गीतोंकी झनकार—उन स्वर्गोंमें कल्पवृक्षोंपर तो कोकिलायें सुन्दर शब्दोंसे इन्द्रको प्रसन्न करती हैं और चैत्यालयोंमें देवांगनायें सुन्दर गीतोंसे इन्द्रोंको आनन्द प्रदान करती हैं । भवनमें रहें, बनमें जायें, चैत्यालयमें जायें, जहाँ भी इन्द्र और ये देव पहुंचते हैं वहाँ ही चित्तको हरने वाले सुन्दर गीतोंके शब्द सुनाई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देते हैं। स्वर्गोंमें प्रत्येक बातें देखनेकी, सुनने की, सूंघनेकी सभी पुण्यके फल रूप हैं और आनन्द वैषयिक मौज प्रदान करती हैं, लेकिन इनमें रमने वाले अज्ञानी देव होते हैं। ज्ञानी देव ऐसे समागमोंमें रहकर भी उसमें उपेक्षाभाव रखते हैं। वे जानते हैं कि यह सब पुण्यफल है, औपाधिक चीजें हैं, बाह्य वस्तुवें हैं, इन सबसे मेरे आत्माका कोई सुधार नहीं है। मैं आत्मा सबसे निराला केवल ज्ञानानन्द स्वरूप हूं, ये सब जड़ पदार्थ हैं। जड़से अथवा किसी अन्य आत्मासे मेरेमें कोई परिणति नहीं होती। मैं ही खुद अपनी ही कलासे परिणमता रहता हूं, औपाधिक परिणामोंमें परपदार्थ अवश्य निमित्त होते हैं ऐसा ज्ञानी देवोंका सदा जागरण रहता है और वे ऐसे पुण्यफलोंमें आसक्त नहीं होते और अपनी सुध बराबर बनाये रहते हैं।

नित्योत्सवयुतं रम्यं सर्वाभ्युदयमन्दिरम्।
सुखसंपद्गुणाधारं कैः स्वर्गमुपमीयते ॥१७७४॥

स्वर्गलोककी नित्यसमारोहसम्पन्नता—उस स्वर्गकी किससे उपमा दी जाय जो स्वर्ग नित्य ही उत्सवों सहित है। रोज-रोज नये नये उत्सव समारोह होते रहते हैं। जहाँ कभी किसी प्रकारका विशाद और शोकका काम नहीं है, इष्टवियोग नहीं है। कोई इष्टदेव गुजरे तो वहीं कुछ ही समय बाद दूसरा देव उत्पन्न हो जाता है। कोई देवांगना अगर गुजर गयी तो दूसरी देवांगना उसी जगह झट उत्पन्न हो जाती है। वहां बुढ़ापा तो आता नहीं, सदा जवानी रहती है। वहां शारीरिक रोग तो होते नहीं, कष्टदायी रंच भी बात नहीं आती है, फिर भी वहांके देव अपनी कल्पनासे मानसिक दुःख बनाये रहते हैं। दूसरोंका वैभव देखकर चित्तमें कुढ़ा करते हैं, मेरे इतना वैभव क्यों न हुआ ? इसके पास तो इतना सब कुछ है आदि। वह स्वर्ग इतना रमणीक है कि समस्त अभ्युदयोंके भोगोंका निवास है। योग और उपभोगकी सामग्री वहां विशेषतया पायी जाती है, सुख सम्पत्ति और गुणोंका आधार है, इस कारणसे उस स्वर्गकी उपमा किसी भी स्थलसे नहीं दी जा सकती है। यहां कोई भी ऐसा स्थल नहीं जिससे स्वर्गकी उपमा दी जाय। उन देवोंका एक शारीरिक ढाँचा ही सुख देने वाला है। वैक्रियक शरीर है, घृणाकी कोई चीज नहीं है। हड्डी रुधिर मल मूत्र ये जहां नहीं पाये जाते हैं, उनका देह ही इस प्रकारका सुन्दर वैक्रियक है तो वहाँ अन्यकी सुन्दरताका तो कहना ही क्या है ? वह स्वर्ग निरुपम है, ऐसा वैषयिक सुख अन्यत्र अलभ्य है। ऐसे पुण्यफल स्वर्गमें पाये जाते हैं। इस तरह संस्थानविचय धर्मध्यान वाला ज्ञानी पुरुष चिन्तन कर रहा है और साथ ही साथ यह भी जान रहा है कि शुभोपयोगके भावोंसे अर्थात् दया दान आदिक शुभभावोंके होनेसे ऐसे भोग साधन प्राप्त होते हैं।

पञ्चवर्णमहारत्ननिर्माणाः सप्तभूमिकाः।
प्रासादाः पुष्करिण्यश्च चन्द्रशाला वनान्तरे ॥१७७५॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वर्गलोकमें मणिमय प्रसाद सरस्तीर आदिकी शोभा––उन स्वर्गोंके बागोंमें ५ वर्णों के रत्नोंसे बने हुए ७-७ खण्डके महल हैं और वाटिका तथा चन्द्रशालायें अर्थात् प्रासादोंके ऊपर जो कुछ महल जैसी रचनायें होती हैं वे सब वहाँ उत्तम रमणीक और शोभनीय हैं। ये सब अकृत्रिम रचनायें हैं। पृथ्वीका ही उस प्रकारका रूप है जो बड़े बड़े प्रासाद ऊँचे ऊँचे खण्डोंके अनेक खण्ड पाये जाते हैं। वह एक प्राकृतिक रचना है और फिर कल्पवृक्ष भी अनेक ऐसे हैं कि मनचाहे प्रासादोंको प्रदान करने वाले हैं। वहाँ क्या कैसी रचना है, कैसे सुखके साधन मिलते हैं ? वे सब अपनी कल्पनासे बाहरकी बातें हैं। पुण्यफल हैं। जब पुण्यका उदय होता है तो कैसे कैसे सुख साधन कहाँसे प्राप्त हो जाते हैं, उनका कौन ओर-छोर जानता है ऐसे ही जब पापका उदय आता है तो कब कहाँसे किस तरह क्या संकट आ पड़ता है, इसे भी कौन जानता है ? यह संसार बड़ा विषम है। जैसे सुख दुःखके चक्र इस संसारमें चल रहे हैं ऐसे ही ये पुण्य पापके चक्र इस संसारमें बराबर चलते रहते हैं। ज्ञानी पुरुष इस संसारकी मनमोहक चीजोंको निरखकर उनमें रति नहीं करते बल्कि वे उससे बचनेका ही यत्न रखते हैं और जो विशिष्ट ज्ञानी हैं, विरक्त पुरुष हैं वे ऐसे परिग्रहोंको त्यागकर अपने स्वरूपके ध्यानमें मग्न रहा करते हैं। उन देवोंमें ये वैषयिक सुख हैं मगर आत्मीय सुखमें प्रगति कर सकें ऐसा उनमें कोई साधन ही नहीं है। इसी कारण ज्ञानी देव इन्द्रादिक होते हैं वे ऐसे प्रसंगोंमें जहां महापुरुष कर्मोंको काटकर निर्वाण प्राप्त करते हैं उन प्रसंगोंमें वे अपने आपके भवपर बड़ा पछतावा करते हैं कि हाय मेरा क्या भव है जिस भवमें संयम भी धारण नहीं किया जा सकता है ! ऐसे सुखोंकी ठाठ हो तो उससे लाभ क्या ? यही बात इन मनुष्योंको भी विचारना चाहिए। अगर सुखके साधन मिल गए, कुछ अधिक धन वैभव बढ़ गया, कुछ ढंग के महल बन गए तो इससे इस आत्माको लाभ क्या मिला ? यह तो कुछ दिन यहांका निवासी है। पीछे तो इसे सब कुछ छोड़कर जाना ही होगा। उन स्वर्गोंमें नाना रत्नों जड़ित, नाना वर्णोंसे चित्रित अनेक खण्ड वाले प्रासाद हैं और उनकी रचनाएँ भी अपूर्व सुन्दरताको पोषने वाली हैं।

प्राकारपरिखावप्रगोपुरोत्तुङ्गतोरणैः।
चैत्यद्रुमसुरागारैर्नगर्यो रत्नराजिताः ॥१७७६॥

स्वर्गलोकमें उत्तम भवन, चैत्यालय आदिकी रचनायें––उन स्वर्गोंमें नगरियोंकी भी रचनायें हैं, जहाँ देव लोग कुछ निकट निकट रहा करते हैं वही वहाँकी नगरी है। उनमें कोट, खाई बड़े दरवाजे आदिक जो जो कुछ नगरीकी शोभाकी चीजें हैं वे सब रत्नमयी शोभाको दे रही हैं। अपने महलके आरामके साधनोंके अतिरिक्त वहाँ चैत्य वृक्ष और देवोंके मंदिर भी प्रायः भवनोंके साथ लगे हुए हैं। जीवकी शोभा धर्मके लगावसे बढ़ती है। कोई मनुष्य हो,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धर्मका उसका कोई लगाव न हो, अन्दरमें भी लगाव नहीं, विषय कषायोंका रुचिया है, दूसरे जीवोंको कुछ गिनता नहीं है, अपने ही स्वार्थकी साधनामें जुटा रहता है ऐसा मनुष्य लोगोंको प्रिय नहीं है और स्वयंका जीवन उसका भाररूप है। जिसका जीवन धर्मकी लगनसे युक्त है, समयपर लगन करता है, भगवद्भक्ति करता है, आत्मचिन्तन करता है तो उसके शेष समयकी कुछ प्रवृत्तियोंसे जो विषाद उत्पन्न होता है वह सब नष्ट हो जाता है। बहुत बहुत भूलकर भी एक घंटा दो घंटा कोई आत्माकी सुधके लिए, चर्चाके लिए समय लगाया जाय तो बहुतसी भूल भटकनायें दूर हो जाती हैं और एक शान्तिका मार्ग मिलता है। तो स्वर्गोंमें भी भवनोंके साथ-साथ चैत्यवृक्ष और देवोंके मंदिर रत्नमयी मौजूद हैं, जहाँ समय-समयपर देव लोग जाकर जिनेन्द्र भक्ति करते हैं और अपने आत्माकी कुछ सुधि लेते हैं। वहाँपर भी एक धर्मका प्रसंग रहता है। जैसे यहाँ लोग शास्त्रसभा करते हैं ऐसे ही स्वर्गमें भी सौधर्मइन्द्र शास्त्रसभा करते हैं। मध्यलोकमें कोई धर्मात्मा पुरुष हो तो उसकी वे सौधर्मइन्द्र प्रशंसा करते हैं। कितने ही देवतावोंको यह जिज्ञासा हो जाती कि चलो उस साधर्मी व्यक्तिके पास चलकर उसका परीक्षण करें। सो वे देव उस साधर्मी व्यक्तिका परीक्षण करने आते हैं जिसकी प्रशंसा सौधर्म इन्द्रने की थी। तो वहाँ धर्मका साधन भी है, यह तो ठीक है क्योंकि पुण्यका एक विशेष फल है, ज्ञानी देव वहाँपर भी धर्मकी चर्चा किया करते हैं।

इन्द्रायुधश्रियं धत्ते यत्र नित्यं नभस्तलम्।
हर्म्याग्रलग्नमाणिक्यमयूखैः कर्बुरीकृतम् ॥१७७॥

स्वर्गलोकमें नभस्तलकी मनोहारिता—स्वर्गोंमें आकाश महलके अग्रभागमें लगे हुए रत्नोंकी किरणोंसे जो वहाँ एक विचित्र वर्ण वाला वातावरण बनता है उससे एक इन्द्रधनुष जैसी नित्य शोभा रहती है। यहाँ ही अनेक ऐसी चित्रण और कलापूर्ण कारीगरी होती है कि जहाँ नाना प्रकारकी शोभायें होने लगती हैं। तो वहाँ स्वर्गोंमें तो बहुत ऊंचे ऊंचे प्राकृतिक महल है और उनमें बहुतसे मणि अपने आप अनादिसे ऐसे लगे होते हैं कि उनसे बहुत विचित्र शोभा होती है। ये सब पुण्यके ही फल हैं कि शोभायुक्त महलोंमें रहना, बड़े ऊंचे प्रासादोंमें रहना और जहाँ समागम भी बहुत पुण्यवानोंका मिले, जहाँ वातावरण भी कुछ शान्तिका और सुखका मिले ऐसे स्थान पुण्यसे प्राप्त होते हैं। तो स्वर्गोंमें ये ही पुण्यके बहुत से साधन जुटे रहते हैं। रहते हैं वहां देव, पर ज्ञानी देवोंका अपने आत्माकी ओर ध्यान रहता है। वे स्थिर नहीं हो पाते, उनमें वीतरागता नहीं जग पाती, इस ही प्रकार कर्मोंका उदय है लेकिन सम्यग्दर्शनका प्रताप सर्वत्र फलित है। जैसे नरकोंमें नारकी जीव सम्यक्त्वके प्रतापसे वेदना नहीं सहते इसी प्रकार इन्द्रादिक इन विषय सुखोंमें आत्मीयताका अनुभव नहीं करते। यही आत्मरक्षा है कि बाह्यमें दृष्टि न फंसे, यथार्थ मार्ग सत्य बना रहे, यही अपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आपकी रक्षा है।

सप्तभिस्त्रिदशानीकैर्विमानैरङ्गनान्वितैः।
कल्पद्रुमगिरीन्द्रेषु रमन्ते विबुधेश्वराः ॥१७७८॥

स्वर्गलोकमें देवेश्वरोंकी महती शोभा—स्वर्गोंमें इन्द्र ७ प्रकारकी देव सेनावोंसे सहित होकर क्रीड़ा बनोंमें आनन्द करते हैं। यद्यपि स्वर्गोंके देव और इन्द्रोंको किसी प्रकारके रक्षा के साधनोंकी जरूरत नहीं है क्योंकि उनकी असमयमें मृत्यु नहीं होती। फिर भी पुण्यका फल तो फलित होता ही है। शोभारूपमें वैभवरूपमें इन्द्रके साथ ७ प्रकारकी देवसेना रहती है। उन देव सेनाओंसे सहित और देवांगनावोंसे युक्त वे विहार करते हैं, कल्पवृक्षोंमें और क्रीड़ा-बनोंमें यथेष्ट रमण करते हैं। ऐसा सुख भोगते हुएमें सागरों पर्यन्तकी आयु उन्हें पता नहीं पड़ती कि कैसे व्यतीत हो जाती है? देवतावोंमें यदि कोई दुःखकी बात आती है तो केवल उस प्रसंगमें आती है कि जब उनका मरणकाल निकट होता है। देवोंके मरणसे ६ महीना पहिले उनके शरीरके बने हुए जो एक मालाके रूप अंग हैं वे मुर्झा जाते हैं और उस मालाके मुर्झा जानेसे वे यह निश्चय करते हैं कि हमारी मृत्युका अब समय आया है। जैसे यहाँके मनुष्योंको कोई यदि बता दे कि तुम्हारा मरण दो चार महीनेमें होने वाला है तो उसकी बड़ी दुर्दशा हो जाती है, ऐसे ही जिन देवोंको यह विदित हो गया कि अब मेरा मरण काल निकट है तो मरणका समय निकट जाननेपर ये देव बड़ा संक्लेश करते हैं। तो दुःखकी बात उन स्वर्गोंमें एक यही है कि मरण काल निकट आनेपर चार-छः महीना पहिलेसे वे बड़ा संक्लेश मानते हैं, बाकी और समयमें वे यथेष्ट आनन्द भोगते हैं। संस्थानविचय धर्मध्यानमें ज्ञानी पुरुष लोकरचनाका विचार कर रहा है और पुण्यफलके रूपमें स्वर्गोंकी रचनाका चिन्तन कर रहा है। तो जैसे पापफलको यह ज्ञानी जीव एक औपाधिक चीज समझता है इसी प्रकार पुण्यफलको यह ज्ञानी जीव एक औपाधिक चीज समझता है। तो वहाँ इन्द्र ७ प्रकारकी सेना सहित वनोंमें और यत्र तत्र विहार करते हैं। वह सेना समुदाय केवल उनके एक वैभवके लिए है। कोई उनके रक्षाके प्रसंगकी बात नहीं है। वे ७ सेनाएँ कौन कौन हैं, उसे बता रहे हैं।

हस्त्यश्वरथपादातवृषगन्धर्वनर्तकि।
सप्तानीकानि सन्त्यस्य प्रत्येकं च महत्तरम् ॥१७७९॥

स्वर्गलोकमें देवेन्द्रकी सप्तसेनाका प्रतिपादन—सेना मायने समूह। पहिली सेना है हस्ती। हाथीके समूह अथवा हाथी और हाथीके चलाने वाले देव। इनके समूहका नाम हस्ती सेना है। ये हस्ती तिर्यञ्च जातिके नहीं हैं। स्वर्गोंमें तो देव हैं और स्थावर जीव हैं, और की सम्भावना नहीं है, जैसे कि नरकमें भी नारकी हैं और स्थावर जीव हैं। नरकमें तो देव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी विहार कर जाते हैं और स्वर्गोंमें तो नारकियोंका विहार हो नहीं पाता, वहाँ तो देव मिलेंगे व स्थावर जीव मिलेंगे। तो यह देवोंकी ही ऐसी विक्रिया है कि वे अपना हाथीका रूप रख लेते हैं। जैसे यहाँपर हाथी सेना अलग होती है इसी प्रकार वे भी अपनी हाथी सेना के रूपमें अपना कर्मफल भोगते हैं। दूसरी सेना है घोड़ोंकी सेना, तीसरी है रथसेना। ये देव अपनी जिन्दगीभर बेकार ही तो हैं। न कोई रोजिगार करना पड़े, न कोई दूकान करना पड़े, न कोई काम करना पड़े। उनका जब सारा समय बेकार है तो बैठे बैठे वे करें क्या ? उनका कर्मफल इसी तरहसे अनुभवमें होता है। चौथी सेना है पयादेकी सेना। जैसे यहाँ शस्त्र सज्जित सिपाही होते हैं इसी तरह शस्त्र सज्जित देव होते हैं वह है, पयादेकी सेना। ५वीं सेना है वृषभसेना। जैसे यहांके मनुष्य भी तो जान जानकर इच्छा कर करके कभी शेरका, कभी रीछका व कभी किसी चीजका चित्रण बनाते हैं, कभी तो अपनी इच्छासे बनते हैं और कभी किसी दूसरेकी आज्ञासे बनते हैं इसी प्रकार वे देव भी विक्रियासे कभी अपनी इच्छासे व कभी किसी दूसरेकी आज्ञासे कभी कुछ बनते हैं, कभी कुछ बनते हैं। देखो किसीको सभी सुख नहीं मिलते। कुछ न कुछ दुःखकी बात भी रहती है। उन देवोंको सभी सुख मिले, पर साथ ही साथ दुःखकी भी कुछ बातें हैं। स्वरूपदृष्टिसे देखो तो सुख तो तब माना जाय जब कि जिस चीजकी इच्छा हुई वह चीज तुरन्त प्राप्त हो जाय, मगर ऐसा कभी भी नहीं हो सकता कि जिस काल इच्छा हुई उसी काल उस इच्छाकी पूर्ति हो जाय। एक तो यह बात है कि जब किसी चीजकी इच्छा होती है तो वह चीज नहीं प्राप्त होती, और जब वह चीज मौजूद है तब उस चीजकी इच्छा नहीं होती। तो इच्छाके समय चीज नहीं और चीजके समयमें उस प्रकारकी इच्छा नहीं, तो सुख क्या ? जब बहुत बढ़िया भोजनकी चीजें भी सामने रखी हों तो उसके भी भीतर अनेक इच्छाएँ जगती रहती हैं। अब अमुक चीज खाना है, अब अमुक चीज खाना है ? तो जिस समय इच्छा की उस समय वह चीज मुंहमें नहीं है। तो सूक्ष्मदृष्टिसे जिस जातिकी इच्छा है उस जातिका साधन नहीं है और साधन है तो इच्छा नहीं, इसलिए सुख कहीं है नहीं, फिर भी अपना कल्पनासे अपने ढंगसे जीव सुख मानता है। तो स्वर्गोंमें बताया है कि सुखके साधन बहुत हैं। छठी सेना है गंधर्व सेना। जैसे यहाँ भी बाजे रहते हैं सेनामें भी, जिन बाजोंके शब्दोंको सुनकर लोगोंका जोश बढ़े, इसी प्रकार यह गन्धर्व सेना तो अपना आनन्द पानेके लिए भी वहाँ बनी हुई है। तो ये देवता लोग इन्द्रको प्रसन्न किया करते हैं। क्यों प्रसन्न किया करते हैं ? कुछ यद्यपि ऐसी अटक उनके खास नहीं है कि ये देव इन्द्रको प्रसन्न करें, पर उनका कुछ कर्मफल ही ऐसा है कि वे स्वतंत्र भी नहीं रह सकते, वे उस इन्द्रको खुश करके ही खुश रहते हैं। तो वे देव देवियां नाना प्रकारके गीत गा गाकर इन्द्रको प्रसन्न किया करते हैं। ७वीं सेना है नर्तकी सेना। नृत्यकलामें प्रवीण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देवांगनाएँ होती हैं। वे इस बातमें अपनी चतुराई और अपना भाग्य समझती हैं कि मेरी चेष्टा देखकर यह इन्द्र प्रसन्न हो जाय। जैसे यहाँ अनेक लोग इस ही प्रयत्नमें रहा करते हैं कि लोग मुझपर खुश हो जायें। चाहे कोई चीज न चाहें। बड़े बड़े लोग भी ऐसा चाहते हैं कि नगरके लोग सब मुझसे खुश हो जायें, तो कर्मफल इस ही रूपमें वहाँ प्रकट होता है कि वे सभी देव देवियां इन्द्रको प्रसन्न करनेकी मनमें चाह रखते हैं। इन्द्र प्रसन्न हो जाय तो उसमें वे अपना भाग्य समझते हैं। तो यह ७ प्रकारकी सेना होती हैं। ये सभी सेनायें एकसे एक बढ़कर हैं।

शृङ्गारसारसम्पूर्णा लावण्यवनदीर्घिकाः।
पीतस्तनभराक्रान्ताः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ॥ ॥१७८०॥
विनीताः कामरूपिण्यो महर्द्धिमहिमान्विताः।
हावभावविलासाढ्या नितम्बभरमन्थराः ॥१७८१॥
मन्ये शृङ्गारसर्वस्वमेकीकृत्य विनिर्मिताः।
स्वर्गवासविलासिन्यः सन्ति मूर्ता इव श्रियः ॥१७८२॥

स्वर्गोंमें देवोंकी देवियोंकी शोभाका चित्रण—उन स्वर्गोंमें देवोंकी, इन्द्रोंकी वे देवांगनायें कैसी हैं, उनका वर्णन इन तीन श्लोकोंमें है। वे देवांगनायें मानो शृङ्गारका सार हैं। स्वयं ऐसी रूपवान होतीं हैं कि स्वयं ही उनका रूप शृङ्गार है और सुन्दरता रूप जलकी बावड़ी हैं। जैसे बावड़ीमें जल भरा हुआ हो इसी प्रकार उनके देहमें सुन्दरता बसी होती है। देखो सुन्दरता क्या चीज है ? एक मोही जनोंकी कल्पना, उनके मनका एक भाव। जैसे यहाँ मनुष्यलोकमें कुछ नजर करके देखो वही शरीर जो अत्यन्त रूपवान है। रूपवानके मायने कल्पनानुसार गौर रंग, ठीक ढांचा ! उस ही शरीर को रूपवानकी दृष्टिसे देखते हैं तो उसमें अद्भुत रूप नजर आता है। जब ऐसी दृष्टि करते हैं कि है क्या तो उसमें फिर सुन्दरता नहीं जंचती है। कहो कृष्ण रंग वाले से भी उस गौर शरीरमें मलिनता हो। जरा उस शरीरके भीतर क्या भरा है ? इस पर दृष्टि दें वही मल, मूत्र, खून, पीप, मांस, मज्जा आदि सारी गंदी चीजें भरी हैं, इस प्रकारकी दृष्टि देने पर फिर सुन्दरता नजर नहीं आती स्वर्गोंमें तो उन देव देवियोंका वैक्रियक शरीर है। सुन्दरता भी वहां एक कल्पनासे बढ़ जाती है और स्वरूपदृष्टि करें तो वहां फिर सुन्दरता नहीं ठहरती है। एक पदार्थ है, ज्ञेय हो जाता है। जैसा है वैसा जाननेमें आता है। तो स्वर्गोंमें ऐसे विवेकी देवोंकी संख्या अत्यन्त कम है। तो वहां सुन्दरता सभी देवोंको जंचती है। वे देवांगनायें सुन्दरतारूप जलकी बावड़ी हैं। पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान उन देवांगनाओंका मुख है, वे विनयशील हैं। देखिये विनयसे ही सुन्दरता बढ़ती है। कोई पुरुष कटुक बोलने वाला हो, कोई खोटी प्रवृत्ति करता है तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कितनी ही सुन्दरता उसमें हो, पर वह सुन्दर नहीं लगता। वे देवांगनाएं अति विनयशील हैं, चतुर हैं, सुन्दर हैं, महाऋद्धिकी शोभा सहित हैं, मुखके हाव भाव चित्तविकार विलास-भ्रू विकार आदिसे भरी हुई हैं और विशेष क्या कहें ? वे आचार्य महाराज उत्प्रेच्छा अलंकार में यह बतला रहे हैं कि वे देवांगनायें मानो समस्त शृङ्गार इकट्ठा करके बताया गया है कि जो मूर्तिमान लक्ष्मीकी तरह शोभा देती हैं। ऐसी विशिष्ट रूपवान देवांगनायें उन देवोंको प्राप्त होती हैं और वे देव ऐसी देवांगनावोंके साथ सुख ही सुखमें रहकर सागरों पर्यन्तका समय ऐसा बिता देते हैं कि कुछ पता ही नहीं पड़ता। वे अन्तमें मरण करके मध्यलोकमें गिरते हैं और पशु पक्षी आदि बनते हैं। इस प्रकार पुण्यफलके वर्णनमें स्वर्गोंका वर्णन किया जा रहा है, पर ज्ञानी जीव इस पुण्य फलको औपाधिक और हेय ही समझते हैं।

गीतवादित्रविद्यासु शृङ्गारसभूमिषु।
परिरम्भादिसर्वेषु स्त्रीणां दाक्ष्यं स्वभावतः ॥१७८३॥

स्त्रियोंकी प्रकृत्या गीतादिचतुरता—सांसारिक सुखोंमें गीत नृत्य वादितकी प्रधानता है। जहाँ कोई सुखमें हो उसे फिर ये गीत बाजा नृत्य आदिकका मौज सुहाता है। स्वर्ग एक पुण्यका फल है तो वहाँ गीत नृत्य आदिक विद्यावोंमें वे देवाँगनाएँ अत्यन्त प्रवीण हैं। उनकी चतुराईका वर्णन करते हुए आचार्य देव यहाँ यह कह रहे हैं कि गीत नृत्य व बाजे आदिमें स्त्रियोंमें स्वभावसे प्रवीणता होती है, और फिर वहाँ कुछ विशेष ऋद्धियां होती हैं, कुछ चतुराइयां विशेष होती हैं तो देवांगनाओंमें गीत बाजे व नृत्य आदिक विद्यावोंमें प्रवीणता अत्यन्त अधिक है। ऐसे उन गायन नृत्य और संगीतके सुन्दर वातावरणमें वे देव और इन्द्र अपना पुण्यफल भोगते हैं। यह सब वर्णन सुनते हुए यह आत्माका सुध ध्यानसे न अलग करना कि ये सारी बातें आत्माके स्वभावसे विपरीत हैं। आत्माका आनन्द तो आत्मस्वभाव में जितनी दृष्टि रहे अपने आत्माके निकट अपने उपयोगको जितना बसायें उतना ही आत्मीय आनन्द है। शेष तो सब विडम्बनायें हैं, कल्पित मौज हैं, उस मौजके बाद दुःख भोगना पड़ता है। लेकिन पुण्यका इस प्रकारका फल ही है कि वैषयिक सुखोंके अनुभवरूपमें वह फल आता है।

सर्वावयवसम्पूर्णा दिव्यलक्षणलक्षिताः।
अनङ्गप्रतिमा धीराः प्रसन्नप्रांशुविग्रहाः ॥१७८४॥
हारकुण्डलकेयूरकिरीटाङ्गदभूषिताः।
मन्दारमालतीगन्धा अणिमादिगुणान्विताः ॥१७८५॥
प्रसन्नामलपूर्णेन्दुकान्ताः कान्ताजनप्रियाः।
शक्तित्रयगुणोपेताः सत्त्वशीलावलम्बिनः ॥१७८६॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विज्ञानविनयोद्दामप्रीतिप्रसरसंभृताः ।
निसर्गसुभगाः सर्वे भवन्ति त्रिदिवौकसः ॥१७८७॥

देवोंके देहकी निसर्गसुभगता—उन स्वर्गोंमें देव किस प्रकारके होते हैं, उनका कुछ यहाँ वर्णन चल रहा है। वे समस्त देव समस्त अवयवोंमें सम्पूर्ण और सुडौल हैं। उन देवों के समचतुरस्रसंस्थानका उदय है। समचतुरस्रसंस्थानके नामकर्मके उदयसे शरीर पूर्ण सुडौल रहता है, उनकी नाभि शरीरके ठीक मध्यस्थानमें होती है, उस नाभिसे ऊपर तथा नीचे दोनों ओरकी लम्बाई बराबर होती है। चाहे शरीर छोटा हो, चाहे बड़ा हो, सभी देवोंका शरीर सुडौल होता है। उनका जो मूल शरीर है वह तो वहीं रहा करता है, किन्तु उनका जो वैक्रियक शरीर है वह आसपास कुछ विचरण भी करता है। तो वह मूल शरीर अत्यन्त सुडौल है, दिव्य मनोहर लक्षणसे सहित है। मनुष्योंके शरीरसे उनके शरीरमें विलक्षणता है, वही उनमें दिव्यता है। उस वैक्रियक शरीरमें न तो बुढ़ापा है, न पसीना है और न थकावट आदिक हैं। यही शरीरके दिव्य लक्षण हैं। वह कामदेवके समान सुन्दर है। कामदेव कोई देव नहीं है जिसका नाम कामदेव हो, और कामदेवकी एक पदवी है। कामदेव पदवीके धारी पुरुष वे होते हैं जो पूर्ण सुन्दर होते हैं। भाव साहित्यमें तो काम नाम है मनोजका। उस कामभावमें भावुकको सुन्दरताके प्रति आकर्षण होता है, इसलिए साहित्यमें कामदेवका रूपक देवताके समान खींचा है। तो वे समस्त देव कामदेवके समान सुन्दर हैं, धीर हैं, क्षोभरहित हैं व प्रसन्न हैं और विस्तीर्ण शरीर वाले हैं। वहाँ मनुष्यों जैसा विशाद और शोकका स्थान नहीं है। वे सदा दिव्य वैषयिक सुखोंमें रत रहते, चिन्तावोंसे वे रहित हैं, अतएव उनका हृदय भी प्रसन्न रहता है। उन देवोंका शरीर हार, कुंडल, केयूर, किरीट, अंगद आदि आभूषणोंसे सहित है। स्वयं वे सुन्दर हैं और फिर आभूषणोंके शृंगारसे रहते हैं। मन्दार, माल्ती आदि पुष्पोंके समान उन देवोंके अंग सुगंधित हैं। उन देवोंके पुण्योदयकी इतनी विशेषता है कि उनका शरीर स्वयं सुगंधित है। जैसे कि बहुतसे सुगंधित पुण्य सुगंधको प्रदान करते हैं ऐसे ही उन देवोंके शरीर भी स्वतः सुगंधित हैं। वे देव अणिमा महिमादि अष्ट ऋद्धियोंसे सिद्ध हैं। जिनमें ऐसी शक्ति है कि विक्रियासे अपना छोटेसे छोटा शरीर बना दें। कहो इतना छोटा शरीर बना दें कि जो देखने वालोंको आश्चर्यके योग्य हो। अपने शरीर को कहो वे इतना बड़ा बना दें कि दिखने वाले शरीरोंसे कई गुना बड़ा मालूम पड़े। कहो शरीर तो बहुत बड़ा बनायें और वजन उसका बहुत ही कम रहे, और कहो शरीर देखनेमें बहुत ही छोटा बना दें पर उसका भार इतना अधिक कर दें कि वह किसीसे उठाया भी न जा सके। तो ऐसी अनेक सिद्धियां होती हैं। उन सिद्धियों करके वे देव सहित हैं।

देवोंकी विज्ञानादि कुशलता व कान्ताप्रियता—वे देव कान्ताजनोंको प्रिय हैं। जैसे यहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मनुष्योंमें कोई कोई मनुष्य अपनी स्त्रीसे अप्रिय भी हो जाते हैं किसी आचरणसे या रूप आदिकसे या प्रवृत्तिसे वे सुहाते नहीं हैं, किन्तु वहां सभी देव अपनी देवांगनाओंको प्रिय होते हैं, क्योंकि उनके योग्य उनके गुण भी हैं, शारीरिक कलायें भी हैं। उन देवोंमें तीन गुणोंकी अधिकता है—प्रभुत्व, मंत्र और उत्साह। प्रभुता सामर्थ्य भी उनमें विशेष है, जिस ओर चलें, जिन सांसारिक कार्योंको वे कर चलें तो उनमें उनकी दक्षता है। तभी तो देखिये कि जब समवशरणकी रचना करनेको तैयार होते हैं तो अन्तर्मुहूर्तमें ही समवशरणकी रचना कर देते हैं। इतनी बड़ी रचना मनुष्योंसे करायी जाय तो मनुष्य कई वर्षोंमें भी वैसी रचना न कर सकें। ऐसी अद्भुत समवशरणकी रचना वे क्षणमात्रमें बना देते हैं। उनमें ऐसी ऋद्धियाँ हैं। कुछ तो अपने वैक्रियक शरीरसे रूप धारण कर लेते हैं, कुछ यहाँ वहाँके अमूल्य पाषाण रत्न आदिकसे कारीगरीकी कला द्वारा बहुत ही जल्दी तैयार कर देते हैं। तो प्रभुता उनमें बहुत है, उनमें विचारशक्ति है, मंत्र शक्ति है और उत्साह विशेष है। वे बड़े व्यवहारी हैं और बहुत उत्तम स्वभावका आश्रय रखने वाले हैं, जिनमें परस्परमें बहुत प्रीति बसी होती है। जैसे नारकियोंमें परस्परमें द्वेषकी पराकाष्ठा रहती है ऐसे ही इन देवोंमें परस्परमें प्रेम व्यवहारकी पराकाष्ठा होती है। तो प्रीतिसे भरे हुए ऐसे स्वर्गोंमें सभी देव शुभ आचरण वाले होते हैं जहाँ कि परस्परमें किसी भी प्रकारका कलह और संक्लेश न हो और सुखोंके भोगनेमें उनको बाधा न आये, ऐसे वे देव सब पुण्यफल वाले होते हैं।

न तत्र दुःखितो दीनो वृद्धो रोगी गुणच्युतः।
विकलाङ्गो गतश्रीकः स्वर्गलोके विलोक्यते ॥१७८८॥

स्वर्गलोकमें दुखित दीनादिकोंका अभाव—संस्थानविचय धर्मध्यान करने वाला यह ज्ञानी पुरुष लोककी रचनाका चिन्तन कर रहा है। अधोलोक और मध्यलोकका चिन्तन करने के बाद ऊर्ध्वलोकमें स्वर्गोंकी बात निरख रहा है कि वहां कोई भी देव दुःखी नहीं देखे जाते हैं। उनका शरीर है ऐसा दिव्य है कि जो रोग क्षुधा तृषा आदिकसे रहित है। यहां तक कि पसीनाका व घृणास्पद किसी भी चीजका वहां लगार नहीं है। सभी प्रकारके मलोंसे रहित उनका शरीर है, तो दुःखका वहां कोई अवकाश ही नहीं है। वहां कोई भी देव दुःखी नजर नहीं आता, न कोई दीन नजर आता। जैसे मनुष्योंमें भिक्षा मांगने वाले कुछ दीन भिखारी फिरा करते हैं उस तरहसे देव लोग नहीं फिरा करते। हां, इतनी सी बात तो वहां पुण्य पापके अनुसार है कि कोई देव किसी देवका सेवक बनकर रह रहा है, कोई किसीको प्रसन्न करनेमें अपना बड़प्पन समझता है। तो कुछ मानसिक दुःख तो परस्परके व्यवहारका है पर दीन हीन भिखारी वहां कोई न मिलेगा। आवश्यकता ही नहीं है किसीको कुछ मांगनेकी कोई आवश्यकता हो, किसी चीजकी पूर्ति न हो तब तो किसीसे दीनता की जाय। स्वर्गोंमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई दीन ही न मिलेगा, कोई वृद्ध न मिलेगा। वहाँ उत्पन्न होते ही वह देव अन्तर्मुहूर्तमें पूर्ण शरीर वाला बन जाता है। जैसे यहाँ मनुष्योंमें पूर्ण शरीर वाला मनुष्य बननेमें १०-१५ वर्ष लग जाते हैं ऐसे उन देवोंको पूर्ण शरीरी बननेमें समय नहीं लगता। वे तो एक मिनटमें ही पूर्ण शरीरी बन जाते हैं, वे फिर सारी जिन्दगी भर युवा रहते हैं, वृद्ध कभी नहीं होते। मरणकाल जब आता है तो ६ महीना पहिले उनके शरीरमें कुछ विचित्रता होने लगती है, उनकी माला मुर्झा जाती है तब उन्हें पता पड़ता है कि अब हमारी मृत्यु निकट आ गयी। वे वृद्ध नहीं नजर आयेंगे। कोई देव गुणरहित नहीं होता उनमें अनेक प्रकारकी चतुराइयाँ होती हैं। देवोंमें कोई विकल अंग वाले भी नहीं हैं। किसीका हाथ कम हो, किसीका पैर कम हो अथवा कभी कोई हाथ पैर टूट जाय, लंगड़े लूले हो जायें ऐसी स्थिति देवोंमें नहीं होती। वे समस्त देव सम्पूर्ण अंग वाले होते हैं और कान्ति सम्पन्न होते हैं।

साम्यसामानिकामात्यलोकपालप्रकीर्णकाः।
मित्राद्यभिमतस्तेषां पार्श्ववर्ती परिग्रहः ॥१७८९॥

स्वर्गोंमें जो परस्परका समागम है वह भी अद्भुत और प्रीति सुखका देने वाला है। सभाके देव, सदस्य कहो, वे सभी उत्तम विचार वाले हैं, और किसी भी समस्याका मंत्रणा करनेमें उनकी बुद्धि पैनी रहती है। वहाँ सामानिक देव तो इन्द्रके तुल्य ही वैभव वाले हैं, केवल एक आज्ञारहित हैं। वे देव भी उच्च विचारके हैं और प्रीति व्यवहार सुख देने वाले समस्त वाणी व्यवहारके करने वाले हैं। वहाँ अमात्यादिक देव सो मंत्रणाका काम करते हैं, जो इन्द्रके साथ रहा करते हैं वे त्रायस्त्रिंश देव भी बड़ी गम्भीर बुद्धि वाले हैं। प्रथम तो देवों को अवधिज्ञान होता है तो वे अवधिज्ञानसे सारी बातोंका ज्ञान कर लेते हैं। कोई बात युक्तिसे विचारना होती है तो उसका भी विचार कर लेते हैं, ऐसे उन स्वर्गोंमें देव पाये जाते हैं। वहाँ लोकपाल देव हैं जिनकी उच्चता और गम्भीरताके सम्बंधमें विशेष क्या कहें? इतना ही कहना पर्याप्त है कि वे अपनी शुद्ध दृष्टि न्याय दृष्टि, प्रजाजनोंमें समता परिणामसे व्यवहार रखनेकी दृष्टि इतनी विशुद्ध रहती है कि वे एक भवावतारी होते हैं। एक मनुष्यका भव पाकर मोक्ष जाने वाले होते हैं। प्रकीर्णक देव अर्थात् सभी देव और उनके मित्रादिक सभी इष्ट परिवार उनके बहुत अधिक अभिमत हैं, इन्द्रके बहुत अनुकूल रहते हैं। इन्द्र भी सदा उन सभीके अनुकूल रहते हैं। उनमें परस्परमें प्रतिकूलताकी बात कभी भी नहीं आने पाती। इस प्रकारका विशेष पुण्यका फल वहाँ प्राप्त होता है।

बन्दिगायनसैरन्ध्रीस्वाङ्गरक्षाः पदातयः।
नटवेत्रिविलासिन्यः सुराणां सेवको जनः ॥१७९०॥

स्वर्गलोकमें देवोंकी विविध सेवा—उन स्वर्गोंमें उन देवोंकी सेवा करने वाले देव हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वर्गोंमें दुःख है तो यही कि कोई कम पुण्य वाला है तो विशेष पुण्य वालेके सामने वह कुछ नम्र होकर रहकर उसकी सेवामें अपना महत्त्व समझना पड़ता है। यह दुःख उनमें विशेष है। वैसे शारीरिक दृष्टियोंसे देखा जाय तो उनमें किसी प्रकारकी वेदना नहीं है। वहाँ विशेष पुण्य वाले देव हैं तो उनके परिकर देव और विशेष रहते हैं। बंदी जन होते हैं जो स्तुति करते हैं, प्रशंसा किया करते हैं। यह भी एक पुण्यफल है। जैसे यहाँ पुण्यवान मनुष्योंके निकट अनेक लोग ऐसे बसा करते हैं जो उनमें गुणानुराग करनेमें, स्तवन करनेमें, मन प्रसन्न करनेमें अपना महत्त्व समझते हैं। ऐसे ही वहाँ ऐसे विशिष्ट देवोंके समीप बन्दीजन होते हैं जो उनका गुणगान किया करते हैं। वहाँ दंड धरने वाले देव हैं। जैसे जब कभी अपन लोग समारोह निकालते हैं मंदिरका रथका तो चांदीके दंड लेकर निकला करते हैं, इसी प्रकार उन बड़े बड़े देवोंके और इन्द्रोंके साथ दंडधारी देव चला करते हैं। यह केवल पुण्यकी बात है। कहीं ऐसा नहीं है कि वे इन्द्र इससे रक्षित रहते हों। कोई आक्रमण न कर जाय इसलिए रक्षाके लिए देव हों यह बात नहीं है। वह एक शोभाके लिए चीज है। जैसे यहाँके चांदीके दंड शोभाके लिए हैं। लड़ाईमें वे दंड काम नहीं लिए जाते, केवल एक शोभाके लिए हैं। इसी प्रकार ऐसे दंडधारी देव इन्द्रके साथ इन्द्रकी शोभा बढ़ानेके लिए रहते हैं। वहाँ गाने वाले देव हैं तथा नाचने वाली विलासिनी अप्सरायें हैं। वे अप्सरायें गीत नृत्यादिमें अति कुशल हैं। ऐसे वैभव सम्पन्न सुखोंको वे देव सागरों पर्यन्त तक भोगा करते हैं।

तत्रातिभव्यताधारे विमाने कुन्दकोमले।
उपपादिशिलागर्भे संभवन्ति स्वयं सुराः ॥१७६१॥

देवोंका सुखद उपपाद—देवोंके उत्पन्न होनेकी उपपादि शय्या है। देखिये जीवनमें अनेक और दुःख तो आया ही करते हैं मनुष्यके जीवनमें, पर सबसे बड़ा दुःख जन्मका और मरणका है। मरणके समयमें जो दुःख होता है उसे तो लोग अपनी बुद्धिमें जल्दी ग्रहण कर लेते हैं, मरते समय बड़ा क्लेश होता है क्योंकि उस रोगीको पहिलेसे देखते रहते हैं कि देखो अब बीमार हो गया, अब श्वांस धीरे चल रही है, अब बहुत धीमी श्वांस चल रही है। अब प्राण निकल रहे हैं। पर मरणसे भी विकट दुःख जन्मका है। ६ मास तक वह बच्चा उल्टे मुंह अंगोंको सकोचकर पड़ा रहता है अपनी मांके पेटमें, जहाँ पर कि अत्यन्त गर्मी है, तो विचार करो कि वह कितने कष्टमें होता है, और फिर जन्मके समयमें अर्थात् गर्भसे निकलनेके समयमें उस बच्चेको कितनी वेदनायें सहनी पड़ती हैं ? तो जन्मका दुःख मरणके दुःखसे अधिक विकट है। देवोंमें ये जन्मके दुःख बिल्कुल नहीं हैं। तब वे कैसे जन्मते हैं, उनके जन्मकी विधि आगेके श्लोकोंमें विशेषकर बतावेंगे। सामान्यतया ऐसा समझ लेना चाहिए कि वहाँ कुछ नियत स्थान होते हैं जिन्हें उपपाद शय्या कहते हैं। अभी कोई देव नहीं है और थोड़ी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही देरमें वहाँ सोये हुए बालककी तरह देव दिखने लगता है। वही उसका जन्म है। उपपाद शय्यापर उन वैक्रियक वर्गणावोंका जमाव हो जाता है और वहाँ पुण्यवान जीव आकर उस शरीरको ग्रहण करता है, वही देवका जन्म है। तो उनका जन्म इस विधिसे होता है, जैसे कोई सोया हुआ आदमी हो और वह जगकर उठ जाय। ऐसे ही उस उपपाद शय्यापर देव पड़ा हुआ एकदम उठ जाता है, इसी तरह उन देवोंका जन्म होता है। तो वहाँ उपपाद स्थान कैसा है, उस स्थानकी विशेषता इन ५ श्लोकोंमें बता रहे हैं।

सर्वाक्षसुखदे रम्ये नित्योत्सवविराजिते।
गीतवादित्रलीलाढ्ये जय जीवस्वनाकुले ॥१७६२॥
दिव्याकृतिसुसंस्थानाः सप्तधातुविवर्जिताः।
कायकान्तिपयः पूरैः प्रसादितदिगन्तराः ॥१७६३॥
शिरीषसुकुमाराङ्गाः पुण्यलक्षणलक्षिताः।
अणिमादिगुणोपेताः ज्ञानविज्ञानपारगाः ॥१७६४॥
मृगाङ्कमूर्तिसंकाशाः शान्तदोषाः शुभाशयाः।
अचिन्त्यमहिमोपेता भयक्लेशार्तिवर्जिताः ॥१७६५॥
वर्द्धमानमहोत्साहा वज्रकाया महावलाः।
अचिन्त्यपुण्ययोगेन गृह्णन्ति वपुरूर्जितम् ॥१७६६॥

देवोंकी सुखद जन्मविधि—वह उपपाद शय्याका स्थान समस्त इन्द्रियोंको सुख देने वाला है, जहाँ रमणीक रचनायें हैं, रत्नमणि आदिकसे चित्र विचित्रित हैं, और देखनेमें भी वहाँ जन्मके समय कोई घृणा वाली बात नहीं नजर आती है। अभी कोई था नहीं और अब दिखने लगा, इतना ही मात्र उनका जन्म समझमें आता है। जिस समय वह शरीर नजर आने लगता है उस समय तो शरीर बहुत छोटा होता है बालक जैसा, पर एक मिनटके अन्दर ही वह शरीर एकदम युवा बन जाता है और उठकर सब कुछ निरखने लगता है। तो वह उपपाद शय्याका स्थान समस्त इन्द्रियोंको सुख देने वाला है, सुहावना है, नित्य ही उत्सव सहित विराजमान है। उत्सव उसके समीप ही तो हुआ करता है जहाँ कोई जन्म होता है। तो इस प्रकारसे उस उपपाद शय्यापर देव उत्पन्न होते रहते हैं। देवोंकी गिनती असंख्यात है। मनुष्योंसे कई गुना देव हुआ करते हैं। तो वहाँ उपपाद शय्याके निकट सदा उत्सव समारोह हुआ करते हैं। जो जैसा देव है उसका वैसा उत्सव समारोह हुआ करता है। उन उत्पन्न होने वाले देवोंके पुण्यकी प्रेरणासे स्वर्गमें रहने वाले देव वहाँ आते हैं और उत्पन्न हुए देवकी महिमा गाते हैं और उनका चित्त प्रसन्न हो वैसा वार्तालाप करते हैं और वहाँकी सारी रचनावोंका बखान करते हैं। तो वह उपपादका स्थान नित्य उत्सवसहित विराजमान है जहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गीत बाजे व नृत्य आदिककी अनेक लीलायें बनी रहती हैं। हे देव ! जयवंत होओ, चिरंजीवी होवो, इस प्रकारके अनेक शब्द कहते रहते हैं। ऐसे स्थानोंपर वे देव उत्पन्न होते हैं। जो देव उत्पन्न होते वे किस प्रकार हैं कि उनका दिव्य सुन्दर आकार है, संस्थान उनका समचतुरस्र है, शरीर सप्तधातुरहित है। वहाँ शरीरमें हड्डी, खून, मांस, मज्जा, रोम, चमड़ी आदिक कुछ भी नहीं पाये जाते, पर हैं वे मनुष्य जैसे शरीर। वे वैक्रियक वर्गणायें हैं जो शरीर तो है और मनुष्योंके आकार जैसी बात है, पर शरीरमें घृणाकी बात नहीं। सप्त धातुवें नहीं, तो विचित्र ही वैक्रियक वर्गणायें हैं। पुण्यके फलकी बात है। जैसे यहाँ मनुष्योंमें जैसे जैसे पुण्य-हीन मनुष्य हैं वैसे ही वैसे उनके शरीरोंमें भी त्रुटियां बहुत पायी जाती हैं और तिर्यञ्चोंमें तो स्पष्ट नजर आता है, कोई जीव किसी आकारका है कोई किसी आकार है, किसीका कैसा ही बेढंगा मुख है तो किसीका कैसा ही बेढंगा शरीर है। स्थावर जीवोंको देखो तो पेड़ किस तरहके आकार वाले हैं। तो उन देवोंका शरीर सप्तधातुवोंसे रहित है, उनके शरीरकी प्रभा समस्त देवतावोंको प्रसन्न करने वाली है, उनका शरीर पुष्पके समान कोमल है, अनेक पवित्र लक्षणों वाला है, अणिमा महिमादि गुणसे युक्त है। वे देव अवधिज्ञानी होते हैं, उस अवधि-ज्ञानसे सारी बातें जानकर वे उपपाद शय्यापर पड़े हुए देव अति प्रसन्न होते हैं। वे देव चन्द्रमाकी मूर्तिके समान हैं जिनमें सभी प्रकारके दोष शान्त हो गए हैं, उनको किसी भी प्रकारका कोई क्लेश नहीं रह गया है। उनको कोई चिन्ता नहीं रहती है, किसी प्रकारका भय, क्लेश, पीड़ा आदि नहीं है। उनका उत्साह सदा बढ़ता ही रहता है, शरीर भी बज्र जैसा है। दृढ़ और पुष्ट शरीर है, बड़े पराक्रम वाला है। तो पुण्यवान देव पुण्यके योगसे इस उपपाद शय्या पर शरीरको ग्रहण कर लेते हैं। यों समझिये कि इस उपपादशय्यामें अभी कोई नजर नहीं आ रहा था लेकिन अब बालक नजर आता है। उसी समय देव आते हैं और उसका सम्मान करते हैं। इस प्रकार वे देव उपपाद शय्यापर आते हैं, उन्हें जन्मके समयमें किसी प्रकारकी कोई पीड़ा नहीं होती।

सुखामृतमहाम्भोधेर्मध्यादिव विनिर्गताः।
भवन्ति त्रिदशाः सद्यः क्षणेन नवयौवनाः ॥१७६७॥

प्रकट होनेके बाद अन्तर्मुहूर्तमें देवोंकी नवयौवनता—स्वर्गोंमें देव किस तरह उत्पन्न होते हैं, उसका वर्णन चल रहा है। वे मनुष्योंकी नाई गर्भमें नहीं आते किन्तु उनकी उपपाद शय्या बनी हुई हैं, ऐसे अच्छे सुहावने लम्बे चौड़े चबूतरे समझिये जो छतरियोंसे ढके हुए हैं, मणियोंसे जड़ित हैं ऐसी कोई रमणीक सुन्दर शय्यायें होती हैं। उस उपपादशय्यापर वे देव ऐसा उत्पन्न होते हैं कि जैसे मानो कोई समुद्रमें से निकल आये, इसी प्रकार उस उपपादशय्या पर देव शरीर बन जाता है। पहिले कुछ नहीं दीखता था लो अब वहाँ एक बालक दीखने

http://sahjanandvarnishastra.org/

लगा । इस प्रकार वे देव उपपादशय्यापर स्वयं ही प्रगट हो जाते हैं । यों समझिये कि देव सुखरूपी महामंदिरमें से तत्काल नवयौवन होकर उत्पन्न होते हैं । कुछ ही मिनटोंमें वे जवान हो जाते हैं, बुढ़ापा वहां आता ही नहीं है । इस प्रकार सुखपूर्वक उनका जन्म हुआ करता है । यह जन्म या एक रोग है, तो वह तो रोग है ही क्योंकि वह शरीररूप अवस्था है, किन्तु जिस प्रकार मनुष्य और तिर्यञ्चका उपपाद होता है उस तरह दुःखपूर्वक देवोंका जन्म नहीं होता है और नारकियोंके भी कुछ स्थान होते हैं जहाँसे वे उत्पन्न होते हैं । लेकिन वे सर्व दुःखरूप हैं । प्रथम तो उनकी उत्पत्ति ऊपरसे नीचे गिरकर होती । जमीनपर उनकी उत्पत्ति नहीं होती किन्तु जो जमीनका ऊपरका हिस्सा है, यों समझिये कि जैसे कोई छतसे उत्पन्न होकर नीचे गिर जाय इसी प्रकार नारकी जीव जमीनके ऊपरसे नीचे गिरते हैं, उनका जन्म दुःखपूर्ण है परन्तु देवोंका जन्म सुहावना और बहुत सुखके वातावरणमें होता है ।

किञ्च पुण्यफलाक्रान्तैः प्रवालदलदन्तुरैः ।
तेषां कोकिलवाचालैर्द्रुमैजन्म निगद्यते ।।१७६८।।

देवोंके जन्मके समयमें प्राकृतिक वातावरणकी सुरम्यता—देव जब उत्पन्न होते हैं तो वहाँका आसपासका वातारण भी खिल उठता है, आसपासके वृक्ष फलफूलोंसे भरपूर हो जाते हैं । लोग ऐसा वातावरण देखकर जान जाते हैं कि कोई पुण्यवान देव उत्पन्न हुआ है, उनकी उत्पत्तिके समय उनकी दिव्य अतिशय जैसी उत्पत्ति होती है । वहांकी एक यह प्राकृतिक बात है । जिस समय देव उत्पन्न होता है फल फूलोंसे भरपूर वृक्ष हो जाते हैं, कोमल पत्तोंसे अंकुरित वृक्ष हो जाते हैं । एक नवीनता उनमें आ जाती है जिससे लोग यह सूचना पाते हैं कि कोई देव उत्पन्न हो रहा है और उन वृक्षोंपर बहुत सुहावने सुन्दर कोकिलावों जैसे शब्द सुनाई देते हैं, ऐसी विचित्र आश्चर्यजनक बातें होती हैं जब कोई विशिष्ट देव अथवा इन्द्र उस उपपाद शय्यापर जन्म लेता है । संसारमें पुण्य और पाप दोनोंका ही खेल है । कोई जीव पापके उदयसे दुःखी है, कोई जीव पुण्यके उदयमें मौज मान रहा है, वस्तुतः जब तक ज्ञानदृष्टि नहीं आती है तब तक पापका फल बँधा तो क्या लाभ, इसी प्रकार पुण्यका फल भी बंधा तो क्या लाभ ? थोड़ेसे समयके लिए कुछ मौजके साधन मिल गए तो उससे क्या लाभ ? लेकिन जो जीव धर्ममार्गमें चलते हैं उनके राग रहनेके कारण जैसा पुण्यबंध होता है उस पुण्यबंधका यह फल है, यह अवश्य भोगना होता है । उस ही पुण्य फलकी बात कही जा रही है । उनका जब जन्म होता है तो जन्मकी सूचना वहाँके आसपासका वातावरण देता है । मानो वह वातावरण भी पुलकित हो उठता है, वे वृक्ष नवीन अंकुरोंसे भर जाते हैं, पुष्प और फलोंसे भरपूर हो जाते हैं, ऐसे वातावरणको निरखकर अन्य देव जान जाते हैं कि कोई पुण्यवान देव उत्पन्न हुआ है । वे देव उस पुण्यवान देवकी प्रतीक्षा करने लगते हैं ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बादमें उसके गुणोंका गान करके उसे प्रसन्न करते हैं।

गीतवादित्रनिर्घोषैर्जयमङ्गलपाठकैः ।
विबोध्यन्ते शुभैः शब्दैः सुखनिद्रात्यये यथा ॥१७९९॥

जन्मसमयमें गीत वादित्र आदि घोषों द्वारा देवोंका विबोधन——वह देव उस उपपाद शय्यामें इस प्रकार उत्पन्न होता है कि जैसे कोई राजकुमार सोया हो और वह गीत वादित्रों के शब्दोंसे, जय जय आदिक मंगलके वादोंसे जगाये जाते हैं, ऐसी ही वहाँ की स्थिति है। मानो कोई सोया हुआ पुरुष बड़े अच्छे पाठोंसे, बड़े अच्छे गीत वादित्रोंसे जगाया जा रहा हो तो जगकर वह चेष्टा करता है, यहाँ वहाँ निरखता है ऐसे ही वहाँ उपपाद शय्यापर कोई था नहीं पहिले। कुछ ही मिनटमें एकदम वहाँ एक बालक दिखाई दिया और कुछ ही मिनटमें वह जवान होकर बैठकर चारों ओर निरखने लगता है, इस प्रकार सुखपूर्वक उन देवोंका जन्म होता है। जन्मके समय अनेक देव वहां जय जय शब्द बोलते हैं। देखिये पुण्यका एक प्रभाव कि जैसे यहाँ लोग किसी महापुरुषके प्रति जय-जय शब्दोच्चारण करते हैं, पूज्य पुरुष का जयवाद किया करते हैं इसी प्रकार वहां उत्पन्न हुए देवके प्रति लोग जय-जय शब्द करते हैं, वहां प्रायः करके वे ही मनुष्य उत्पन्न होते हैं जो तपश्चरण करते, धर्मसाधना करते। तो पवित्र आत्मा ही तो स्वर्गोंमें उत्पन्न होते हैं। जिन देवोंके प्रति अन्य देवोंका आकर्षण है उनकी बात कही जा रही है। ऐसे महापुरुषोंकी उत्पत्तिके समय अनेक देव उनके निकट पहुंचकर उनका जयवाद करते हैं। ऐसे सुखपूर्ण वातावरणमें वे मूर्धिक देव कुछ सावधान होकर यत्र तत्र निरखने लगते हैं।

किञ्चिद्भ्रममपाकृत्य वीक्षते स शनैः शनैः ।
यावदाशा मुहुः स्निग्धैस्तदा कर्णान्तिलोचनैः ॥१८००॥

उत्पन्न होनेके बाद चारों ओर अवलोकन—उस उपपादशय्यामें वह देव उत्पन्न हुआ और कुछ ही क्षणोंके बाद वह कुछ निरखने लगता है तो उसे कुछ विचित्र बात नजर आती है, कुछ भ्रमसा नजर आता है। जैसे कोई सोया हुआ पुरुष जब जगकर बैठ जाता है तो झट उठकर वह कुछ इधर उधर निरखने लगता है, कुछ सोचनेसा लगता है, इसी प्रकार वह देव भी उठकर बैठ जाता है और कुछ चिन्तन करने लगता है कि यह कौनसा स्थान है, मैं किस नवीन जगहमें आया हूं, उसे तो सारी चीजें नई दिखती हैं, वह सोचता है कि यह कौनसा क्षेत्र है, यह सब क्या समागम है? खूब खुले हुए नेत्रोंसे वह देव एक आश्चर्यमें आकर निरखने लगता है कि मैं यहां किस जगह आ गया, यह सब क्या समागम है?

इन्द्रजालमथ स्वप्नः किं नु मायाभ्रमो नु किम् ।
दृश्यमानमिदं चित्रं मम नायाति निश्चयम् ॥१८०१॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकट होनेके बाद दिशावलोकनसे अद्भुत ठाठ देखनेपर आश्चर्य—क्या है यह सब ? क्या यह इन्द्रजाल है ? एकदम नवीन स्थानपर वह आत्मा देवके रूपमें उत्पन्न हुआ ना, तो एकदम एक विचित्र स्थानको देखा, और बहुतसे दिव्य कान्तिधारी नाना आभूषणोंसे सुसज्जित मुखपर प्रसन्नता बखेरते हुए बहुतसे देव नजर आते हैं। ऐसे उस स्थानको निरखकर वह उत्पन्न हुआ देव सोचता है कि क्या यह सब इन्द्रजाल है ? अर्थात् होता तो कुछ भी नहीं किन्तु एक मायारूपमें बना हुआ है। क्या यह मायारूप भ्रम है अथवा मुझे क्या कोई यह स्वप्न आ रहा है ? जब वह देव निरख रहा है इस अद्भुत नवीन समागमको तो वह चिन्तन कर रहा है कि क्या यह स्वप्न है या सचमुच मैं जागते हुए यह सब कुछ देख रहा हूं ? उस समय वह दृढ़तासे निश्चय नहीं कर पाता कि यह सब चीज है क्या ? ऐसा सोचिये कि यदि आप कहीं ऐसे स्थानपर रख दिये जायें किसी एक सोते हुए स्थानमें कि जो एक नवीन है, विचित्र है, जिस स्थानको कभी देखा नहीं है, तो आपको वहां किस प्रकारका चित्त हो सकता है ? कुछ बात निर्णयकी नहीं आ पाती है, है क्या, किस जगह हूं, उस समागमके प्रति कुछ भ्रमसा होता है, अपने प्रति भी भ्रम होने लगता है। क्या मैं सचमुच देख रहा हूं अथवा मुझे निद्रा आ रही है या स्वप्न आ रहा है, स्वप्नमें भी जो कुछ देखा जाता है वह सब यथार्थसा लगता है, यही तो घर है, यही तो पेड़ है, यही तो सरोवर है आदि। तो जैसे स्वप्नमें सब बातें सच मालूम देती हैं वैसे ही यह सब कुछ जो हमें नजर आ रहा है यह सब स्वप्न है अथवा वास्तवमें यह सब कुछ है। इस प्रकार भ्रम और आश्चर्यपूर्वक वह नवीन देव इन सब बातोंको देखता है और कुछ निश्चयसा नहीं कर पाता।

इदं रम्यमिदं सेव्यमिदं श्लाध्यमिदं हितम्।
इदं प्रियमिदं भव्यमिदं चित्तप्रसत्तिदम् ॥१८०२॥

देवोंका दृश्यमान समागमोंके प्रति विवेक—जैसे जैसे क्षण व्यतीत होते हैं वैसे ही वैसे इन दृश्यमान समागमोंके प्रति उसका निश्चयसा बन जाता है। सभी वस्तुवें जो भी नजर आ रही हैं उन उनके प्रति यह निश्चय करता है कि ये वस्तुवें तो बड़ी सुन्दर हैं, बड़ी रमणीक लग रही हैं, ये सब वस्तुवें मेरे सेवने योग्य हैं, मेरे उपयोगके योग्य हैं, इनके सेवनसे मेरा हित है, भलाई है, सुख है, आनन्द है और मौज है, ये वस्तु सराहनीय हैं, प्रशंसनीय हैं। वहाँ चेतन अथवा अचेतन सभी वैभव नजर आ रहे हैं, पर वे सब एक वैभवरूपमें नजर आ रहे हैं। यह वैभव प्रशंसाके योग्य है, यह वैभव हितरूप है, यह प्रिय है, मनको आकर्षित करने वाला है। धीरे-धीरे जिन पदार्थोंके प्रति उसे भ्रमसा था, कुछ निश्चयसा होता जा रहा है। जैसे बहुत समय तक किसी स्थानपर रहनेसे एक परिचयसा बढ़ता है, विश्वाससा होता है, चित्त नि:शंकित रहता है, इस प्रकार नवीन उत्पन्न हुआ देव उस नवीन समागमके प्रति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निश्चय कर रहा है। यहाँ तो किसी नवीन अपरिचित जगहमें किसी सोते हुए व्यक्तिको उठा ले जाय तो उसके जगनेपर उसका क्या हाल होगा, सो तो विचारो। वह तो सोचेगा—ओह! मैं कहाँ आ गया, यहाँ तो कोई मेरी पूछ करने वाला भी नहीं, कोई यहाँ मेरा अपमान न कर दे, कोई मेरा बहिष्कार न कर दे, आदि। पर वह देव उत्पन्न होकर उस स्थानपर जितने अधिक क्षण गुजरते हैं निश्चय होता है और उसका चित्त निःशंकित हो जाता है।

एतत्कन्दलितानन्दमेतत्कल्याणमन्दिरम्।
एतन्नित्योत्सवाकीर्णमेतदत्यन्तसुन्दरम्॥१८०३॥

दृश्यमान समागमोंके प्रति देवोंका विचार—तत्पश्चात् वह देव विचार करता है कि यह तो आनन्दको उत्पन्न करने वाला कल्याणका मंदिर है। सभी कुछ तो उनकी दृष्टिमें आ रहा है। चैत्यचैत्यालय आदि ये सब कल्याणके मार्ग हैं, सुन्दर उत्सव रूप और अत्यन्त सुन्दर हैं, वहाँ स्वर्गोंमें समारोहकी बड़ी प्रचुरता रहती है। जीवनमें भी अनेक समारोह चलते हैं और जब कोई देव उत्पन्न होता है तो उसकी उत्पत्तिमें भी समारोह चलता है। यहाँ जैसे कोई बालक उत्पन्न होता है तो उत्पन्न होनेके समय पड़ौसी रिश्तेदार मित्र लोग भाई बंधु ये सब कैसी खुशी मनाया करते हैं, तो वहाँ स्वर्गोंमें जो देव उत्पन्न होते हैं उनकी प्रतिभा ऐसी महान है कि अन्य देव वहाँ आते हैं और खुशी मनाते हैं। आखिर वही देव कुछ ही क्षणमें नवयौवन सम्पन्न होकर हम सबके साथ व्यवहार रखेगा, हम सबको मार्ग दिखायेगा, हम सब उसको इसी कारण बड़े एक गौरवकी दृष्टिसे देख रहे हैं इस प्रकार देवके चिन्तन हुआ करते हैं।

सर्वर्द्धिमहिमोपेतं महर्द्धिकसुरार्चितम्।
सप्तानीकान्वितं भाति त्रिदशेन्द्रसमाजिरम्॥१८०४॥

महिम स्थान पद आदिके विषयमें देवोंका विचार—वह देव यह विचार करता है कि यह स्थान समस्त ऋद्धि और महिमा सहित बड़े ऋद्धिधारक देवोंसे पूजनीय है। जिस स्थान पर उत्पन्न हुआ है उस स्थानकी वार्ता अब उसे विदित होती जा रही है। उसको नाना परिचय प्राप्त होते जा रहे हैं। और वे स्थान तो बड़े बड़े ऋद्धिधारक देवोंके स्थान हैं, देवोंसे पूज्यनीय हैं। वहाँ ७ प्रकारकी सेना है, उन देवोंका वहाँ निःशंकतापूर्वक निवास होता है। वह वहाँ विचार करता है कि यहाँ की तो बड़ी उत्तम भूमि है। उस भूमिमें किसीको किसी भी प्रकारकी दुःख पीड़ा बाधायें नहीं हैं। ऐसे स्थानोंके प्रति इसका परिचय बढ़ रहा है। यह सब कुछ चेतन अचेतन समागमोंकी रमणीकता निरखनेके बाद फिर उस नवीन उत्पन्न जीवका कैसा चिन्तन चलता है?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मामेवोद्दिश्य सानन्दः प्रवृत्तः किमयं जनः ।
पुण्यमूर्तिः प्रियः श्लाघ्यो विनीतोऽत्यन्तवत्सलः ॥१८०५॥

जन्मसमय उपस्थित अत्यन्त वत्सल देवगणके प्रति देवका वात्सल्य—ये सब जो देव समूह दृष्टिगोचर हो रहे हैं तो यह केवल इतना ही नहीं कि यह है । है तो सही किन्तु यहाँ तो यह विदित हो रहा है कि ये सब लोग मेरा ही उद्देश्य करके बड़े आनन्दके साथ खड़े हुए हैं । यह है इतनी ही बात नहीं, यह निकट है और उसके खातिर ये खड़े हुए ऐसे प्रतीत हो रहे हैं इन सबकी दृष्टि मेरी ओर लग रही है । ये सब बड़ी उत्सुकतासे मुझे देख रहे हैं। मुझसे ही कुछ कहना चाहते हैं ऐसा नजर आ रहे हैं । ये बड़े पवित्र रमणीक पुण्यवान नजर आ रहे हैं । इनकी मुद्रा, इनकी प्रसन्नता ये सब बाहर टपक रहे हैं, ऐसे ये देव हैं जो बहुत प्रिय हैं, ये प्रशंसनीय हैं, जिनकी मुद्रा, जिनका विचार, जिनका बर्ताव एक उत्तम पुरुष जैसा करने योग्य है । ये प्रशंसनीय पुरुष हैं, ये सब कितना विनयके साथ खड़े नजर आ रहे हैं ? यह उत्पन्न हुआ देव ज्यों ज्यों क्षण व्यतीत होते हैं त्यों त्यों उन समागमोंको ऐसा आश्चर्य और प्रतीक्षापूर्वक देख रहा है । ये तो बहुत चतुर मालूम होते हैं । ये साधारण जन नहीं हैं, बहुत बुद्धिमान जन हैं, ये कैसा मेरी ओर आकर्षणके साथ खड़े हुए हैं । इस प्रकार वहाँ आये हुए उन देवोंके प्रति वह उन्पन्न हुआ देव विचार करता है ।

त्रैलोक्यनाथसंसेव्यः कोऽयं देशः सुखाकरः ।
अनन्तमहिमाधारो विश्वलोकाभिनन्दितः ॥१८०६॥

जन्मस्थानके प्रति देवका आश्चर्य व आकर्षण—फिर वह देव विचार करता है कि यह कौनसा देश है, जिस जगह बड़े सुखपूर्वक उपपाद शय्यापर जन्म लेता है वह देव तो उस स्थानको निरखकर व उन सब नवीन समागमोंको देखकर चिन्तन कर रहा है कि यह कौनसा देश है ? यह तो सुखकी खान है । यहाँ तो सर्व वस्तुवें रमणीक और ये सब जन बड़े दिव्य कल्पित रूप रखने वाले सुखी नजर आ रहे हैं । यह तो बड़े बड़े महापुरुषोंके सेवने योग्य देश है । जिस देशके सभी लोग इच्छा करें, सबके द्वारा जो वाञ्छनीय है, सुखोंका आधार है ऐसी यह कौनसी भूमि है ? इस प्रकार वह उत्पन्न हुआ देव चिन्तन कर रहा है ।

इदं पुरमतिस्फीतं वनोपवनराजितम् ।
अभिभूय जगद्भूत्या वलतीव ध्वजांशुकैः ॥१८०७॥

वनोपवनराजित अतिस्फीत जन्मपुरका प्रथमावलोकन—स्वर्गोंमें हैं वे सब विमान ही विमान । उन सबको वैमानिक देव इसी लिए कहते हैं । पृथ्वी नहीं है स्वर्गोंमें । वह पृथ्वी तो है पर जैसे इस पृथ्वीपर मनुष्य तिर्यञ्च बिचरते हैं ऐसी पृथ्वी नहीं है किन्तु ज्योतिमान वह एक विमानके रूपमें है । वह विमान बहुत विस्तीर्ण होता है, इसलिए उन्हें एक पृथ्वी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं है, लेकिन पृथ्वीमें और विमानोंमें अन्तर है। पृथ्वीके तीनों ओर वातवलय होते हैं, सभी ओर जिसपर निवास है उस भागको छोड़कर किन्तु विमानोंके लिए वातवलयकी आवश्यकता नहीं है। वह विमान एक ज्योतिमान है। तो जो ज्योतिमान चीज होती है वह अपने आपमें ऐसी लघुता धारण किए हुए होती है कि वह आकाशमें इस प्रकार स्वयमेव ठहर सकती है। तो वह विमान है जहां ये देव उत्पन्न होते हैं। वे विमान बहुत योजन कोशके हैं, तो उनके भीतर नगरों जैसी रचना पायी जाती है। यह नवीन उत्पन्न हुआ देव उस दृश्यको निरखकर चिन्तन कर रहा है कि यह नगर अति विस्तीर्ण है। इस नगरमें सारे महल बड़ी शोभा धारण किए हुए हैं, इन सभी महलोंमें ऐसी विशिष्ट सम्पदा है कि सम्पदा द्वारा मानो ये देव सारे संसारको जीतकर आये हैं इसलिए इन महलोंपर ध्वजा फहरा रहे हैं। जैसे कोई पुरुष किसी पर विजय प्राप्त करके आये तो वह अपने महलमें ध्वजा फहराता है इसी तरह यह सारा नगर भी खुशीके मारे जगमग हो जाता है, बहुतसे रत्न मणि जगमगाते रहते हैं तो वहाँ अब एक अद्भुत बात नजर आ रही है। मानो वे देव सारे जगतकी सम्पदाको जीत लाये हैं, इस कारण उन महलोंमें ध्वजा फहरा रहे हैं। वह फहराती हुई ध्वजा यह सूचित करती है कि ये देव जगतकी समस्त सम्पदाको जीत लाये हैं। ऐसी सुख सम्पदासे परिपूर्ण यह नगर अति विस्तीर्ण है। सब कुछ नया नया सा निरख रहा है ना, इससे कुछ सम्भ्रमके साथ कुछ चिन्तन केसाथ इन समस्त समागमोंको देख रहा है।

आकलय्य तदाकूतं सचिवा दिव्यचक्षुषः।
नातिपूर्वं प्रवर्तन्ते वक्तुं कालोचितं तदा ॥१८०८॥
प्रसादः क्रियतां देव नतानां स्वेच्छया दृशा।
श्रूयतां च वचोऽस्माकं पौर्वापर्यप्रकाशकम् ॥१८०९॥

उपस्थित देवों द्वारा उत्पन्न देवके प्रति सर्व समाचारोंका आवेदन—वहाँ महा ऋद्धि वाले देव देवेन्द्र जब उत्पन्न होते हैं तो उनकी उत्पत्तिके समय उनके चित्तमें प्रथम क्या बीतती है, क्या चिन्तन चलता है उसका कुछ वर्णन चल रहा है। उनके मुखकी मुद्रासे उनके इन विचारोंको जानकर और फिर अवधि ज्ञानके द्वारा उनके भावोंको स्पष्ट जानकर उस समय मंत्री जन उस उत्पन्न हुए देवेन्द्रके अभिप्रायका समाधान करनेके लिए उस देवको नमस्कार करके विनयपूर्वक प्रणाम करके वे मंत्री जन कहते हैं कि हे देव ! हम सेवकोंपर आप प्रसन्न हूजिये। उन्हीं खड़े हुए सब देव देवियोंके प्रति उस देवेन्द्रका चिन्तन चल रहा है। यह कौन सा नगर है, यह कौनसी भूमि है ? कोई पुरुष नगर अथवा भूमिका विचार करता हो तो उसमें यह बात अन्तर्गत है वहाँके निवासियोंके प्रति यह जिज्ञासा बनी है कि ये खड़े हुए जो

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिव्य कान्ति वाले लोग हैं ये कौन हैं, तो उनकी ही बातका समाधान देनेके लिए इन मंत्रियों ने किस प्रकार विनयपूर्वक शुरुवात की ? हे देव ! हम सेवकोंपर आप प्रसन्न हूजिये, और निर्मल दृष्टिसे देखिये—हमारे पूर्वापर परिपाटीके प्रकाश करने वाले वचनोंको सुनो। उस देवेन्द्रने यही तो सब एक जिज्ञासा बनाया था कि यह सब है क्या ? यद्यपि थोड़े ही समय बाद अवधिज्ञानसे वह सब समझ लेगा लेकिन तत्काल जैसा जो भाव हो उस भावकी बात यहाँ बतायी जा रही है। तो चित्तमें जिन जिन वस्तुवोंके प्रति देवेन्द्रका एक निर्णयका ख्याल चल रहा था कि यह सब क्या चीज है, उस अभिप्रायको जानकर वहांके मंत्री लोग उनकी समस्त समस्यावोंका समाधान करेंगे। प्रथम हो तो एक अपनी चर्चा द्वारा अपनी जन्म परिणति द्वारा बहुत कुछ समाधान तो मंत्रियोंने तत्काल कर दिया है, एक उनके विनयपूर्ण भाव को देखकर जो कुछ इस उत्पन्न हुए देवने अर्द्ध निर्णय दिया था कुछ सम्भ्रमके साथ जो कुछ जानकारी बनाया था उसका समाधान तो मंत्री बोलते ही जाते हैं। जो कुछ शंका थी, जो कुछ एक विलक्षणता देखकर मनमें कुछ सम्भ्रान्ति थी वह सब सम्भ्रान्ति उन मंत्रियोंके विनयपूर्ण व्यवहारसे बहुत कुछ समाप्त हो जाता है। फिर वे मंत्री जन अनेक वस्तुवोंको दिखा दिखाकर उस देवेन्द्रके सभी प्रश्नोंका समाधान करते कि यह सब है क्या ? यह पुण्यवान पुरुषोंकी उत्पत्तिके समयकी घटना बतायी जा रही है। कैसा सुखद वातावरणमें इनका जन्म हुआ करता है ? जिन्होंने पूर्व भवमें धर्म धारण किया, तपश्चरण किया, संयम किया, दया दानके परिणाम रखा ऐसे धर्मधारी जीव विशिष्ट रागके कारण जो पुण्य बाँधा था उसके फल में यहाँ उत्पत्ति हुई, उस ही का यह सब वर्णन है।

अद्य नाथ वयं धन्याः सफलं चाद्य जीवितम्।
अस्माकं यत्त्वया स्वर्गः संभवेन पवित्रितः ॥१८१०॥

उपस्थित देवों द्वारा उत्पन्न देवको धन्यवाद—जब वहाँ सौधर्म स्वर्गमें इन्द्र उत्पन्न होता है तो उत्पन्न होनेके बाद उपपाद शय्यासे उठता हुआ उस विस्मयके साथ निरखता है कि यह सब कौनसा देश है ? ये लोग कौन हैं ? उस समय वहाँ उपस्थित हुए मंत्रीजन विनय पूर्ण वचनोंसे जवाब देते हैं और कहते हैं कि हे नाथ ! हम सब लोग आज धन्य हुए हैं। हम लोगोंका जीवन आज सफल हुआ है और आपने स्वर्गोंमें उत्पन्न होकर स्वर्गोंको पवित्र किया है। सीधा एकदम यों न कहकर कि यह स्वर्ग है, यह अमुक है एक अलंकार रूपसे या कुछ अन्य प्रशंसा रूपसे सर्व परिचय मंत्री गण दे रहे हैं और ठीक भी है। वहां जो इन्द्र होकर उत्पन्न होता है वह कुछ विशेष भाग्यशाली और धर्मात्मा जीव है। जिन्होंने मनुष्यभवमें धर्म का विशेष आचरण किया है, सम्यक्त्वकी ओर जिनकी विशेष भावना रहती है, आचरण भी जिनका पवित्र है और व्रत नियम आदिकसे भी जिन्होंने आत्माका पुण्य किया है ऐसे पुरुष ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इन्द्र जैसे महर्षिक देवोंकी पदवी प्राप्त करते हैं। ऐसे आत्माके प्रति धन्यवाद कहना और उस आत्माके स्वर्गमें आनेसे अपना जीवन सफल मानना यह एक प्राकृतिक ही बात है। लोकमें आत्माका एक धर्म ही शरण है। सर्वत्र दृष्टि पसारकर देखो—कहां जाना, कौन यहां शरण है। किसकी शरण पहुंचें तो आत्माको शान्ति प्राप्त हो? अपना शरण यहां अन्य कोई नहीं है। एक अपने ही आत्मामें बसा हुआ जो शुद्ध परमात्म तत्त्व है वह ही एक शरण है, ऐसे ही पुरुष इस इन्द्र पदवीको धारण करते हैं। रह गया उनका राग शेष, तो उस रागभावके कारण ऐसा विशिष्ट पुण्य बंध होता है कि जिससे स्वर्गोमें उच्च पदोंपर उनका अधिकार होता है। तो ये मंत्री जन कह रहे हैं कि हे नाथ! आपने इस स्वर्गको पवित्र किया है, अतएव हम सब स्वर्गवासी देव धन्य हो गए।

प्रसीद जय जीव त्वं देव पुण्यस्तवोद्भवः।
भव प्रभुः समग्रस्य स्वर्गलोकस्य सम्प्रति ॥१८११॥

उत्पन्न देवसे उपस्थित देवों द्वारा प्रसन्नताकी अभ्यर्थना—हे नाथ! आप प्रसन्न हूजिये, आप चिरंजीव रहिये। आपका उत्पन्न हुआ पुण्यरूप है। आप पवित्र हैं, आप इस स्वर्गलोकके स्वामी हूजिये। सौधर्म इन्द्र परिणाम कल्पके आधेसे अधिक स्थानके विमानके अधिकारी होते हैं। स्वर्गकी रचनामें कहीं अलग अलग रचना नहीं है कि यह सौधर्म स्वर्ग है और यह ईशान। किन्तु वहां पटलकी रचना है। तो इस मेरु पर्वतके ऊपर एक पलके अन्तर पर ऋजु विमान है, इन्द्रका विमान है, उसके चारों ओर पटलपर श्रेणीबद्ध विमान हैं और बीचमें प्रकीर्णक विमान हैं। उनमेंसे दक्षिण पूरब पश्चिम दिशाके विमान और इनके बीचके विदिशाके विमान और इनके बीचके अन्य सब प्रकीर्णक विमान—ये ३१ पटलोंमें ऐसे ऐसे घटते हुए भी जो विमान ऊपर चले गए हैं उन सबके वे अधिकारी होते हैं, और शेष बची हुई उत्तर दिशा, दो विदिशा और उसके मध्यके प्रकीर्णक देव अधिकार ऐसान इन्द्र होते हैं। सौधर्म स्वर्गका अधिकारी सौधर्म इन्द्र तो है ही किन्तु जब तीर्थंकरका जन्म होता है तो सौधर्म इन्द्र उन तीर्थंकर देवका पंचकल्याणक मनाते हैं। सौधर्म देवकी बहुत बड़ी हस्ती है। मंत्री जन सौधर्म इन्द्रका जयवाद कर रहे हैं। हे नाथ! आप प्रसन्न हूजिये। आप चिरंजीव हूजिये। हम सबपर आपकी कृपा बनी रहे। आपका जन्म बड़ा पवित्ररूप है, आपके जन्मसे आज यह स्वर्ग कृतार्थ हुआ है।

सौधर्मोऽयं महाकल्पः सर्वामरशतार्चितः।
नित्याभिनवकल्याणवार्द्धिवर्द्धनचन्द्रमाः ॥१८१२॥

उत्पन्न देवको जन्मस्थानके सम्बन्धमें प्रबोधन—हे नाथ! यह सौधर्म नामका महा स्वर्ग है। महास्वर्ग इसलिए कहा गया है कि सबसे अधिक विमान, सबसे अधिक संख्याके

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वर्ग ये हैं, और साथ ही एक इस बातपर ध्यान दीजिये कि जब कभी तीर्थंकरके पंचकल्याणक होते हैं और ऐसे अद्‌भुत समारोह होते हैं मानो सारा सौन्दर्य स्वर्गमें इकट्ठा हो गया है। यह सौधर्म इन्द्रका स्वर्ग महान स्वर्ग है। यह सैकड़ों हजारों देवोंसे सेवित है। अनेक देव इस स्वर्गमें निवास करके अपना सुख भोगते हैं और इस स्वर्गको बहुत बड़े महत्त्वकी दृष्टिसे देखते हैं। कवियोंकी एक कहावत है—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। जननी माता और जन्मभूमि हमें बहुत साधक है और जन्मभूमिको बताया है कि जो उत्पन्न करती है वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ होती है। तो बतलावो जिसकी स्वर्गसे उपमा दी जा रही है, जन्मभूमि स्वर्गसे भी श्रेष्ठ है, तो जो देव स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं उनकी जन्मभूमि तो स्वर्ग है। उस भूमिके आश्रयसे वे इन सांसारिक सुखोंको भोगते हैं और वहांके आधारको समय-समयपर धर्मसमारोहोंमें सम्मिलित होकर पुण्यबंध करते हैं। वे अपनी योग्यताके अनुसार धर्मपालन करते हैं। तो स्वर्ग उनकी जन्मभूमि है, और उन देवोंके द्वारा पूज्य है। जैसे इस भारतभूमिके लोग इस भारत को माता कहते हैं और इसकी पूजा करते हैं, भारतमाताकी जय आदिक बोलकर एक अपना भाव प्रदर्शित करते हैं। यों ही समझिये कि वहाँके देव अपनी जन्मभूमि स्वर्गके प्रति क्या क्या उच्च कामनाएँ न रखते होंगे ? तो यह स्वर्ग हजारों देवोंसे सेवित है। उन देवोंके समस्त कल्याणकी वृद्धिके लिए वह स्वर्ग निमित्त है अर्थात् उन देवोंका सर्व मंगल, सर्व मनोरथ, सर्व कल्याण जैसी उनकी भावना है उन सबकी सिद्धि इस स्वर्गमें होती है।

कल्पः सौधर्मनामायमीशानप्रमुखाः सुराः।
इहोत्पन्नस्य शक्रस्य कुर्वन्ति परमोत्सवम् ॥१८१३॥

देवोंका जन्मसमारोह—जब इन्द्र उत्पन्न होता है उस समयकी ये सब घटनाएँ बतायी जा रही हैं। उस समय ईशान इन्द्र और भी इन्द्र आदिक अनेक देव वहाँ खड़े होते हैं। कैसा अद्‌भुत समारोहका समय होता होगा ? यहाँ ही किसी सेठके घर कोई बालक उत्पन्न होता है तो कितनी खुशियां मनायी जाती हैं फिर वह तो स्वर्ग है, वहाँ कैसा अद्‌भुत समारोह मनाया जाता होगा, उसका वर्णन कौन कर सकता है ? ईशान आदिक इन्द्र अनेक देव सौधर्म इंद्रकी ओर मुख करके कुछ प्रतीक्षा करते हुए, अपने भाव प्रदर्शित करते हुए खड़े होते हैं तो मंत्री जन सौधर्म इन्द्रसे कह रहे हैं कि हे नाथ ! यह नामका कल्प है और ये ईशान आदिक प्रमुख देव हैं। ये सब यहाँ उत्पन्न हुए देवोंकी उत्पत्तिकी परमशोभा बनाते हैं, बड़ा उत्सव मनाते हैं, ये सब आपका जन्मोत्सव मनानेके लिए ही एकत्रित हुए हैं। उस इन्द्रके मनमें जो कुछ पहिले सम्भ्रम था कि मैं किस देशमें आया हूं और ये सब दिव्य रूप कौन लोग हैं, उन सबके समाधानमें मंत्री एक एक बातपर दृष्टि डालकर समाधान करते जा रहे हैं—हे नाथ ! ये सब आपके जन्मका परम उत्सव मनानेके लिए आये हुए हैं, यहाँ ऐसी परिपाटी है, और आपके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पुण्यका ऐसा ही प्रभाव है।

अत्र संकल्पिताः कामा नवं नित्यं च यौवनम्।
अत्राविनश्वरा लक्ष्मीः सुखं चात्र निरन्तरम् ॥१८१४॥

स्वर्गलोककी विशेषताओंका आख्यान—हे नाथ! इस स्वर्गमें वाञ्छित पदार्थ भोगने योग्य हैं, ऐसा पुण्यफल है यहाँ कि जो कुछ चाहा जाय उसकी प्राप्ति तुरन्त होती है। यहाँ तो किसी वस्तुका निर्माण करना हो तो उस वस्तुकी प्राप्तिमें विलम्ब न लगेगा। किसी वस्तु का व्यापार करना हो तो कहींसे मंगानेमें विलम्ब लगेगा लेकिन वहाँ सर्व भोग भूमिकी चीजें कल्पवृक्षके निमित्तसे प्राप्त होती हैं। तो ज्यों ही इच्छा की, बस कुछ ही क्षणोंमें उस वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है। दृष्टान्त भी दिया जाता है। जैसे धर्म भावनामें बताया है कि—जाचै सुरतरुदेय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन। बिन जांचे बिन चितये धर्म सकल सुख दैन॥ धर्म सर्व सुखोंका देने वाला है, ये कल्प वृक्ष तो याचना करनेसे जो भी चाहा उस ही फलको देते हैं। यहाँ यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि कल्पवृक्ष भी अगर सुखके साधन देते हैं, चिंतामणि आदिक रत्न भी सुखके साधन देते हैं तो उस ही पुरुषको तो वे सुख साधन मिलते हैं जो किसी भी रूपमें धर्मधारण करता है। तो धर्म ही प्रधान हुआ। समस्त सुखोंकी प्राप्तिके लिए कारण धर्म ही हुआ। क्योंकि उस धर्मके बिना, उस पुण्यके बिना तो यह कल्पवृक्ष और चिन्तामणियोंका भी समागम नहीं मिलता है। मंत्री जन कह रहे हैं कि हे नाथ! इस स्वर्ग के सर्व मनोवाञ्छित पदार्थ भोगने योग्य हैं। यहाँ नित्य नवयौवन है, वैसी ही लक्ष्मी है। निरन्तर सुख ही सुख है। ऐसा सुखोंका विशिष्ट धाम यह स्वर्ग है। मंत्री उन सब समागमों का परिचय दे रहे हैं। यद्यपि यह इन्द्र अभी थोड़ी ही देरके बादमें अवधिज्ञानसे इससे भी अधिक जानेंगे, निर्णय करेंगे, किन्तु अवधिज्ञानको जब उपयोगमें लिया जाय तब ही जानेंगे न, यहां नई जगहमें उत्पन्न हुआ है, नये समागमोंको देख रहा है तो अवधिज्ञानका उपयोग नहीं किया जा रहा है, फिर भी बहुत कुछ तो देखते ही परिचय मिल जाता है, और ये मंत्री जन उसका परिचय करा रहे हैं।

स्वर्विमानमिदं रम्यं कामजं कान्तदर्शनम्।
पादाम्बुजनता चेयं तत्र त्रिदशमण्डली ॥१८१५॥

स्वर्गलोक विमानकी विशेषताओंका उपस्थित देवों द्वारा उत्पन्न देवके प्रति आख्यान—हे नाथ! यह स्वर्गका विमान है, इससे जहाँ चाहें वहीं जा सकते हैं। देखिये एक तो होता है आवास विमान, जिसकी बहुत बड़ी लम्बाई चौड़ाई होती है। वह विमान जमीनकी तरह होता है पर उसके भीतर जो बसने वाले देव हैं उनके वहाँ सुन्दर भवन आदिकी स्वतःसिद्ध रचना होती है तो एक मोटे रूपसे वे सब विमान हैं, जो एक बहुत लम्बे चौड़े पृथ्वीके रूपमें

http://sahjanandvarnishastra.org/

पड़े हुए हैं। उसमें और भी विमान होते जाते हैं। यहाँ विराज रहे हैं, उस विमानकी बात कह रहे हैं कि यह स्वर्गीय विमान है, इससे जहाँ जाना चाहें वहीं जा सकते हैं। इनका दर्शन अति मनोहर है। यह देवोंकी मंडली आपके चरण कमलोंमें नम्रीभूत है। देखिये देवोंको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं, कोई शारीरिक वेदना नहीं, किसी भी प्रकारकी पराधीनताका कोई अवसर ही नहीं। शरीर सम्बंधी वेदनाओंको मिटानेकी जब नौबत होती है तब पराधीनता आया करती है, पर देवोंमें पराधीनताका क्या सवाल, लेकिन पुण्य पापके फल वहां भी किसी न किसी रूपमें पाये जाते हैं। पुण्यफल तो यों है कि वे सभी देव मनोवाञ्छित सुखोंकी सामग्री प्राप्त करते हैं और पापके फलमें यही कह लीजिए कि इन्द्रादिक बड़े देवोंकी हाँ हुजूरी में खड़े रहना पड़ता है कि यह इन्द्र मुझपर प्रसन्न रहे तो समझो मेरा जीवन सफल है। खैर मंत्री सब परिचय करा रहा है कि यह देवोंकी जो सभा बैठी है यह आपके चरणकमलोंमें नम्रीभूत है, बड़े विनयसे ये सब देव आपकी ओर निहार रहे हैं।

एते दिव्याङ्गनाकीर्णाश्चन्द्रकान्ता मनोहरा: ।
प्रासादा रत्नवाप्यश्च क्रीडानद्यश्च भूधरा: ॥१८१६॥

प्रासाद, रत्नवापी, क्रीडानदी व भूधरोंका आख्यान—और और भी जो कुछ दृष्टि गोचर हो रहे हैं उन सबका परिचय देते जा रहे हैं। यह मनोहर अप्सराओंसे भरा हुआ चन्द्रकान्तिके समान आपका प्रासाद है, इस आपके प्रासादमें पुण्यवंती देवांगनाएँ निवास करती हैं। देखिये कितना विचित्र कान्तिमय जीवन है उनका, जो यहाँके लोगोंसे तुलना करते हैं तो वे अद्भुत दिखते हैं। यहाँके शरीर मलमूत्रादिसे पूरित हैं, खून, हड्डी आदिक सप्त धातुवें यहाँके शरीरोंमें भरी हुई हैं किन्तु उन देवोंका शरीर उन सप्त प्रकारकी धातुवोंसे रहित है। उनके शरीरमें न पसीना है और न बुढ़ापा ही है। वे देव बड़े विलक्षण हैं। मनोवांछित भोगसामग्री उन्हें प्राप्त होती है। कैसा सुखमय उनका जीवन है ? साथ ही यह भी सोचिये कि उस दिव्य जीवनसे उनका निर्वाण नहीं होता। निर्वाण जो भी प्राप्त करता है वह मनुष्य बनकर ही करता है। इससे श्रेष्ठ भव तो मनुष्यका है मगर इसका ठीक मोक्षमार्गके लिए उपयोग करें तब तो श्रेष्ठ है और अगर सर्व संसारी प्राणियोंकी ही तरह बन्धनके फंसते रहनेका काम करेंगे तो फिर इस मनुष्यभवका पाना न पाना बराबर है। मंत्री जन सौधर्म इन्द्रसे कह रहे हैं कि ये सब रत्नमयी वाटिकायें हैं जहाँपर ये देव और देवांगनायें विहार करके अपने चित्त को प्रसन्न करते हैं।

सभाभवनमेतत्ते नतामरशतार्चितम् ।
रत्नदीपकृतालोकं पुष्पप्रकरशोभितम् ॥१८१७॥

सभाभवनका निर्देशन—हे नाथ ! यह सभा भवन है। जब यहाँ ही विधान सभा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदिक ऐसे उत्कृष्ट स्थान, बहुत मनोहर और विशाल बनाये जाते हैं तो समझिये कि सौधर्म स्वर्गमें जो सौधर्म इन्द्रका मुख्य सभाभवन होगा वह कितना विचित्र और रत्नादिककी कांति से जगमगाने वाला और विशाल होगा ? उसकी ओर इशारा करके मंत्री जन कह रहे हैं कि हे नाथ ! यह सभाभवन है जो समस्त देवोंके द्वारा सेवने योग्य है जहाँ सभासद् अपनी धर्म वार्ता करते हैं, धर्मश्रवण करते हैं और नई नई समस्यावोंपर विचार करते हैं, समाधान करते हैं। यह सब कुछ रत्नमयी दीपकोंसे प्रकाशभूत हो रहा है, यह जीवनका एक उत्तम स्थान है। स्वर्गोंमें सूर्य और चन्द्र नहीं होते हैं। वहाँ दिव्य रत्नोंका, कल्पवृक्षोंका अद्भुत प्रकाश है जिसके कारण वहाँ सदा दिनसा ही बना रहता है। दिन रातका वहाँ कोई विभाजन नहीं होता है, लेकिन समय नामक पर्याय काल द्रव्यमें परिणमती है, उसे कोई नहीं टाल सकता। कहीं सूर्यका उदय होनेसे समय बनता हो यह बात नहीं है, समय तो अपने आप बन रहा है, पर यह समयकी सूचना देने वाला है। जैसे घड़ी चलती है तो घड़ीकी सूई समयकी सूचना देती है कि अब इतने मिनट हो गए, लेकिन घड़ी समय नहीं बनाती है। समय तो कालद्रव्य के परिणमनसे बनता रहता है। इसी प्रकार यह सूर्य चलकर समयकी सूचना देता है। घड़ी की छोटी सूई जब एक पूरा चक्कर लगाती है तो १२ घंटा कहलाते हैं तो सूर्यका भी देखनेमें आया हुआ यह चक्कर पूरा लग जाय तो वे १२ घंटे कहलाते हैं, और भी अनेक संकेतोंसे समयका ज्ञान होता है। तो ये सब समयका ज्ञान करानेके साधन हैं, पर समय नहीं बनाते, समय तो स्वयं ही बराबर व्यतीत होता रहता है और वह समय जाना भी नहीं जाता कि कितना समय बीत गया ? समय वहां है परंतु दिन रातका भेद नहीं है। वहाँ रत्नछटाका इतना अद्भुत प्रकाश है कि जहाँ सदा ही वह प्रकाश बना रहता है।

विनीतवेषधारिण्यः कामरूपा वरस्त्रियः।
तवादेशं प्रतीक्षन्ते लास्यलीलारसोत्सुकाः ॥१८१८॥

आदेशप्रतीक्षामें स्थित देवाङ्गनाओंके विषयमें प्रबोधन—ये सब खड़ी हुई जो सुन्दर देवांगनायें हैं ये बहुत चतुर हैं, विनयशील हैं, सुन्दर भेष धारण करने वाली हैं, नृत्य बाजे संगीत आदिक रसोंमें ये उत्सुक हैं। ये आपके सामने नृत्य गायन आदि करनेके लिए, आपका चित्त प्रसन्न करनेके लिए आपकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रही हैं। देखो यहीं जब कोई बालक उत्पन्न होता है तो उस बालकको तो दो चार माह तक अपनी भी कुछ सुधि नहीं होती। उसे नहीं पता पड़ता कि ये लोग जो खड़े हुए हैं मेरे पास वे कौन हैं ? वह तो जब ८-१० वर्षका हो जाता है तब सारी बातें सीखता है, मगर ये देव तो उत्पन्न होनेके बाद एक मिनट के अंदर ही युवावस्था सम्पन्न हो जाते हैं। सब कुछ समझ जाते हैं, तो उत्पन्न होते ही ये सब समारोह भी बन जाते हैं. और इतनी बातचीतें भी चल रही हैं। मंत्रीजन कह रहे हैं कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हे नाथ ! यह सब अप्सरावोंका समूह है जो आपका यह संकेत चाह रही हैं कि मैं आपका संकेत पाऊँ तो गीत बाजे नृत्य आदिसे उत्सव मनाऊँ । यहाँ भी पुत्रोत्पत्तिके समयमें लोग बड़े-बड़े उत्सव मनाते हैं । वहाँ वह देव जो कि अभी ही उत्पन्न हुआ, बालकके रूपमें है वह यहांके बालकोंकी तरह बेसुध तो नहीं है; वह तो महा बुद्धिमान है, श्रेष्ठ मन वाला है और अन्तर्मुहूर्तमें ही नवयुवक हो जाता है, समस्त श्रुत ज्ञानका वेत्ता, द्वादशांगका वेत्ता भी होता है, केवल एक अंग बाह्यका परिचय जरा कम रहता है, तो ऐसे उच्च बुद्धिमान सौधर्म इंद्रसे मंत्री जन कह रहे हैं कि हे नाथ ! ये अप्सरायें आपको प्रसन्न करनेके लिए गीत नृत्य आदि करना चाहती हैं, ये आपके संकेतकी प्रतीक्षामें हैं ।

आतपत्रमिदं पूज्यमिदं च हरिविष्टरम् ।
एतच्च चामरव्रातमेते विजयकेतवः ॥१८१९॥

उत्पन्न देवसे संबंधित सिंहासनादि वस्तुओंका प्रबोधन—अब उस इन्द्रके समीप जो आभूषण हैं, जो शोभा है उसका वर्णन वे मंत्री कर रहे हैं । हे नाथ ! यह आपका सिंहासन है, उस इन्द्रके सिंहासनपर बैठनेका साहस किसी दूसरेका नहीं होता । यहां भी स्कूलोंमें अगर अध्यापक मौजूद नहीं हैं तो किसी भी विद्यार्थीको उसकी कुर्सीपर बैठनेकी हिम्मत नहीं पड़ती । वे सोचते हैं कि कहीं अध्यापक महोदय आ न जायें, या कोई शिकायत न कर दे, न्यायालय वगैरहमें भी किसी बड़े आफीसरकी कुर्सीपर बैठनेकी किसीको हिम्मत नहीं पड़ती । ऐसी ही बात उस स्वर्गकी समझो । इन्द्रके सिंहासन पर कोई दूसरा देव बैठनेका साहस नहीं करता । तो मंत्रीजन कहते हैं कि हे नाथ ! आपका यह सिंहासन पूज्यनीय है । हे नाथ ! यह आपका सिंहासन, यह चमरोंका समूह और ये आपकी विजयकी सूचक ध्वजायें हम सब देवोंके लिए पूज्यनीय हैं ।

एना अग्रे महादेव्यो वरस्त्रीवृन्दवन्दिताः ।
तृणीकृतसुराधीशलावण्यैश्वर्यसम्पदः ॥१८२०॥
शृङ्गारजलधेर्वेलाविलासोल्लासितभ्रुवः ।
लीलालङ्कारसम्पूर्णास्तव नाथ समर्पिताः ॥१८२१॥
सर्वावयवनिर्माणश्रीरासां नोपमास्पदम् ।
यासां श्लाघ्यामलस्निग्धपुण्याणुप्रभवं वपुः ॥१८२२॥

पट्टदेवियोंके विषयमें प्रबोधन—ये सब आपकी पट्ट देवियां हैं । ये श्रेष्ठ देवांगनायें देवों द्वारा वंदित हैं, ये बहुत पूज्यवती हैं और श्रेष्ठ परिणाम वाली हैं । इनमें जो प्रधान इन्द्राणी होती है उसका यह नियम है कि वह एक भव धारण करके मुक्त हो जाती है । जब तीर्थंकर देवका जन्म होता है तो सर्व प्रथम उस सचि देवोकी ही उन तीर्थंकर देवका दर्शन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होता है, ऐसा उस सचि देवीका सौभाग्य होता है। इसी प्रकार अन्य भी अग्र महर्षियां भी पुण्यवान आत्मा हैं, उनकी सेवा समस्त देव करते हैं। वह सचि देवी अपने आपका उस समय बड़ा गौरव अनुभव करती है और उस इन्द्रके सारे समागमोंको वह तुच्छ समझती है। इसको यों समझ लीजिये कि जैसे मनुष्योंमें पतिव्रता स्त्री जो एक मात्र पतिसे अपना महत्त्व समझती है वह वैभवको तुच्छ गिनती है और पतिके स्नेह और कृपाको महत्त्व दिया करती है। तो ये देवियां शृंगाररूप समुद्रकी लहरोंके समान चंचल हैं। सो हे नाथ ! ये सब देवियां आपके चरणोंमें समर्पित हैं। ये सब आपके चरणोंकी सेवाके लिए आयी हैं। इनकी शोभा अनुपम है, इनका शरीर योग्य चिकने पवित्र परमाणुवोंसे बना हुआ है। घृणारहित उनका शरीर है, सभी उत्तम वर्गणावोंसे इनका शरीर बना हुआ है, ये सब आपके चरणोंमें समर्पित हैं अर्थात् आपकी सेवाके लिए इनका जीवन है, आप इन्हें स्वीकार करें, इस प्रकार मंत्रीजन उत्पन्न हुए सौधर्म इन्द्रको समस्त वार्ता बता रहे हैं।

अयमैरावणो नाम देवदन्ती महामनाः।
धत्ते गुणाष्टकैश्वर्याच्छ्रियं विश्वातिशायिनीम् ॥१८२३॥

ऐरावण देवदन्तीके सम्बन्धमें प्रतिबोधन—ज्ञानी पुरुष ४ प्रकारके धर्मध्यानोंका ध्यान करता है—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। अर्थात् कभी तो जिनेन्द्र भगवानकी आज्ञाको प्रधानता देकर ध्यान करते हैं, कभी रागादिक भाव कैसे दूर हों इस प्रकारकी चिन्तना सहित ध्यान करते हैं, कभी कर्मोंके नाना फलोंका विचार करके ध्यान करते हैं और संस्थानमें समस्त लोककी रचनाओं और भूतकालमें जो हो उस सबका स्मरण करके धर्मध्यान करते हैं। इस प्रसंगमें ऊर्ध्व लोकका चिन्तन किया जा रहा है। जब कोई पुण्यवान आत्मा उस सौधर्म इन्द्रके पथपर उत्पन्न होता है तो वह उपपादशय्यापर जैसे ही उत्पन्न हुआ कि वहांके देव उसका बड़ा समारोह मनाते हैं। उस समय वह इन्द्र जो अभी अभी उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही उन सब दृश्योंको देखकर सम्भ्रम करता है कि यह कौन सा नगर है, ये कौन लोग खड़े हैं, जब ऐसी मनमें शंकासी करता है तो उस समय वहां खड़े हुए मंत्री लोग सौधर्म इन्द्रके उत्पन्न होनेमें उसे व सबको सब कुछ परिचय कराते हैं। इस परिचयमें अन्य अनेक परिचय कराते हुए इस समय ऐरावत अथवा ऐरावण हस्तीकी ओर ध्यान दिला रहे हैं। हे नाथ ! यह ऐरावत नामका देव हस्ती है। वह कोई तिर्यञ्च नहीं है किन्तु देव ही है। वह प्रायः हस्तीका ही रूप रखता है। हम और भी अनेक रूप रखते हैं पर इस ऐरावतको हस्तीका रूप रखना अधिक पसंद है, और सौधर्मइन्द्र जब जब चलते हैं तो उनके वाह्यके रूपमें वह देवहस्ती आया करता है। तो हे नाथ ! यह ऐरावत नामका देव-हस्ती है जो उदार चित्त वाला है और ८ प्रकारकी ऋद्धियोंसे युक्त है। कभी अपना शरीर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बहुत छोटा बना ले और कभी बहुत बड़ा बना ले, कभी अत्यन्त हल्का शरीर बना ले और कभी अत्यन्त वजनदार। ऐसे नाना रूपोंको जो बना सके ऐसी ऋद्धियों करके सहित है वह देवहस्ती। यह ऐसी शोभाको रख रहा है जिसकी शोभाका दूसरा हस्ती विश्वमें कहीं न मिलेगा। यह आपकी सेवामें खड़ा हुआ है।

इदं मत्तगजानीकमितोऽश्वीयं मनोजवम्।
एते स्वर्णरथास्तुङ्गा वल्गन्त्येते पदातयः ॥१८२४॥

हाथी, अश्व, रथ, पदाति सेनाके विषयमें प्रबोधन—अब मंत्री उस सेनाके सम्बंधमें परिचय दे रहे हैं कि हे नाथ! यह आपकी मदोन्मत्त हाथियोंकी सेना है। वहीं वे हाथी तिर्यञ्च नहीं हैं, वे सब देव ही हैं, वहाँ कोई कष्टकी बात नहीं है, भूख, प्यास, क्षुधा, तृषा आदिककी वहाँ कोई वेदनाएँ नहीं हैं पर कुछ देवोंके कर्मोंका उदय ही ऐसा है कि जो अधिक पुण्यवान देवोंकी सेवा किया करते हैं। तो यह बहुत प्रचण्ड बलशाली मदोन्मत्त अनेक कलावों सहित हस्तियोंकी सेना है और यह देखो बड़े वेग वाली अश्व सेना है। वहाँ कोई अस्व (तिर्यञ्च) भी नहीं हैं, वे देव ही हैं जो अश्वका रूप रख लेते हैं। यह चर्चा स्वर्गोंकी चल रही है। स्वर्ग और नरक ये यद्यपि आंखों नहीं दिख रहे लेकिन जो वर्णन जैन शासनमें किया गया है स्वर्ग और नरकोंके सम्बंधमें वह सब यथार्थ है। कैसे यथार्थ है उसे एक युक्ति से ही परख लीजिये। जिनेन्द्र देवने जितना जो कुछ वर्णन किया इस समस्त वर्णनमें कुछ वर्णन तो युक्ति और अनुभवमें उतारा जा सकता है और कुछ वर्णन ऐसा है कि सामने ही नहीं है, विचार ही क्या करें? युक्ति अनुभव कहाँ लगायें, कुछ ऐसी परोक्षभूत चीजका वर्णन है, किन्तु जब हम जिनेन्द्र देवके उपदेशमें से ७ तत्त्व ९ पदार्थ वस्तुस्वरूप आदिकको हम यथार्थ वर्णन पाते हैं तो युक्ति और अनुभवमें पूर्ण उतरता है। वस्तुका स्वरूप जैसा नपे तुले नय और शब्दोंमें वर्णन किया है वह सब युक्ति और अनुभवमें पूर्ण उतरता है। तो जिनकी वाणी युक्ति और अनुभवजन्य स्वरूपको यथार्थ बता रही है तो उनके समस्त वचन प्रमाणभूत हैं। कितनी ही चीजें हम आँखों नहीं देखते हैं परन्तु हैं तो सही। तो जिनके धर्म और पुण्यके कर्म हैं उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति होती है: जिन्होंने अधर्म और पापके कर्म किये हैं उन्हें नरक गति प्राप्त होती है। इन्द्रको परिचय कराया जा रहा है कि हे देव! इस तरफ देखो ये सब स्वर्ण रथ हैं। स्वर्ण निर्मित यह आपके रथकी सेना है, और इस तरफ देखो ये ऊँट खड़े हुए हैं, यह सब आपकी पदातियोंकी सेनाका समूह है, इस प्रकार सेनाओंका परिचय कराया जा रहा है उस नवीन उत्पन्न हुए सौधर्म इंद्रको।

एतानि सप्तसैन्यानि पालितान्यमरेश्वरैः।
नमन्ति ते पदद्वन्द्वं नतिविज्ञप्तिपूर्वकम् ॥१८२५॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सप्त सेनाओंका जात सुरेशके प्रति नमन—यह ७ प्रकारकी सेना है। यह परम्परासे पूर्ण थी, इन्द्रोंके द्वारा पालित की गई है। अर्थात् आपसे पहिले जो इंद्र था उस इंद्रने समस्त सेनाको बड़ी प्रीतिसे पालन किया है। यह सब सेना केवल वैभवरूप है, इन्द्रोंको अपनी रक्षा के लिए इस सेनाकी जरूरत नहीं है। ये ७ प्रकारकी सेनायें हे नाथ ! आपसे निवेदन कर रही हैं ये सब आपको कुछ विज्ञप्ति करते हुए आपको नमस्कार कर रहे हैं।

समग्रं स्वर्गसाम्राज्यं दिव्यभूत्योपलक्षितम्।
पुण्यैस्ते सम्मुखीभूतं गृहाण प्रणतामरम् ॥१८२६॥

स्वर्गसाम्राज्यके स्वीकरणका आवेदन—यह समस्त स्वर्गका साम्राज्य जो दिव्य विभूति कर सहित है तुम्हारे पुण्यके कारण तुम्हारे सम्मुख हाजिर है। हे नाथ ! इस सब सामग्रीको आप ग्रहण कीजिये जिसमें ये नम्रीभूत समस्त देव भी सम्मिलित हैं। जो मनुष्य अपने पाये हुए समागमोंमें बहुत आसक्ति रखता है, उसमें ममता रखता है तो वह मनुष्य इस भवमें उन सब समागमोंका सुख भोग ले, पर वह आगेके लिए तो अपने सारे पुण्यको खो देता है। जो पुरुष पाये हुए वैभवमें ममता नहीं रखता है, यथार्थता समझता है, मिला है तो क्या है, आखिर पुद्गल ही तो है, मेरे स्वरूपसे जुदा ही तो है, इससे भी अधिक वैभव बहुत-बहुत भव भवमें मिला है, पर यह सब विनाशीक है, जुदा है, मैं इसमें कुछ नहीं करता यह वैभव मुझमें कुछ नहीं करता। मैं अपने आप सत् हूं, यह वैभव अपने आपमें परिणमन करता है, मेरा इससे कुछ सम्बंध नहीं, ऐसा जो प्रत्यय रखता है, जिसे ऐसा सच्चा विश्वास है ऐसा पुरुष व्रत नियम संयम दान आदिक आचरण करता है तो उस अनुरागके प्रतापसे ऐसा पुण्य बंध होता है कि उसे स्वर्गमें आकर बहुत बहुत पदवियां मिलती हैं। तो मंत्री जन उस सौधर्म इंद्रसे कह रहे हैं कि यह सारा स्वर्ग साम्राज्य आपका है, सभी देव आपकी कृपाके अभिलाषी हैं, इन सबको आप स्वीकार कीजिये।

इति वादिनि सुस्निग्धे सचिवेऽत्यन्तवत्सले।
अवधिज्ञानमासाद्य पौर्वापर्यं स बुद्धचति ॥१८२७॥

सुरेशका अवधिज्ञानबलसे सर्व रहस्यका प्रबोध—जब मंत्रियोंने उस नवीन उत्पन्न हुए सौधर्म इन्द्रको स्वर्गकी विभूतिका परिचय कराया बड़े मीठे वचनोंसे बड़ी प्रेमयुक्त वाणी से बड़ी नम्रतामें और श्रद्धा प्रगट करने वाले वचनोंसे, उस इन्द्रको सम्बोधित किया, उसका गुणानुवाद किया तो उस समय यह इन्द्र स्वयं अवधिज्ञानको प्रकट करके पहिले और बादकी समस्त बातोंको स्पष्ट जान जाता है। यह देव जब उत्पन्न होता है तो कुछ ही मिनटोंमें यह जवान हो जाता है। मनुष्य तो १५—१६ वर्षोंमें जवान हो पाते हैं पर देव कुछ ही मिनटोंमें युवा बन जाते हैं। उसे अन्तर्मुहूर्तका समय कहा गया है। तो अन्तर्मुहूर्त तक अवधिज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं हो पाता। क्षायोपशमिक ज्ञान तो है किन्तु उसका उपयोग नहीं करते और अन्तर्मुहूर्त बाद मंत्रियोंने बताया उसको सुनकर अवधिज्ञानको प्राप्त करता है और अवधिज्ञानके द्वारा सब कुछ पहिले और बादकी बातें समझ जाता है। किस प्रकार समझा सौधर्म इंद्रने, उसका वर्णन आचार्यदेव कर रहे हैं।

अहो तपः पुरा चीर्णं मयान्यजनदुश्चरम्।
वितीर्णं चाभयं दानं प्राणिनां जीवितार्थिनाम् ॥१८२८॥

पुण्यफल देखकर सुरेश द्वारा पूर्वकृत तप आचार आदिका स्मरण—यह इन्द्र अवधिज्ञानसे सब कुछ जानकर अपने मनमें सोच रहा है कि अहो! देखो मैंने पूर्व भवमें ऐसा तपश्चरण किया, धर्म किया जो अन्य जनोंसे भी न पाला जाय उस तपके प्रसादसे आज देखो मैं नीची गतिसे निकलकर एक दिव्य गतिमें उत्पन्न हुआ हूं। सौधर्म इन्द्रकी पदवी पाना यह बहुत बड़े पुण्यकी बात है, और जो संयम धारण करता है, तपश्चरण धारण करता है, बड़े विनयका परिणाम उत्पन्न होता है ऐसा पुरुष ही कोई सौधर्म इंद्र पदको प्राप्त करता है। धर्मका समागम हो तो उसके प्रसादसे यह पदवी प्राप्त होती है। ज्ञानी पुरुष इस पदवीको भी कुछ महत्त्व नहीं देते हैं। यह सब संसारका ही तो चक्र है। इस आत्माको इस पदवीमें भी सत्य संतोष नहीं प्राप्त होता, क्षोभ ही रहता है। इन वैषयिक सुखोंके भोगनेमें भी इस आत्माको शांति नहीं प्राप्त होती। शांति तो इस आत्माको अकेला ही रहनेमें है। यह मैं आत्मा सबसे निराला ज्ञानानंदमात्र केवल अपने ही ज्ञान और आनंद परिणमनको कर सकने वाला और इस ही ज्ञानानंदके परिणामको भोग सकने वाला मैं निराला सबमें आला आत्मवस्तु हूं। इस प्रकार जो आत्मतत्त्वका ध्यान करता है वही तो जानने वाला ज्ञान और वही जाननेमें आ रहा ज्ञान, जब ज्ञान ज्ञेय एक हो जाते हैं उस समय इस ज्ञानी पुरुषको जो अद्भुत आत्मीय आनंदका अनुभवी होता है तो आनंद तो वास्तवमें वह है। ये सांसारिक मायाजाल आनंदके स्थान नहीं हैं। ज्ञानी तो यह सोचता है और यह सौधर्म इंद्र भी ज्ञानी होकर इस वैभवमें आसक्त नहीं होता है, वह भी यथार्थ बात समझता रहता है लेकिन पुण्यका फल इन्हीं रूपोंमें फला करता है। अज्ञानी जन तो इस पुण्यफलकी चाह करते हैं पर ज्ञानी जन इस पुण्यफलकी भी चाह नहीं करते। वह इन्द्र विचार करता है कि देखो मैंने पूर्वभवमें दुस्तर तपश्चरण किया, अनेक जीवोंको मैंने अभयदान दिया, उसके प्रतापसे आज इस स्वर्ग लोकमें मैं आया हूं, ऐसा अवधिज्ञानसे पूर्व भवके आचरणोंका वह विचार करता है। यह सब धर्मका माहात्म्य है।

आराधितं मनःशुद्धया दृग्बोधादिचतुष्टयम्।
देवश्च जगतां नाथः सर्वज्ञः परमेश्वरः ॥१८२९॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पूर्वकृत चतुर्विध आराधनाका स्मरण—वह इंद्र अवधिज्ञानसे और भी वह विचार कर रहा है कि मैंने दर्शन ज्ञान चारित्र और तप—इन चार आराधनाओंसे उस परमतत्त्वका आराधन किया था। प्रत्येक मनुष्यके चित्तमें कोई एक मुख्य बात आराधनाके लिए रहा करती है। जिसमें जिससे प्रीति हो वह उसकी आराधना निरंतर किया ही करता है। धनसे प्रीति करने वाला पुरुष निरंतर इस धनके संचयकी ही बात सोचा करता है। किसी पुरुषको अपनी स्त्री अथवा अपने पुत्रमें अधिक प्रीति है तो वह निरन्तर उसका ही ध्यान बनाये रहता है। उसीके ही स्वप्न वह सदा देखा करता है। प्रयोजन यह है कि हर एक मनुष्य किसी न किसी तत्त्वकी आराधना किया करता है। संसारी जन तो बाह्य पदार्थोंकी आराधना करते हैं किंतु ज्ञानीजन सम्यग्दृष्टि पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्र और तपकी आराधना करते हैं। ये आराधनाएँ सब एक ही हैं। अपने आत्माकी आराधना, अपने आत्माके दर्शन गुणकी आराधना, ज्ञानस्वरूपकी आराधना ये सब एक ही बात हैं। ज्ञानी लोग तो अपने आन्तरिक तपश्चरण करनेमें अपना उत्साह बढ़ाते रहते हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप—इन चारों आराधनावों को जिस देवने पूर्वके मनुष्यके भवमें किया था उनका स्मरण अब वह कर रहा है, ओह! मैंने पूर्वभवमें अपने मनको शुद्ध करके दर्शन ज्ञान चारित्र और तप आदिक आराधनाओंको किया था, उसके फलमें आज मैं स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हूं। वह इंद्र विचार कर रहा है। पहिले तो इस प्रकारकी शंकायें की थीं कि मैं यहाँ कहाँ आ गया, ये सब पदार्थ क्या हैं, यह कौन सा स्थान है, यह कौनसा क्षेत्र है, यह कौनसा देश है आदिक शंकायें पहिले तो किया था, पर बादमें मंत्रियोंने परिचय दिया। वह खुद अवधिज्ञानके बलसे सब कुछ जान रहा है, और किस आचरणके प्रतापसे मैं यहाँ स्वर्गोंमें उत्पन्न हुआ, कैसे यह सब सम्पदा प्राप्त हुई है, उसका भी स्मरण कर रहा है।

निर्दग्धं विषयारण्यं स्मरवैरी निपातितः।
कषायतरवश्छिन्ना रागशत्रुर्नियन्त्रितः ॥१८३०॥

पूर्वकृत विषयकषायविजयका स्मरण—वह इंद्र विचार कर रहा है कि मैंने पूर्व भव में इन्द्रियके विषयोंसे परम उपेक्षा की थी, सम्यग्ज्ञानके बलसे यह उपयोग बनाया था कि ये विषयोंके उपभोग एक सरीके बेकारकी चीजें हैं, ये औपाधिक भाव हैं, मेरे स्वरूप नहीं हैं, इनसे मेरा कोई हित नहीं है, यों जानकर विषयोंसे उपेक्षा की थी, इस विषयवनको जला दिया था, कामरूपी शत्रुका नाश किया था। इन देवोंका बैरी एक कामभाव भी है जिस काम वासनामें आसक्त होकर मनुष्य अनेक उपद्रवोंमें पड़ जाता है, ऐसा यह कामभाव जो एक मनोज है उसका मैंने विनाश कर डाला था, सर्व परिग्रहोंसे मैंने मूर्छा परिणाम हटाया था, मैंने अपनी कषायोंको मंद किया था, दूसरे प्राणियोंको सतानेका मनमें भाव न आया था, मैंने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसीकी झूठ बात न बोली थी, किसीकी निंदा न की थी, परवस्तुवोंको अहितकर समझकर उनसे दूर रहा था, और भी वह इंद्र निरंतर विचार करता जा रहा है कि मैंने पूर्वभवमें इस राग शत्रुपर आक्रमण किया था, इन समस्त बातोंके कारण ही मुझे स्वर्ग प्राप्त हुआ है और यह सारो साम्राज्य प्राप्त हुआ है। इस जीवका मुख्य बैरी राग है। इस ही राग भावके कारण यह जीव निरन्तर दुःखी होता रहता है, फिर भी इसका इसे कुछ ख्याल नहीं होता। आप एक यह विचार कीजियेगा कि जितने भी क्लेश इस जीवको प्राप्त होते हैं वे रागभावके कारण प्राप्त होते हैं। चाहे स्त्री पुत्रादिकका राग हो, चाहे मान प्रतिष्ठाका राग हो, सभी जगह दुःख इस रागभावके कारण प्राप्त होता है। तो वह इन्द्र विचार करता है कि इस रागभावको भी मैंने पूर्वभवमें ठुकराया था अर्थात् रागबैरीका विनाश किया था जिसके कारण मुझे आज यह स्वर्ग प्राप्त हुआ है और स्वर्गका यह सब इतना बड़ा साम्राज्य प्राप्त हुआ है।

सर्वस्तस्य प्रभावोऽयमहं येनाद्य दुर्गतेः।
उद्धृत्य स्थापितं स्वर्गराज्ये त्रिदशवन्दिते ॥१८३१॥

पूर्वकृत पुण्यधर्माचारके फलका निर्णय—जो जो कुछ तपश्चरण व्रत, संयम, दया, दान और परोपकार आदिक कार्य मैंने पूर्व भवमें किए थे उसीका यह प्रभाव है कि मैं दुर्गति से निकलकर स्वर्ग राज्यमें उत्पन्न हुआ हूं। यद्यपि मनुष्यभव कोई दुर्गति नहीं है लेकिन सांसारिक दृष्टिसे मनुष्यभवमें चूंकि रक्त आदिक धातुवें हैं, नाना प्रकारके संकट हैं, घृणाके बहुत स्थान हैं उस दृष्टिसे यह दिव्य शरीर कुछ विशिष्टता रख रहा है इस कारण यहाँ उद्धार की बात कही गई है। वैसे तो जीवका उद्धार मनुष्यभवसे ही होता है, कोई भी सिद्ध ऐसा नहीं है जो कि मनुष्य न होकर अन्य किसी गतिसे सिद्ध हुआ हो? चाहे कोई नरकसे आकर मनुष्यभव पाकर मोक्ष गया हो या कोई तिर्यञ्चसे आकर मनुष्यभव पाकर मोक्ष गया हो, अथवा देवगतिसे आकर मोक्ष गया हो, किंतु जो भी पुण्यात्मा मोक्ष गए हैं वे मनुष्यभवको पाकर ही मोक्ष गए हैं। फिर वे उस पुण्यके फलमें दिव्य वैक्रियक शरीरको निर्मल निरखकर और क्षुधा तृषा आदिक वेदनाओंसे रहित निरखकर कहा जा रहा है कि पूर्वभवमें ऐसे ऐसे पुण्य और धर्मके कार्य किये थे जिनके प्रतापसे वहाँसे उद्धार पाकर, मलिन शरीरसे निकलकर आज मैं स्वर्ग राज्यमें आया हूं, जो देव करके वंदनीय हूं। इस प्रकार यह सौधर्म इन्द्र अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवके परिणामोंका स्मरण कर रहा है, और जो फल पाया है वह सब इस धर्मके प्रसादसे ही पाया है, ऐसा जानकर वह इंद्र प्रसन्न हो रहा है, लेकिन थोड़ी ही देर बाद वह वहाँकी सौन्दर्ययुक्त देवांगनाओंमें अपना उपयोग देगा, उनके राग अनुरागकी ज्वालावोंमें जलता रहेगा। इस दिव्य शरीरसे निर्वाणकी प्राप्ति नहीं होती है, यहाँसे मरकर नियमसे नीचे ही जाना पड़ेगा, इन सारी बातोंका वह विचार करके कुछ विशाद भी करता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है और उस विशादमें उस ही मनुष्यभवको वह इंद्र महत्त्व दे रहा है। जिस मनुष्यभवमें धर्म धारण करके आज वह स्वर्गके उस निर्मल वातावरणमें आया हुआ है उसका किस प्रकार यह सौधर्म इंद्र चिंतन कर रहा है, इसका वर्णन अब आगे आयगा।

रागादिदहनज्वाला न प्रशाम्यन्ति देहिनाम्।
सद्वृत्तवार्यसंसिक्ताः क्वचिज्जन्मशतैरपि ॥१८३२॥
तन्नात्र सुलभं मन्ये तत्किं कुर्मोऽधुना वयम्।
सुराणां स्वर्गलोकेऽस्मिन् दर्शनस्यैव योग्यता ॥१८३३॥

वर्तमान स्वर्गसमागम पानेके कारणोंका सर्व समाधान—वह सौधर्म इन्द्र स्वर्गमें उत्पन्न होकर मंत्रियों द्वारा सब परिचय प्राप्त करनेके पश्चात् अवधिज्ञानसे स्वयं सारा समाचार और पूर्व भवका भी वृत्तान्त जानकर वह सब समाधान पा लेता है और समझ रहा है कि मैंने पूर्वभवमें तपश्चरण किया, जीवोंको दान किया, जिन्हें जीवन चाहिए उन्हें अभयदान दिया और दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तपकी आराधना की, कषायोंको कम किया, राग शत्रुको जीता, उस सबका यह प्रभाव है कि मैं आज इस सौधर्म स्वर्गका इन्द्र हुआ हूं। इस संसारके प्राणियोंको राग अग्निकी ज्वाला जला रही है जो कि इसे शांत नहीं होने देती। सम्यक्चारित्र रूपी जलसे सींचे बिना यह रागादिक रूपी अग्निकी ज्वाला सैकड़ों जन्म लेनेपर भी नहीं बुझती। समानम तो सर्व सुखोंका पाया, और अनेक तीर्थंकरोंके कल्याणकका मुझे दर्शन मिल गया। ये सब सुयोग पाया, मगर सम्यक्चारित्रके बिना रागादिककी ज्वाला नहीं शांत हो सकती, संसारसमुद्रसे पार नहीं हुआ जा सकता। अब ऐसा इंद्र कुछ रंगमें भंगसा हो रहा है सो कुछ धर्मकी बातका चिन्तन करता हुआ अपनी वर्तमान विभूतिको तुच्छ देख रहा है। मिला तो क्या मिला? ऐसे ही यहाँ सोच लीजिये कि धन वैभव मिला तो क्या मिला, संपदा, जायदाद, दूकान, कम्पनी, कारखाने अच्छे चल रहे हैं, ठाटसे अच्छे महलोंमें रह रहे हैं, खूब सजे सजाये अच्छे कमरोंमें रह रहे, इष्ट समागम भी खूब मिले हुए हैं तो इससे क्या होगा? न तो इस समय शान्ति है और न भविष्यके लिए कोई शाँतिका मार्ग है। यह सब तो संसार की परम्परा है। स्वप्नकी तरह कुछ दिनोंका खेल है। सौधर्मइंद्र विचार कर रहा है कि जिस सम्यक्चारित्र रूप जलके बिना रागादिककी ज्वाला सैकड़ों जन्मोंमें भी बुझ नहीं सकती है वह सम्यक्चारित्र यहाँ सुलभ नहीं है। इस देवपर्यायमें वह सम्यक्चारित्र नहीं प्राप्त होता है। जहाँ दुःख नहीं आते, सुख और वैषयिक आरामोंमें ही समय व्यतीत होता है वहाँसे उद्धारका अवसर नहीं है। वह सम्यक्चारित्र यहाँ सुलभ नहीं है तो अब हम क्या करें? जिसने पूर्वभवमें धर्मकी साधना की थी, धर्मका संस्कार लेकर उत्पन्न हुआ है उसे अब उस धर्मकी सुध आ रही है। एक भव ऐसा है यह देवका वैक्रियक शरीर होनेके कारण कि इस

http://sahjanandvarnishastra.org/

भवमें सम्यक्चारित्र संयम नहीं बन पाता। वैषयिक सुखके सारे साधन हैं। जब भूख ही नहीं लगती तो उपवास क्या करना? कभी लगी हजारों वर्षोंमें भूख तो उनके ही कंठसे अमृत झर जाता है और वे तृप्त हो जाते हैं। तो भूख प्यासकी कोई वेदना ही उनमें नहीं रही। ऐसे ही कोई इष्ट वियोगकी बात भी वहाँ नहीं है। रोग शोक आदिककी भी कोई बाधायें नहीं हैं, वे तो बड़े सुखमें रहा करते हैं, इस कारण उनमें वैराग्य उत्पन्न होनेका कोई अवसर ही नहीं आता है। तो वह इंद्र विचार कर रहा है कि यहाँ सम्यक्चारित्र नहीं हो सकता तो हम क्या करें? करने योग्य तो यही काम था। आत्माके उद्धारका तो यही उपाय था, वह उपाय नहीं बन पा रहा है, ऐसे प्रसंगको सुनकर तो कुछ अपने चित्तमें बात आना चाहिए कि मनुष्यभव ऐसा दुर्लभ है, उसे हम किस प्रकार व्यतीत कर रहे हैं? हम इस मनुष्य भवका सदुपयोग कर रहे हैं, या यों ही गप्पसप्पमें इस मनुष्य भवको बिता रहे हैं। अर्थात् हम अपने चित्तको परपदार्थोंमें लगा रहे हैं या अपने आपमें विराजमान शुद्ध ज्ञानस्वभावी परमात्मतत्त्वमें विराजमान रहते हैं, जरा सोचिये तो सही। यह मनुष्यभव बड़ी जिम्मेदारीका भव है। यहाँ न चेते तो फिर किस जगह ठिकाना है? इंद्र विचार कर रहा है कि यहाँ चारित्र तो है नहीं, अब हम क्या करें? स्वर्ग लोकमें तो एक सम्यग्दर्शनकी ही योग्यता है।

अतस्तत्त्वार्थश्रद्धामे श्रेयसी स्वार्थसिद्धये।
अर्हद्देवपदद्वन्द्वे भक्तिश्चात्यन्तनिश्चला ॥१८३४॥

पुण्यफल निरखकर प्रभुभक्ति आदि पुण्याचारोंके संकल्पका निर्णय—इस कारण जब कि स्वर्गलोकमें देवोंके चारित्रकी योग्यता नहीं है, केवल सम्यक्त्व की ही योग्यता है तब मेरा तो अपने आत्माके प्रयोजनकी सिद्धिके लिए तत्त्वार्थकी श्रद्धा बनी रहे, यही कल्याणकारिणी है। मेरे सप्त तत्त्वका श्रद्धान रहे, अरहंत देवके चरणोंमें मेरी निश्चल भक्ति रहे, वीतराग सर्वज्ञ देवकी जिन्होंने शरण गहा उन्होंने एक सत्य शरण पाया, और जो स्त्री पुत्र मित्र और ये प्रजाके लोग मोही जन इनकी जिन्होंने शरण गहा वे अपने आपको बरबाद गया समझें। प्रभु वीतराग सर्वज्ञ देवके निकट मेरा हृदय सदा बसा रहे। अरहंत देवके चरण कमलोंमें मेरी अत्यन्त निश्चल भक्ति रहे। सौधर्म इंद्र करता भी अरहंत भक्ति बहुत-बहुत है। तीर्थंकरोंके कल्याणककी भक्ति करनेसे उसे कितना मौज मिलता है, जहाँ दो सागरकी आयु होती है। तो दो सागरकी आयुके बीच हजारों तीर्थंकरोंके कल्याणक मना लेता है। एक सागरमें हजारों कोटपूर्व समाये हुए हैं और एक तीर्थंकरकी आयु अधिकसे अधिक कोट पूर्व तक ही हो सकती है। विदेह क्षेत्रमें तीर्थंकरोंकी परम्परा सदा चला करती है। तो सभी तीर्थंकरोंका कल्याणक वह सौधर्म इंद्र मनाता है। तो सौधर्म इन्द्र चिंतन कर रहा है कि अरहंत देवके चरण-कमलों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में मेरी भक्ति अत्यन्त निश्चल बनी रहे।

यान्यत्र प्रतिबिम्बानि स्वर्गलोके जिनेशिनाम्।
विमानचैत्यवृक्षेषु मेर्वाद्युपवनेषु च ॥१८३५॥
तेषां पूर्वमहं कृत्वा स्वद्रव्यैः स्वर्गसंभवैः।
पुष्पचन्दननैवेद्यैर्गन्धदीपाक्षतोत्करैः ॥१८३६॥
गीतवादित्रनिर्घोषैः स्तुतिस्तोमैर्मनोहरैः।
स्वर्गैश्वर्यं ग्रहीष्यामि ततस्त्रिदशवन्दितः ॥१८३७॥
इति सर्वज्ञदेवस्य कृत्वा पूजामहोत्सवम्।
स्वीकरोति ततो राज्यं पट्टबन्धादिलक्षणम् ॥१८३८॥

सुरेश द्वारा सर्वप्रथम देवार्चताका निश्चय—सौधर्म इन्द्र विचार कर रहा है कि जितने प्रतिबिम्ब इस स्वर्गलोकमें जिनेन्द्रदेवके हैं, जो भी जिनेन्द्रदेवके प्रतिबिम्ब इस स्वर्गलोक में समाये हुए हैं, चैत्यवृक्षोंमें मेरु आदिक बनोंमें बने हुए हैं उनकी द्रव्य, पुष्प, चंदन, नैवेद्य, गंध, दीपक व अक्षतोंसे सर्वप्रथम पूजा करके और गीत नृत्य वादित्रोंके शब्दोंसे मनोहारी स्तुतियोंके समूहोंसे उन अरहद बिम्बोंकी पूजा करके फिर मैं स्वर्गके ऐश्वर्यको ग्रहण करूँगा। किसीको वैभव मिलता है तो धर्मकी कुछ बात भी ख्यालमें न रखकर सबसे पहिले उस वैभव को ही बटोरनेके लिए दौड़ता है। ऐसी स्थितियाँ तो यहाँ भी लोगोंकी देखी होंगी। जब अधिक वैभव पासमें था तब तो मंदिर भी जाते थे, भक्ति, पूजा, समारोह आदिके लिए भी अधिक समय था, पर पुण्यके प्रतापसे जब वैभव अधिक बढ़ गया तो ऐसी नौबत आ गयी कि दर्शन करने जाने तकका भी समय नहीं मिल पाता। लोग कहते कि बाबू जी दर्शन करने जाने का तो समय निकाल लिया करो तो क्या कहते कि क्या करें भाई! तुम्हीं देख लो, कहाँ हमारे पास समय है, यहाँ वहाँ फंसे हैं। तो ठीक है, कर लो स्वच्छन्द प्रवृत्तियां, कभी इकट्ठा समय मिल जायगा, फिर चाहे दर्शन कर सको या न कर सको। तो सौधर्मइंद्र यह चिंतन कर रहा है कि मैं पहिले स्वर्गलोकमें चैत्य वृक्षोंमें, मेरु आदिक बनोंमें जितने भी प्रतिबिम्ब हैं उनका पूजन वंदन करके फिर मैं स्वर्गके ऐश्वर्यको ग्रहण करूँगा। जो महापुरुष होते हैं उनमें इतनी महानता होती ही है कि वे वैभवमें इतना आसक्त नहीं होते कि धर्मके कार्यको छोड़कर वैभवकी लिप्सा रखें। ऐसा विचार करके और उनका पूजन करके फिर यह सौधर्म इन्द्र जो देवों द्वारा वंदित है, स्वर्गके देवों द्वारा पूजा महोत्सव आदि किया जानेपर वह राज्यको स्वीकार करता है। सबने हाथ जोड़कर निवेदन किया, महाराज आप हमारे अधिपति हैं, हम सब पर कृपा कीजिये, अपना आधिपत्य स्वीकार कीजिये और जो भी नियोग होता हो। जैसे यहाँ लोग सिरपर पगड़ी बाँध देते ऐसे ही वहाँ भी कुछ तो नियोग होता ही है, नियोग कर दिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि बस इन्द्र पदकी घोषणा हो गई है, इन्द्र हैं यह। देख लीजिये सब। यह वैभव मिलता है पुण्यके उदयसे। पुण्य बनता है धर्मभावसे, अनुरागसे। तो फिर यह बतलावो कि वैभव कमाने का उपाय मेहनत है या धर्मका पालन है। खूब युक्तिपूर्वक देख लीजिए। मूल कारण तो धर्मपालन है, जिसके प्रसादसे यहाँका भी वैभव मिलता है और ऐसा रास्ता मिलता कि सदा के लिए संसारके संकट दूर हो जाते हैं।

तस्मिन्मनोजवैर्यानैर्विचरंतो यदृच्छया।
वनाद्रिसागरांतेषु दीव्यंते ते दिवौकसः ॥१८३९॥

देवोंका मनोनुकूल वनादिविहार—तत्पश्चात् वे सब देव मनके समान वेग वाले विमानोंके ऊपर चढ़कर स्वच्छंद विचरने वाले वनोंमें, पर्वतोंपर, समुद्रके तटपर, क्रीड़ा करते रहते हैं, मन बहलाते रहते हैं। मौकेपर धर्मकी सुध लेनेकी भी महत्ता होती है। वहाँ सारे जीवनभर सौधर्मेंद्र या अन्य देव धर्ममें नहीं लगे रहते हैं, अधिक समय तो उनका क्रीड़ामें, विहारमें, आराममें व्यतीत होता है। किंतु जब समय आया तो इन सबकी दृष्टि न रखकर केवल एक धर्मके आलम्बनका कार्य रहता है, इसीलिए वे महान हैं। अनेक पुरुष तो देवोंकी सिद्धिका मंत्र पढ़ा करते हैं कि कोई देवता सिद्ध हो जाय तो जैसा हमारा आदेश होगा वैसा वह देव काम कर देगा। पर ऐसा आदेश देने वाले मनुष्य यहाँ हैं कहाँ, पर यह एक उन लोगोंके मनका शौक है, और साथ ही देव भी उस ही का सहाय करते हैं जिसके पुण्यका उदय है, जिसमें धर्मका संस्कार है। देव और मनुष्योंकी बात एकसी ही तो है। मनुष्य भी उसके ही सहायक है जिसमें धर्म है, जिसके पुण्यका उदय है। यही बात देवोंमें लगा लें। वे कुछ सांसारिक कार्योंको सिद्ध करानेमें मनुष्योंसे विशेष समर्थ हैं, लेकिन इसका महत्त्व अज्ञानियोंके ही चित्तमें है। ज्ञानी पुरुष तो केवल धर्मको महत्त्व देता है, वह तो इन वैषयिक सुखोंसे विरक्त रहकर अपनी आयु व्यतीत करता है।

संकल्पानन्तरोत्पन्नैर्दिव्यभोगैः समन्वितम्।
सेवमानाः सुरानीकैः श्रयंति स्वर्गिणः सुखम् ॥१८४०॥

देवोंकी दिव्यभोगसम्पन्नता—संकल्पके अनंतर ही उत्पन्न हुए दिव्यभोगोंसे युक्त सुख को वे देव भोगा करते हैं। यहाँ भी कोई बड़ा पुरुष होता है तो इच्छा करते ही उसे वह चीज सुगमतासे प्राप्त हो जाती है। क्योंकि खर्चकी कुछ परवाह नहीं, श्रमकी भी कुछ परवाह नहीं, जिस चीजकी इच्छा की अथवा जिस कामकी इच्छा की वह काम तुरन्त ही बन जाता है। दुःख सुखसे समन्वित सुख वहीं प्राप्त हो जाते हैं। संकल्प करते ही उत्पन्न हुए नाना भोगोंको सेवते हुए देवोंकी सेना सहित वह सौधर्म इन्द्र स्वर्गके सुखोंको भोगता रहता है। लोग तो किसीके मर जानेपर कहने लगते कि अमुक तो स्वर्ग सिधार गया। पर उन्हें क्या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मालूम कि वह स्वर्ग सिधार गया या नरक सिधार गया। लोगोंमें कुछ ऐसी परिपाटी थी कि जो अत्यन्त वृद्ध पुरुष मरता था जिसने अपने नाती पोते तथा पोताके भी नाती पोता देख लिया हो उसकी अर्थीके साथ चाहे एक चवन्नी भरकी ही हो, सोनेकी एक सीढ़ी सी बनवाकर बाँध देते थे, इसलिए कि इस वृद्ध पुरुषको स्वर्ग जानेमें कोई कठिनाई न पड़े। हो सकता है कि यह बात अब भी चलती हो। पर उन्हें यह पता नहीं कि सीढ़ी चढ़नेके ही काममें नहीं आती वह तो उतरनेके भी काममें आती है। तो लोगोंके चित्तमें स्वर्गकी बड़ी महिमा समायी हुयी है। जो लोग धर्म करते हैं वे करीब करीब ऐसा चित्तमें भाव रखते हैं कि हम देव हों और अच्छी विभूति पायें। किन्तु देव होकर भी किया क्या, विभूति भोगकर भी किया क्या ? दो चार सागरका समय निकाल ही दिया तो क्या हुआ ? समय तो अनन्तकाल पड़ा हुआ है। उद्योग ऐसा करें कि अपने आत्माकी पहिचान बने। अपने आपकी उपासना हो और संसारके क्लेश दूर हो सकें। सबसे अधिक बाधक है तो पर्यायबुद्धिका अभिप्राय बाधक है। मेरी यहाँ इज्जत होनी चाहिए। मेरा नाम यहाँ सब जगह बढ़ जाना चाहिए। ये सब पर्यायबुद्धिके लक्षण हैं। जो इन बातोंसे चिपटता है उसके भाव विशुद्ध नहीं रह सकते। और अन्तमें उसकी दशा भली नहीं बन सकती। ये देव यह इन्द्र संकल्पमात्रमें ही प्राप्त हुए भोगोंमें सुखोंमें सागरों पर्यन्त की आयु व्यतीत कर डालते हैं।

महाप्रभावसम्पन्ने महाभूत्योपलक्षिते।
कालं गतं जानंति निमग्नाः सौख्यसागरे ॥१८४१॥

महाभूतिसहित सुखसागरमें निमग्न देवोंका कालक्षय—ये देव दिव्य सुख सागरमें निमग्न होते हुए व्यतीत होते हुए कालको नहीं जानते। कैसा है यह सुख, कैसा है यह सुख सागर ? महाप्रभावसे युक्त है और बड़ी विभूतिसे उपलक्षित है, जहाँ महान वैभव बना हुआ है ऐसे सुख सागरमें वे देव इतना मग्न रहते हैं कि जो समय गुजर गया वह जाननेमें नहीं आता कि यह कैसे गुजर गया ? यहींकी बात देखलो, जिसकी जितनी आयु हो गई है उसे यह नहीं लग रहा क्या कि अरे इतनी आयु कैसे व्यतीत हो गई ? यहां तो बीच-बीचमें बड़ी कष्टप्रद स्थितियाँ भी आयीं, मानो किसी बीमारीसे ग्रस्त थे, दिलपर हाथ धरे हुए घबड़ाये हुए बड़ी मुश्किलसे समयको काटा, ऐसी भी स्थितियां आयीं पर साथमें कुछ सुखी भी रहे, इतनेसे ही सुखके कारण इतनी आयु व्यतीत हो गई और अब ऐसा लग रहा कि यह इतनी आयु कैसे चली गई, फिर वे तो देव ही हैं। उनका जीवन तो सुख ही सुखमें व्यतीत होता है, फिर उन्हें उस जीवनके बीतनेमें क्या पता पड़े ? सागरों पर्यन्तकी वह आयु पता नहीं पड़ती उस सुखके भोगते हुए में कि वह इतनी लम्बी आयु कैसे व्यतीत हो गई। इस मनुष्यको जब वृद्धावस्था आती है तो यह ख्याल होता है कि अहो ! मैंने इतना सारा जीवन

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्यर्थ ही गवां दिया, कोई हितकी बात न पायी। यों वृद्धावस्थामें इस मनुष्यको बड़ा पछतावा होता है। ऐसी ही बुद्धि यदि बाल्यावस्थामें आ जाय तो इस मनुष्यका कल्याण हो जाय; पर बाल्यावस्थाको तो यों ही अज्ञानतामें बिता देता है, युवावस्थाको भोग भोगनेमें बिता देते हैं और अंतमें जब वृद्धावस्था आती है तो इसे कुछ अपने आपकी सुध होती है—ओह ! मैंने इतनी बड़ी आयु व्यर्थ ही गवां दी। ऐसे ही समझो वे देव भी उस सुख सागरमें निमग्न हुए सागरों पर्यन्तकी आयुको व्यतीत कर डालते हैं पर उन्हें यह पता नहीं पड़ता कि इतना बड़ा समय कैसे व्यतीत हो गया ?

क्वचिद्गीतैः क्वचिन्नृत्यैः क्वचिद्वाद्यै मनोरमैः।
क्वचिद्विलासिनीव्रातक्रीडाशृङ्गारदर्शनैः ॥१८४२॥
दशाङ्गभोगजैः सौख्यैर्लभ्यमानाः क्वचित् क्वचित्।
वसंति स्वर्गिणः स्वर्गे कल्पातीतवैभवे ॥१८४३॥

देवोंके महाभूतिसम्पन्न सुखोंका वर्णन—कहीं तो मनको लुभाने वाले गीत वादित्र नृत्योंके द्वारा वे सुख प्राप्त करते हुए स्वर्गमें रहते हैं, कभी विलासिनी देवांगनाओंके समूहसे किए हुए क्रीड़ा शृङ्गारको देखनेमें समय व्यतीत करते हैं, कहीं १० प्रकारके भोगोंसे कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुए सुखों सहित अद्भुत वैभव वाले होकर स्वर्गोंमें वे अपना समय व्यतीत करते हैं। जैसे यहाँ फाल्तू मोही अज्ञानी जीवोंको जिन्हें सुख सुविधा बहुत मिली है वे अब क्या करें ? लेटे लेटे ही प्रभुका ध्यान करें, पर वे क्या करते हैं कि अब सनीमा थियेटर आदि देखना है, अब क्लबकी गोष्ठियोंमें जाना है, अब संगीत सुनने जाना है, आदिक प्रवृत्तियाँ करते हैं, वे विश्रामसे नहीं बैठ सकते हैं, ऐसे ही वे देव भी क्या करें बैठे बैठे ? कोई रोजिगार भी नहीं करना है, कोई चीजकी फिक्र नहीं है तो वे कभी गीतोंसे कभी नृत्योंसे कभी वादित्रोंसे भी शृङ्गारोंसे नाना प्रकारके सुखोंको प्राप्त करते हुए वे देव स्वर्गोंमें जहाँपर अद्भुत वैभव है कुछ आयु पर्यन्त बसा करते हैं। यह है ऊर्ध्व लोककी रचनाकी चर्चा। संस्थानविचय धर्मध्यानी सम्यग्दृष्टि पुरुष लोकके आकारका विचार कर रहा है। उस विचारमें ऊर्ध्व लोकका यह चिंतन कर रहा कि वहाँ ऐसे ऐसे देव हैं, ऐसी उनकी स्थितियां हैं।

लोकवासी संसारी जीवोंके आवासोंका संक्षिप्त कथन—लोकके तीन विभाग हैं—अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक। अधोलोकमें नारकियोंका निवास है, मध्यलोकमें पशु पक्षी आदि और मनुष्योंका निवास है, ऊर्ध्व लोकमें देवोंका निवास है। तीनों ही लोकोंमें जो श्रेष्ठ मन वाले जीव हैं वे जीव ज्ञानबलसे आत्मस्वरूप और परमात्मस्वरूपका निर्णय करके अपने आपमें प्रसन्न और तृप्त रहा करते हैं। नारकी जीव नाना कष्टोंमें रहकर भी एक सम्यग्ज्ञानके बलसे अन्तरङ्गमें तृप्त रहा करते हैं। तो मध्यलोकमें ये मनुष्य और मन वाले तिर्यंच

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ये भी अपने स्वरूपकी सुध लेकर तृप्त रहा करते हैं और देवोंमें भी नाना प्रकारके वैषयिक सुख भोगते हुए भी दिव्य सुखोंके आनंदमें तृप्त नहीं रहा करते ज्ञानी देव, किंतु आत्मस्वरूपके अनुभवमें ही तृप्त रहा करते हैं। यद्यपि देवोंमें संयम नहीं होता, फिर भी सम्यक्त्वकी साधना उनके रहा करती है। ज्ञानी पुरुषको अपने आपके स्वरूपमें एक विचार चलता है। इस ज्ञानी ने विश्वके समस्त पदार्थोंका निर्णय कर लिया है। प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र सत् है। कभी किसी निमित्तमें आकर कोई पदार्थ कैसी ही अपनी हालत बदले, तिसपर भी प्रत्येक पदार्थ अपना वस्तुस्वरूप कहीं मेटता। प्रत्येक पदार्थ सत् है, और जो सत् है वह प्रति समय नवीन अवस्था रूप बनता है, पुरानी अवस्थाको विलीन करता है और शाश्वत रहा करता है। यह पदार्थोंकी वस्तुगत बात है। मैं भी सत् हूं, मैं भी हूं। यदि मैं न होऊँ तो बड़ा अच्छा था। फिर ये सुख दुःख मुझे कैसे होते। पर ऐसा तो नहीं है। मैं तो हूं, जब मैं हूं तो मेरी कुछ न कुछ हालत सदा चलती रहेगी। बिना अवस्थाके कोई पदार्थ रह नहीं सकता। आज अवस्था देखकर ही यह निर्णय कर लो कि मैं आगे भी किसी अवस्थामें रहूंगा। तब एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी अपने आपपर है कि अपनेको ऐसा न्याययुक्त रहना चाहिए अपनी पदवीके अनुसार अपने कर्तव्यमें निष्ठ रहना चाहिए कि हमारा भविष्य बिगड़े नहीं, इस भवका भविष्य भी न बिगड़े और इस भवको छोड़कर जो जो आगेका परलोक होगा उसका भविष्य भी न बिगड़े।

आत्महितके अर्थ कल्याणार्थियोंका कर्तव्य और चिंतन—आत्महितके अर्थ श्रावकोंको, गृहस्थोंको एक संकल्पी हिंसाका त्याग बताया है। किसी भी जीवको अपना द्वेषी जानकर उसे द्वेषी मानकर उसका अकल्याण करनेपर अर्थात् उसका विनाश करनेपर उतारू न हूजिये, हाँ कोई विरोधी बनकर हमारे देश जाति आत्मापर कुटुम्बपर आक्रमण करता है तो उस आक्रमणकारीपर आक्रमण करके उसका पूरा मुकाबला करें। उसमें यदि घात हो जाय तो उसका नाम विरोधी हिंसा है। इस विरोधी हिंसाका त्यागी गृहस्थ नहीं होता। साधुजन तो शत्रु द्वारा आक्रमण किए जानेपर भी शत्रुके प्रति रंचमात्र भी द्वेष न रखेगा और न कोई प्रतिक्रमण करेगा। वह तो अपनी साधनापर उतरा हुआ है, वह अपनेको विकल्पोंमें न डालना चाहेगा। वह साधु विरोधी हिंसा भी नहीं करता। गृहस्थ तो उद्यम आदिकमें, खान पान आरम्भ आदिकमें भी जो हिंसा होती है उससे अलग नहीं रह सकता, हाँ संकल्पी हिंसाका अवश्य त्यागी है, ऐसा गृहस्थ भी और ऐसा वह देव भी अपने आपके विषयमें ऐसा चिंतन रखता है कि मैं क्या हूं? एक सद्भूत वस्तु हूं, स्वतंत्र हूं, यह आत्मा किसीके कैदमें नहीं आता, किसीकी पकड़में नहीं आता। लोग पकड़ें, गिरिफ्तार करें, कैद करें तो यह शरीर ही कैदमें आया, लेकिन वहाँ भी आत्मा अपने आत्मस्वरूपका चिन्तन करे तो वहाँ भी वह स्वतंत्र है। यह मैं आत्मा प्रतिसमय स्वतंत्र हूं। कोई खोटा परिणाम करता हूं तो वहां भी केवल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मैं ही खोटा परिणाम करता हूं, कहीं दूसरा मुझमें मिलकर मेरा खोटा परिणाम करता हो ऐसा नहीं है। जब कभी मैं शुभ परिणाम करता हूं तो मैं ही अकेला शुभ परिणाम करता हूं, कोई दूसरा मुझमें मिलकर मेरी शुभ परिणतिको बनाता हो, ऐसा नहीं है। जब मैं शुभ अशुभसे हटकर केवल एक आत्मधर्ममें स्थिर होऊँगा तो वहाँ भी केवल मैं ही स्थिर होऊँगा, दूसरा कोई जीव मेरे साथ मिलकर स्थिर हो जाय ऐसा नहीं होता। मैं प्रत्येक अवस्थामें स्वतंत्र हूं। जब भी दुःखी अथवा सुखी होता हूं तो मैं अकेला ही होता हूं। मैं अपना एक स्वभाव रखता हूं। प्रत्येक पदार्थ अपना एक स्वरूप रखा करते हैं। चाहे वह पदार्थ बिगड़ जाय, और और रूप बन जाय फिर भी स्वभाव उसका एक ही रहा करता है। जैसे पानी गर्म भी हो जाय गर्मीसे अथवा अग्निसे, तिसपर भी उस जलका स्वभाव ठंढा है इसी प्रकार मैं भी अपना कोई स्वभाव रखता हूं।

मेरे शाश्वत स्वरूपकी शाश्वतता—आज हम यद्यपि बहुत बिगड़ी हुई स्थितिमें हैं। आत्माका कार्य था केवल जाननहार रहना, मगर इसमें राग, स्नेह, द्वेष, मोह ये सारे विष भरे पड़े हुए हैं। इतनी बिगाड़ की स्थितिमें है। मेरा कार्य था कि मैं एक सहज आत्मीय आनन्दका ही अनुभव किया करता और अनेक दुःख अनेक चिंता अनेक कल्पनाओंका मैं शिकार बना हुआ हूं। बहुत बिगड़ी हुई स्थितिमें हूं, फिर भी अपने अंतस्तत्त्वको निरखा जाय तो मैं एक शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभावी हूं। जब तक अपने इस ज्ञानानन्दस्वभावकी दृष्टि न जगेगी तब तक हमारी स्थिति सुधर नहीं सकती। तो मैं एक स्वभाव रखता हूं जो स्वभाव मेरा सदा निश्चल है, कभी चलायमान नहीं होता। किसी भी वस्तुका स्वभाव चला जाय तो वस्तुकी सत्ता ही समाप्त हो जायगी। कितना ही बिगाड़ हो जाय, कितना ही विरुद्ध परिणम जाय कोई भी पदार्थ, मगर स्वभाव स्वरूप मेरा वही रहता है जो मेरे सत्त्वके कारण मुझमें अनादि अनन्त है। यह एक अपने आपको अपने सहज सिद्धस्वभावके देखनेकी बात चल रही है। इस जीवने बहुत-बहुत विकल्प किये, बाह्यदृष्टि करके अनेक मौज माने, अनेक कष्ट माने लेकिन फल कुछ हाथ न आया। बाह्य पदार्थ विमुख हो गया, मैं अकेला ही रह गया और जो उस संयोगके समयमें पापकार्य किया उन पापकार्योंकी वासना लगार तो मेरे साथ बनी हुई है। वे परपदार्थ तो बिछुड़ गए जिनकी दृष्टि करके मैंने पापकार्य किया था लेकिन वे पापकार्य साथ चल रहे हैं। चल रहे हैं ठीक है, तिस पर भी यह ध्यान दीजिये कि मैंने बाह्यपदार्थोंका कुछ भी नहीं किया। वहाँ भी मैं केवल अपने भाव ही बनाता रहा। पाप किया, खोटे भाव किया। खोटे भावोंके बजाय यदि मैं शुद्ध भाव कर लूँ तो खोटा भाव तो समाप्त हो जायगा, चिन्ता किस बातकी? अगर कोई सोचे कि हम चिरकालसे पापी बने चले आ रहे हैं, खोटे भाव किए चले आ रहे हैं, मेरा क्या सुधार होगा? तो भाई खोटे भावों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के सममें खोटे भाव थे, परिणति ही तो है। यदि ज्ञानका अवलम्बन किया जाय और परिणामोंको शुद्ध बना लिया जाय तो वे सभी खोटे भाव समाप्त हो जायेंगे। परवाह, चिंता की क्या बात है? अपने स्वरूपकी संभाल करनेसे सारी गल्तियाँ क्षंतव्य हो जाती हैं। स्वरूप को देखिये। मैंने गल्तियाँ बहुत कीं, इच्छायें बहुत बढ़ाया, स्वच्छन्दतायें बहुत कीं, शक्ति, बला, चला, कीर्ति आदि परिकर भी मैंने अनेक घातक कार्य किये, लेकिन मेरा आत्मा उन सर्व पापों से रहित है। मेरा स्वभाव एक ज्ञान और आनन्दरूप ही है। जरा भीतर निरखकर देखिये क्या मिलता है खुदमें? कोई रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं है, एक जाननहार जो भीतर आत्मा है उस आत्माके ढांचेको देखिये, उस आत्माके स्वरूपको निरखिये क्या मिलेगा आत्मामें? एक ज्ञानप्रकाश, एक जाननभाव। तो केवल जाननभावरूप यह मैं आत्मा अपने आपके स्वरूप को संभालूँ तो सारे पाप समाप्त हो जाते हैं।

मोहकी अपेक्षा ज्ञानकी अधिक बलवत्ता—लोग कहते हैं कि मोह बड़ा बलवान है, सब जगको वश कर डालता है, इस मोहसे पिंड छुटाना कठिन है, पर भाई! यदि मोहकी बलवत्ताके ही गीत गाते रहोगे तो इस मोहसे छुटकारा कैसे मिल सकेगा? अपनेको यदि कायर बना लिया तो यह मोह फिर छोड़ न सकेगा। लोग इस बातको तो भूल गये कि इस मोहसे भी बड़ा बलवान ज्ञान है। मोहने जिसके बंधनको अनादि कालमें बना पाया है, चिर-कालमें बँध पाया है उस सारी बाँधको यह आत्मज्ञान क्षणभरमें ध्वस्त कर देता है। तो मोह की जितनी कला है, मोहका जितना प्रताप है, जितना उसका कार्य है सबको ध्वस्त कर देने का, और उसे भी क्षणमात्रमें नष्ट कर देनेका फल ज्ञानमें है। आत्मबल एक ज्ञानबलको ही कहते हैं। अपनेको अजर अमर स्वरूपमें निरखना और किसी भी परवस्तुको अपने उपयोगमें न रखना यही तो एक आत्मबल है, उसकी प्रतीति तो की नहीं और मोह बलवान है यही गुण गाते रहे तो स्वयं हम कायर होकर मोहके दुःखको मोहसे ही मिटानेका उपाय जानकर मोह मोहमें ही फंसे रहेगे।

भ्रममें तथ्यका अभाव—एक कथानक है कि एक कुम्हारका गधा गुम गया था, सो शामको सूर्य छिपते समय वह पासके गाँवमें ही ढूंढनेके लिए गया हुआ था। वहाँ एक खेतमें गेहूं कट रहे थे। सूर्यास्त हो गया तो मालिकने गेहूं काटने वालोंसे कहा कि तुम लोग जल्दी जल्दी काम निपटावो और चलो नहीं तो अंधेरी आ जायगी। हमें जितना डर अंधेरीसे है उतना डर शेरसे भी नहीं है। इस बातको एक पेड़के नीचे बैठे हुए शेरने सुन लिया। शेर सोचने लगा कि अभी तक तो मैं अपनेको इस जंगलका राजा समझ रहा था, पर मुझसे भी अधिक बलवान कोई अंधेरी हुआ करती है। सो शेर कुछ डर सा रहा था। इतनेमें कुछ अंधेरा तो हो ही गया था। वह कुम्हार उस पेड़के नीचे पहुंचा। पेड़के नीचे बैठे हुए शेरको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसने अपना गधा समझा और शेरने समझा कि लो आ गयी वह अंधेरी। कुम्हारने उसके कान पकड़े, भली बुरी दो चार बातें भी कहीं और अपने घरमें लाकर गधोंके बीचमें बाँध दिया। जब सवेरा हुआ तो शेरने देखा कि यह क्या खेल, यह मैं कहाँ बाँधा, मैं गधोंके बीच में बँधा हूँ। उसने अपने स्वरूपको सम्हाला और बन्धन तोड़कर भाग गया। यही हालत हम आपकी है, मोह ममताकी विशेष चर्चायें करते हैं, विषयोंके साधनोंको चित्तमें बड़ा महत्त्व देते हैं, जिनसे हमारे राग होता है उनका हम हृदयमें बड़ा बड़प्पन मानते हैं। तो ये सब हमारी कायरताको बढ़ाने वाली बातें हैं, अर्थात् हम मोही बन बनकर उनके ही आधीन रहा करते हैं। एक दृष्टिसे निरखो—आत्महितकी दृष्टिसे तो अपनेको जो इष्ट लगता है, जिसमें हमारा चित्त आदिक मोहित रहता है वह तो मेरे प्रति शत्रुताका ही काम करने वाला है। यदि मैं इनमें ही फंसा रहा, इनके ही रागमें दबा रहा, अपने आपका विवेक खो दिया तो फिर जगतमें कौन सा ऐसा पदार्थ है कि जिसकी शरण गहे तो मुझे वास्तवमें शान्ति प्राप्त हो ? कुछ भी नहीं है। मैं अपने इस कामनारहित, विभावरहित केवल ज्ञानमात्रस्वरूपको निरखूं तो मुझे शान्ति प्राप्त होगी। ऐसा यह मैं केवल जाननदेखनहार एक आत्मा हूं। देखिये—ज्ञान आत्माका गुण है। आत्मामें रहता है, आत्मामें अभेद है, आत्माका स्वरूप है, किन्तु मोही पुरुषोंका ज्ञान अपने आधारकी तो खबर नहीं रख रहा और बाहरी पदार्थोंमें ऐसा लम्बा मोह करता जा रहा है कि मानो इसने अपनी आदि ही छोड़ दी है, असीम बाह्य पदार्थोंमें भटक रहा है। अरे उस भटकते हुए ज्ञानको अपने आपके निकट ले आयें तो केन्द्रीभूत ज्ञानमें वह बल बनेगा कि अभी तो हम पदार्थोंको जाननेके लिए तरसते हैं और ज्ञात नहीं हो पाते, पर उस ज्ञानबल से पदार्थोंको जाननेकी इच्छा भी न रह सकेगी और सारा विश्व लोकालोक हमारे ज्ञानमें झलका करेगा।

सहज आत्मस्वरूपके परिचयमें आत्माकी सच्ची दया—भैया ! अपने आत्मापर दया करना, अर्थात् अपने आत्माके नातेसे अपने आपके हितका निर्णय करना। देखिये हम जो अटपट विश्वास बनाये हुए हैं वे सब विश्वास हमारे सत्यस्वरूपके दर्शनके बाधक हैं। मैं मनुष्य हूं, मैं अमुक बिरादरीका हूं, मैं अमुक पोजीशनका हूं, मैं अमुक परिवार वाला हूं, मैं इतने बच्चों वाला हूं आदिक रूपसे जो कुछ अपना विश्वास बना रखा है वह विश्वास हमें अपनेमें बसे हुए परमात्म परमार्थ स्वरूपको सिद्ध नहीं करने देता और फिर धर्मके बारेमें भी जो हमने विश्वास बनाया है, मैं अमुक धर्मका हूं, अमुक मजहबका हूं, अमुक मेरे गुरु हैं, उनका यह उपदेश है, ऐसे इन विकल्पोंके आश्रयसे हम करना तो चाहते अपना कल्याण, पर उन विकल्पोंकी अटक भी हमें अपनेमें बसे हुए परमार्थस्वरूपका दर्शन नहीं करने देती। सर्व विकल्पोंको छोड़कर एक बड़े विश्रामसे अपने आपके स्वरूपके निकटमें ठहर जायें तो अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आप उस सत्यका दर्शन होगा जिस सत्यका दर्शन कोई दूसरा नहीं करा सकता। वह मैं परमात्मा परमार्थ स्वरूप हूं। जैसा भगवानका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है। तब अनुभव में आयगा कि मुझमें और प्रभुमें अन्तर नहीं है। अपनी तो मुख्य शक्ति और प्रभुका देखिये विराटरूप। उस विराटरूपमें जो शक्ति बनी हुई है वह शक्ति और मेरी शक्ति एक स्वरूपमें है, एक समान है। इसीलिए लोग कहते हैं कि ये सब प्रभुके अंश हैं। मेरा स्वरूप उस प्रभु के समान है जिस प्रभुने अपने ज्ञानसे समस्त लोकालोकको जाना। अपने दर्शनसे अपने आपका साक्षात्कार किया। अपने आत्मीय आनन्दमें जो सदैव निरत रहा करते हैं, ऐसा ही ज्ञानानंद स्वरूप मेरा है लेकिन परवस्तुवोंकी आशा कर करके मैंने अपना ज्ञान खोया और भिखारीका रूप रख लिया। किसी भी पुरुषसे कुछ भी आशा रखना भिखारी नहीं है तो फिर और क्या है? जो लोग प्रजा जनोंसे लौकिक पुरुषोंसे इन्द्र जालवत् मायामय पुरुषोंसे अपने बारेमें खुद की बात सुननेकी आशा रखते हैं तो वह भी तो एक भीख मांगना हुआ। कीर्ति चाहना, धन चाहना, कुछ भी परवस्तुसे चाहना वह सब भीख है। अरे आत्मन्! तुममें कौनसी कमी है, जिसकी कीर्तिके लिए तुम परवस्तुवोंसे कुछ मांगना चाहते हो? अरे मेरे स्वरूपमें ज्ञान न होता तो कितने भी मैं उद्यम करता, अध्ययन करता, ज्ञान कहांसे होता? आत्मामें ज्ञान स्वयं है तभी तो किसी भी प्रसंगमें यह अपना ज्ञान प्रकट कर लेता है। इस आत्माका स्वरूप ही आनन्द है तब यह आत्मा अपने आपमें आनन्द और सुख प्रगट कर लेता है। मुझमें अपनेमें क्या कमी है? निहारो तो सही। बल्कि बाहरमें दृष्टि रखनेसे, बाहरमें किसीकी आशा रखनेसे हममें कमी आ जाती है। मैं अपने आपमें ही रहूं तो कुछ कमी नहीं है, बाहर कुछ आशा रखता हूं तो मेरेमें कमी आ जाती है। सो यह मैं यद्यपि अतुल्य वैभव वाला हूं, प्रभु समान हूं तथापि आशा कर करके अपना ज्ञान खोया और निपट भिखारी बन गया। अरे अपने स्वरूपको निहारिये, मेरे सुखका देने वाला लोकमें कोई अन्य पुरुष नहीं है। मोही जन सोचते हैं कि मुझे स्त्रीने तो सुख दिया, पुत्रने तो सुख दिया, इस वैभवने तो सुख दिया, इस रसीले भोजनने तो आनन्द उत्पन्न किया। अरे इन प्रसंगोंमें भी जो आनन्द आया वह तेरे आनन्दस्वरूपका ही विकार है और वह अपूर्ण अंश है। उन प्रसंगोंमें तूने अपने आनन्दका घात किया है, कुछ पाया नहीं है।

अपने भविष्यका स्वयंपर उत्तरदायित्व—तेरा सुख अथवा दुःख देने वाला कोई अन्य जीव नहीं है, अपना ही अज्ञान, अपना ही मोह परिणाम, अपना ही स्नेहभाव, अपना ही द्वेष भाव अपने आपको दुःख दिया करता है। दूसरा कोई जीव अथवा दूसरा कोई पदार्थ अपनेको दुःख नहीं दिया करता। अब किया है कर्म पहिले, उनका उदय है, दुःख आ पड़ा है, फँस गये हैं, शरीरका भी तो बड़ा विकट बन्धन है। इस घृणित शरीरमें बसना पड़ रहा है तिस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर भी यह जीव इस घृणित शरीरको बड़ा पवित्र और हितकारी सुखदायी अथवा अपना सर्वस्व ही मान रहा है। बन्धन कितना विकट है, फंसाव कितना घना है। अब क्या करें ? इस फंसावसे बचनेका हम क्या उपाय बनायें ? दुःख जाल भी कितना बढ़ा लिया, कितनी जगहके विकल्प बसा लिये, कितनी जगह व्यापार है, कितनी जगह काम है, कहाँ कैसी कमी है, कहाँ क्या व्यवस्था बनाना है ? अनेक चिन्तायें सता रही हैं, बड़ा दुःख है। अरे कुछ भी दुःख नहीं। अपनेको अपना जानो, परको पर जानो, फिर दुःखका कोई वहाँ स्वरूप नहीं रहता। कोई कारण नहीं रहता। तो इस अपने आपके स्वरूपके जाने बिना जगतमें अब तक अनेक जन्ममरण किये, अनेक उपाय बनाये, किन्तु सुख शांतिका अंश भी न प्राप्त किया। क्या खेल है कि प्रत्येक मनुष्य चाहे भिखारी हो तो, धनी हो तो, कैसी भी स्थितिमें हो, वह अपने विकल्प बनाता रहता है, अपनी वर्तमान स्थितियोंमें, अपने वर्तमान साधनोंमें कुछ न कुछ असुविधायें मानता रहता है और दुःखी होता रहता है। लोग एक दूसरेको सोचते हैं कि ये बड़े सुखी होंगे, गरीब लोग धनिकोंको देखकर सोचते हैं कि ये बड़े सुखी होंगे, इनके बड़े अच्छे महल हैं, बड़ा वैभव है, बड़ी कार हैं, बड़े ठाठ हैं, ऐसा वे सोचते हैं, लेकिन जीवोंके चूंकि अज्ञान लगा हुआ है, अपने आपके आत्मस्वरूपकी सुध नहीं है इससे वे विकल्प ही तो बनायेंगे, और विकल्पोंमें अशांति भरी है। किसी भी परवस्तुका राग ही तो करेंगे, और किसी भी परके प्रति राग करनेमें अशांति भरी पड़ी है। कोई सुखी नहीं है। उसका कारण यह है कि आत्मज्ञान नहीं किया। अपने आपके इस स्वतंत्र निश्चल शुद्ध ज्ञानमय स्वरूपको निरखें और दृढ़ आग्रह करें, अपनी दृढ़ प्रतीति बनायें कि मैं तो इतना ही हूं। भाव ही करता हूं और भाव ही भोगता हूं। मेरा स्वरूप मेरे इन ही प्रदेशोंमें है, इसमें ही मैं हूं, ऐसा अपना निर्णय बनायें, बाह्यमें मोह त्यागें तो मुझे आत्मीय आनन्द्र प्राप्त हो सकता है।

प्रभुनामोंमें आत्माकी विशेषताकी झांकी—लोग नाम विशेषके आधारसे धर्मके बारे में अपनी प्रतीति डिगा लेते हैं पर यह पता नहीं है कि जितने भी ईश्वरके नाम हैं, जितने भी पैगम्बरके नाम अवतार माने हैं, जितने भी गुरुजन माने गए हैं, जिन जिन नामोंसे हम उन्हें पुकारते हैं जरा उन नामोंको भी तो देखिये कि ये किसके नाम हैं ? कोई कहता है कि यह जिन है। सो जो जानेसे जिन। जानता कौन है ? आत्मा। तो जिन इस आत्माका ही नाम है। कोई कहता शिव। जो कल्याणरूप है सो शिव। कल्याणरूप है आत्मा। तो शिव भी उस आत्माका ही नाम हुआ। कोई कहता ब्रह्म। जो सृष्टि रचे है सो ब्रह्मा। सृष्टि रचता है हमारा आत्मा। अतः ब्रह्मा भी उस आत्माका ही नाम है। कोई कहता राम। जहाँ योगी जन रमा करें सो राम। योगी जन कहाँ रमते हैं ? आत्मामें। अतः राम भी उस आत्माका ही नाम है। कोई कहता है विष्णु। तो विष्णुका अर्थ है व्यापक। जो व्याप कर रहे सो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विष्णु। व्याप कर रहता है हमारा आत्मा। अतः विष्णु भी इस आत्माका ही नाम है। कोई कहता है बुद्ध। जो ज्ञानस्वरूप हो सो बुद्ध। ज्ञानस्वरूप है हमारा आत्मा, अतः बुद्ध भी इस आत्माका ही नाम हुआ। कोई कहता हरि। सो जो पापोंको हरे सो हरि। पापोंको हरता है हमारा आत्मा। अतः हरि भी इस आत्माका ही नाम हुआ। कोई कहता है अल्ला, अल्यः। अल् पूजायाम्। जो योग्य हो, पूज्य हो, अरहंत हो सो अल्यः, जो पूर्ण ज्ञान व आनंद को लाता है सो अल्ला, ज्ञानानन्दको प्रकट कर पूज्य बनता है यह आत्मा सो अल्यः भी हमारे आत्माका ही नाम है। कोई कहता है खुदा। सो खुदाका अर्थ है खुद। जो खुद हो सो खुदा। वह खुद है आत्मा। अतः खुदा भी इस आत्माका ही नाम हुआ। तो ईश्वरके जितने भी नाम हैं वे सब नाम इस आत्माके ही हैं। आत्माके ही वे सब विशेषण हैं। इस आत्मतत्त्वमें यदि मैं अपने उपयोगको पहुंचाऊँ तो फिर कोई आकुलता नहीं रह सकती है। हे आत्मन्! निर्णय करो कि ये जगतके सर्व पदार्थ पर हैं। यह मैं आत्मा उन सर्व पदार्थोंसे न्यारा हूं। सभी पदार्थ अपने परिणमनसे ही परिणमते हैं। मेरा उनमें कुछ कर्तव्य नहीं। मैं केवल विभाव, राग, मोह, अज्ञान ही किया करता हूं। हे अज्ञान भावों! तुम दूर हटो, तुम बहुत बड़े आवरण हो। ज्ञान और प्रभुके मिलनमें तुम एक बड़ी ओट हो। तुम दूर हटो। मैं तो एक सहज आनन्दरूप ही रहूंगा, मैं मात्र जाननहार ही रहूंगा, ऐसा अपने आपके स्वरूपको निरखकर अपने आपमें अपने आपको विलीन कर दें तो सारे संकट दूर हो जाते हैं। यह आत्मदयाकी बात कही जा रही है, और आत्माके नाते सभी आत्मावोंको अपने आपके स्वरूपकी सुध रखनी चाहिए तभी शान्ति प्राप्त की जा सकती है।

मद्यतूर्यगृहज्योतिर्भूषाभाजनविग्रहाः।
स्रग्दीपवस्त्रपात्राङ्गा दशधा कल्पपादपाः ॥१८४४॥

स्वर्गलोकमें दशविध कल्पवृक्षोंका निर्देश—स्वर्गोंमें १० प्रकारके कल्पवृक्ष होते हैं—मद्य, बाजा, घर, ज्योति, भूषण, भोजन, माला, दीपक, वस्त्र, पात्र। जैसा इनका नाम है वैसा ही उनसे फल प्राप्त होता है। जैसे यहाँ किसी बड़े धनीकी बातका पता नहीं है, विधियां ज्ञात नहीं हैं और न उसके वैभवका यह अनुमान कर पाता है, इसी प्रकार यहाँ मनुष्य भी देवोंके कैसे कल्पवृक्ष हैं, कैसे उनसे चाहनेपर चीज मिल जाती है, इसका हम अंदाज नहीं कर सकते। किन्तु पुण्य फल ऐसा ही वहाँ फल रहा है, ऐसा ही उनका नियोग है कि वे देव जिस वृक्षके नीचे बैठकर जो वस्तु चाहें उन्हें वह चीज मिल जाती है। यह भी एक स्थिति है। अब देखिये—देव बनकर क्या कमाई की? कौनसा श्रम किया, किन्तु पूर्वभवका धर्म पुण्यफल दे रहा है कि वहाँ पहुंचकर सब सामग्री मिली है। जैसे यहाँ कोई बालक किसी करोड़पतिके घर पैदा हो जाय तो बतावो उस बालकने क्या पैदा किया, क्या श्रम किया? पैदा होते ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह करोड़ोंके वैभवका अधिकारी बन गया। तो ये सब पूर्व पुण्यके फल हैं। वैभव मिलता है आत्माके निर्मल होनेसे, विशुद्ध होनेसे, और लोग जानते हैं कि बेईमानी करनेसे धोखा देनेसे भारी परिश्रम करनेसे वैभव जुड़ जायगा। वादित्र जातिके कल्पवृक्षसे जिस चाहे प्रकारके मन चाहे वादित्र मिल जायेंगे। जैसा घर, जैसी कुटी, जिस ढंगका चाहे गृह जातिके कल्पवृक्षसे मिल जायगा। ज्योतिसे ज्योति मिलती है, भूषण जातिके कल्पवृक्षोंसे भूषण मिलता है। कितने ही लोग तो यहाँके वृक्षोंसे भी भूषण बना लेते हैं। नीमकी सींक होती है उसे गोल करके गूंथ लें तो छल्ला बन गया, और भी कुछ इस ढंगके होते हैं कि जिसे कुछ थोड़ा साधन बना लें और कानोंमें लटका लें तो कुण्डल बन गया। तो यहाँ भी कुछ इस ढंगकी चीजें हैं कि जिनसे कुछ बना लें। तो यह तो बननेकी बात है। वहाँ उन कल्पवृक्षोंमें नाना प्रकारके आभूषण इस ही प्रकार लदे रहते हैं कि जो चाहे सो मिल जाय। यहाँ मनुष्यभवमें तो चाह करनेसे कोई चीज नहीं मिलती, पर कोई विशुद्ध परिणाम करे, उसके फलमें वह स्वर्गमें जन्म ले तो वहाँपर उसे ऐसे वैभवकी इच्छा करनेसे वह वैभव तुरन्त मिल जाता है। वस्त्र जातिके कल्पवृक्षोंसे मनचाहे वस्त्र ले लें, पात्र जातिके वृक्षोंसे मनचाहे पात्र ले लें, माला जातिके वृक्षों से मनचाहे माला ले लें, भोजन जातिके वृक्षोंसे मनचाहा भोजन ले लें। वैसे देवोंको भोजन की जरूरत नहीं है, मगर किसी मनुष्यादिकको कुछ खिला दें ऐसा तो कर सकते हैं। इस प्रकार १० प्रकारके वृक्षोंसे वे स्वर्गके देव मनमाने भोग भोगते हैं।

यत्सुखं नाकिनां स्वर्गे तद्वक्तुं केन पार्यते।
स्वभावजमनातङ्कं सर्वाक्षप्रीणनक्षमम् ॥१८४५॥

स्वर्गमें देवोंके सुखकी अनुपमताका चित्रण—स्वर्गमें उन देवोंको जो सुख प्राप्त होता है उस सुखका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है? पहिले तो यही देख लो कि हम आपके ऐसे गंदे शरीर हैं, जब पसीना निकल आता है तो अपना ही शरीर अपनेको नहीं सुहाता है, दूसरेका तो सुहाता ही नहीं। किसीके नाक निकल आवे तो वह झट मुंह फेर लेता है और उसे पोंछकर फेंक देता है। इतना घृणित है यह शरीर, और देवोंका तो ऐसा दिव्य शरीर है कि घृणाकी कोई बात ही नहीं है, मल, मूत्र, पसीना, खून, हड्डी, पीप आदि उनके शरीरमें कुछ भी नहीं है। ऐसा उनका दिव्य शरीर है। उनका शरीर वैक्रियक है। उनके शरीरमें किसी भी प्रकारकी कोई वेदना नहीं है। उनकी सारी उम्र खेलोंमें, समारोहोंमें, जो कुछ मन में आया सो करनेमें बीतती है। तो देवोंको स्वर्गमें जो सुख है उस सुखका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है? वे सुख बिना प्रयास ही उन्हें स्वयं प्राप्त होते हैं। जहाँ कोई रोगादिक नहीं हैं, जहाँ समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें समर्थ है सुख, ऐसे सुखको अन्य कोई नहीं कह सकता है और न कोई पा सकता है। यह एक संस्थानविचय धर्मध्यानके प्रकरणमें ज्ञानी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्यग्दृष्टि पुरुष ऊर्ध्वलोकका चिन्तन कर रहा है। इस ऊर्ध्व लोककी रचनाका परिज्ञान करने से क्या लाभ है? मोह नहीं रहता। स्वर्गोंके सुखोंकी बात सुननेसे और अधिक बात नहीं तो इतनी तो बात लोग सोच ही लेते कि अरे यहाँके सुखोंमें क्या प्रेम करना, उस सुखके आगे तो यहाँका सुख कोई चीज ही नहीं है। यद्यपि सांसारिक सुख सभी धोखे वाले हैं, जीवकी बरबादी करने वाले हैं अतएव ज्ञानी पुरुषोंके उपयोगमें तो साँसारिक सुखोंका चिन्तन ही नहीं है, फिर भी अपनी दृष्टि एक फैला देनेसे संकुचित क्षेत्रमें जो राग मोह बन रहा था वह नहीं रह पाता। रागको कम करनेका एक उपाय यह भी है कि उस रागको सब जीवोंमें फैला दिया जाय। सबसे प्रेम करने लगें, तो उसका वह राग क्षीण हो जायगा। तो संस्थानविचय धर्मध्यानमें उपयोग इतना फैल गया कि सारे लोककी रचनाका ज्ञान किया जा रहा है। तो वर्तमानमें मिले हुए समागमोंमें भोगोंमें प्रीति नहीं रह पाती।

अशेषविषयोद्भूतं दिव्यस्त्रीसंगसंभवम्।
विनीतजनविज्ञानज्ञानाद्यैश्वर्यलाञ्छितम् ॥१८४६॥

स्वर्गलोकमें देवोंके सुखका पुनः दिग्दर्शन—स्वर्गोंका सुख समस्त प्रकारके विषयोंसे उत्पन्न होता है, दिव्य स्त्रियोंके संगसे उत्पन्न होता है, विज्ञान चतुराई ज्ञान आदिक ऐश्वर्य सहित यह दिव्य सुख है। उस सुखका वर्णन अन्य कौन कर सकता है? सुखका अर्थ है—सु मायने सुहावना लगना, ख मायने इंद्रिय। जो इंद्रियोंको सुहावना लगे उसे सुख कहते हैं। और दुःख, दु मायने बुरा और ख मायने इन्द्रियां। जो इन्द्रियोंको बुरा लगे अर्थात् जो इंद्रियोंको असुहावना लगे उसे कहते हैं दुःख। क्लेशका अर्थ है क्षोभ। क्षोभमें धीरता, शांति व स्थिरता नहीं रहती। इन दुःख व सुखोंमें भी यही बात है। तो इन दुःख सुख दोनोंमें क्लेश ही रहता है।

प्रश्न :—तो फिर वह देवोंका सुख भी क्या कष्ट ही रहा?

उत्तरः—हाँ कष्ट ही रहा। जैसे कोई पुरुष किसीका इन्तजार करे तो एक तो छाया में बैठकर इन्तजार करे और एक धूपमें बैठकर इन्तजार करे तो इन दोनों ही स्थितियोंमें उन दोनोंको क्लेश तो है ही। ऐसी ही बात इन सुख और दुःखोंमें है। सुख पुण्यका फल है और दुःख पापका फल है। वस्तुतः ये दोनों ही हेय हैं।

सौधर्माद्यच्युतान्ता ये कल्पाः षोडश वर्णिताः।
कल्पातीतास्ततो ज्ञेया देवा वैमानिकाः परे ॥१८४७॥
अहमिन्द्राभिधानास्ते प्रवीचारविवर्जिताः।
विवर्द्धितशुभध्यानाः शुक्ललेश्यावलम्बिनः ॥१८४८॥

स्वर्गसुखकी उपेक्ष्यता—जहाँ हम आप रहते हैं यह तो मध्यलोक है। यह मध्यलोक मेरु पर्वतके बराबर मोटा है। उसके ऊपर स्वर्गोंकी रचना है। १६ स्वर्गोंके बाद फिर कल्पातीत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देवोंके विमान हैं। तो जैसे मनुष्योंमें राजा, राजपरिवार, मंत्री, प्रजा, सेना आदिक भेद होते हैं इसी प्रकार उन देवोंमें भी भेद हैं और जहाँ ये भेद हैं वहाँ शान्ति कहाँ है ? हुक्म देने वाला हुक्म देकर दुःखी होता है और हुक्म मानने वाला हुक्म मानकर दुःखी होता है। यही बात स्वर्गोंमें चल रही है। इस कारण स्वर्गोंमें भी वास्तवमें सुख नहीं है। ये सुख मोही जनोंकी दृष्टिमें सुख है, ज्ञानीकी दृष्टिमें तो स्वर्गके सुख भी दुःखरूप हैं। सब ओरसे विकल्प हटकर एक मात्र आत्मामें ही सहज स्वरूपमें ही उपयोग रम जाय तो अद्भुत आनन्द उत्पन्न होता है। दोपहरमें एक भाई साहबने प्रश्न किया था कि ये इच्छाएँ कैसे नष्ट हों ? इन इच्छावोंके पीछे तो बड़ी परेशानी है। एक न एक इच्छा उठ खड़ी होती है। ये इच्छायें टाले नहीं टलतीं। तो इन इच्छावोंका नाश कैसे हो ? तो भाई बात यह है कि इच्छा हमें जिन जिन चीजोंकी होती है उनमें हमें मौज मिलता है, मजा आता है, सुख आता है। कुछ बात मनमें है ना इसीलिए इच्छायें होती हैं। दुःखकी बातकी किसे इच्छा होती है ? जिसमें मनुष्य सुख समझता है उसकी इच्छा करता है। तो उस सुखसे बढ़कर कोई सुख इसे मिले तो उसकी इच्छा भी छोड़ दे। तो उस सुखसे बढ़कर स्थिति है, आनन्द है तो वह है आत्मानुभव में। अपने सहज ज्ञानस्वरूपका अनुभव हो जाय अर्थात् ज्ञानमें ज्ञानस्वरूप समा जाय और वहाँ ज्ञान ज्ञेय एक बन जायें, उस हालतमें यहाँ वहाँके विकल्प न रहनेसे एक अनुपम आनन्द उत्पन्न होता है, जो शब्दोंसे नहीं कहा जा सकता। शब्द तो उसी पुरुषको अर्थ बतायेगा जिसने यह अनुभव किया है। अनुभवशून्य व्यक्तिके शब्द अनुभवशून्य व्यक्तिको काम न देंगे। तो जिसने आत्मानुभव कर लिया है वह इन इच्छावोंको दूर कर सकता है।

आत्मानुभवकी व एतदर्थ कुछ संयमनकी आत्महितार्थ आवश्यकता—यदि कोई पुरुष इन इच्छावोंको बिना आत्मानुभव किए ही जबरदस्ती हटाये तो एक इच्छा हटनेके बाद दूसरी इच्छा पुनः सामने आ खड़ी होगी। अभी खाना खाया, लो अब घूमनेकी इच्छा हो गई, लो अब पान खाने, सिगरेट पीने व सनीमा आदि देखनेकी इच्छा हो गयी। यों एक इच्छा हटनेके बाद दूसरी इच्छा जागृत हो जायगी। तो इन इच्छावोंका निरोध करनेके लिए आत्मानुभव करें। मैं ज्ञानमात्र हूं अन्य कुछ नहीं हूं यों ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभव करके इन इच्छावोंको दूर किया जा सकता है। यह एक साधना है, और इस साधनाके लिए किसी प्रकारका तप और त्याग चाहिए। वास्तविक धर्म कहाँ है ? आत्माके अनुभवमें है, वास्तवमें शान्ति कहाँ है ? आत्माके अनुभवमें है। तो यही धर्मका पालन है। मंदिर आकर भी यही चीज पानी थी, पर इसका लक्ष्य कौन रखता है ? मंदिर आते न जाने कितने वर्ष बीत गए, पूजन भी करते, स्वाध्याय आदिक भी करते, धर्मकी सारी क्रियायें करते, पर अभी तक इस वास्तविक धर्मको, सही शान्तिको नहीं प्राप्त किया। न प्राप्त होनेका कारण क्या है कि वही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बाह्य पदार्थोंमें ममता बसाये हुए है, रात दिन उन्हींकी चर्चा चलती है, उन्हीं परवस्तुवोंकी रात दिन आशा लगाये रहते हैं, यही कारण है कि वह शांति नामकी चीज नहीं प्राप्त होती। यह तो एक साधनासाध्य बात है। शान्ति प्राप्त करने हेतु अर्थात् धर्मपालन करने हेतु इस साधनाको अति आवश्यक जानकर नियमित रूपसे घंटा ठेढ़ घंटा स्वाध्याय करें, ऐसा स्वाध्याय हो कि जो कुछ भी पढ़ा जाय वह सब अपने आपपर घटाते हुए पढ़ें। अन्य धार्मिक कार्य करें तो इन परवस्तुवोंसे ममता हटाते हुए करें, हंसी खुशीमें मौज मस्तीमें ही इस अपने जीवनके अमूल्य क्षणोंको न गंवायें। जिस समय सामायिक करने बैठें तो ऐसी बात मनमें ठान कर बैठें कि हमें तो अब किसी भी परतत्त्वका विचार नहीं करना है। सो दो चार मिनट तो परपदार्थोंको अपने उपयोगसे हटानेका यत्न करें। जिस समय भगवानका पूजन कर रहे हों उस समय भगवानके गुणोंका इस तरहसे स्मरण करें कि अन्य बाहरी बातोंपर ध्यान न रखो। ऐसी हठ करके बैठें कि हमें तो भगवानके गुणोंका स्मरण करते हुएमें धन वैभव कुटुम्ब परिजन, आदिक किन्हीं भी परपदार्थोंमें अपना चित्त नहीं फंसाना है। हमें तो अपने इस ज्ञानके उपयोगके इस प्लेटफार्मको बिल्कुल शून्य छोड़ना है। इस तरहसे आत्मानुभव करें।

आत्महितके लिये नियमितताकी भी आवश्यकता—यह आत्मानुभव बिना साधना किए नहीं प्राप्त होता। मौजमें खुशीमें रहकर यह आत्मानुभवकी चीज मिल जाय सो बड़ी कठिन बात है। उन साधनाओंको करने लगिये अभीसे। एक साधना तो यही है नियमित स्वाध्याय करना। बातें करते हुए नहीं, किन्तु एक उपयोग लगाकर जितना भी पढ़ा जाय उसका अर्थ विचार कर, जो कुछ सुना जाय उसका अर्थ समझकर अपने आपमें उन सब बातों को घटाकर स्वाध्याय करिये। दूसरी साधना आप जाप सामायिक आदिमें बैठते हैं तो जाप कर लिया, बारह भावनायें बोल लिया, भगवानका स्तवन बोल लिया, अपने किए हुए कर्मों का चिन्तवन कर लिया। इतना सब कुछ करने पर भी कुछ समय ऐसा व्यतीत करिये कि मैं अपने चित्तमें किसी भी पदार्थको न आने दूंगा। जो भी पदार्थ उस समय ख्यालमें आये उसके प्रति भी यही चिन्तन करें कि अरे इससे भी क्या लाभ ? यह भी हमारी बरबादीके लिए है। तो उस समय किसी भी परपदार्थका ध्यान न रहे। तीसरी साधना यह है कि ज्ञानार्जनका, सत्संगका धर्मलाभको अधिक महत्त्व दें, इस धन वैभवको अधिक महत्व न दें। ऐसा चिन्तन करें कि हमारा तो धर्म साधना सहित जीवन व्यतीत होना चाहिए। आजके इन मिले हुए धन वैभव आदिकके समागमोंमें अधिक महत्त्वकी बात न सोचें। आराममें रहकर, सुखोंमें रहकर खुशीमें रहकर आत्मानुभव होना बड़ी कठिन बात है। और इस आत्मानुभवके बिना इस जीवका उद्धार कभी हो ही नहीं सकता। उद्धार किसका नाम है ?

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस जीवमें कोई विकल्प न रहे, केवल एक ज्ञानामृतका ही पान करता रहे, इसीका तो नाम उद्धार है। यह उद्धार केवल अपने आन्तरिक ज्ञान पुरुषार्थसे ही सिद्ध हो सकता है, अन्य उपायसे नहीं हो सकता।

स्वर्गसे ऊपरके वैमानिक अहमिन्द्रोंके सुखका निर्देश—यह स्वर्गोंका सुख बताया जा रहा था। किन्तु अब आत्मीय आनन्दके सामने ये वैषयिक सुख फीकेसे लग रहे हैं ना। हमारी जैसी दृष्टि बने उसके अनुसार ही बाह्य बात प्रतिभासमें आती है। स्वर्गोंमें बड़ा भेद है और बड़ा क्षोभ है। वैषयिक सुख क्लेशरूप हैं। उन स्वर्गोंसे ऊपर कल्पातीत देव हैं, वे ऋद्धि सिद्धिमें इन्द्रसे कम नहीं हैं। वे सभी एक समान वैभव वाले हैं, सभी अहमिन्द्र हैं। उन स्वर्गोंमें सब कल्पातीत देव ही रहते हैं। उनका नाम अहमिन्द्र है और उन अहमिन्द्रोंमें मौलिक विशेषता यह है कि वे कामवासनारहित हैं, उनके देवांगनायें नहीं होतीं, वे अपने आपमें ही तृप्त रहा करते हैं। नाना प्रकारके उनके शुभ ध्यान बढ़ते रहते हैं। सर्वारिसिद्धिमें तो ३३ सागर पर्यन्तका समय तत्त्वचर्चामें ही व्यतीत कर डालते हैं। उनके शुक्ल लेश्या है, अत्यन्त मंद कषाय है, एक भवावतारी हैं। एक मनुष्यका भव प्राप्त करनेके बाद वे मोक्ष चले जाते हैं। वहाँ उनके योग्यतानुसार ध्यानकी वृद्धि होती रहती है और वे शुक्ललेश्या धारण करने वाले हैं। सभी कल्पातीत देवोंमें शुक्ल लेश्या होती है।

अनुत्तरविमानेषु श्रीजयन्तादिपञ्चसु।
संभूय स्वर्गिणश्च्युत्वा व्रजन्ति पदमव्ययम् ॥१८४९॥

अनुत्तरविमानवासियोंका मुक्तिनैकट्य—नवग्रैवेयक अनुदिशके ऊपरके देव, अनुत्तर विमानोंमें विदेह आदिकमें उत्पन्न हुए देव वहाँसे गिरकर मनुष्य होकर अवश्य ही अविनाशी पदको प्राप्त करते हैं। पुण्यफलमें और पापफलमें ऐसा अन्तर समझिये जैसे कोई दो व्यक्ति अपने अपने मित्रोंकी प्रतीक्षा कर रहे हों, एक तो धूपमें बैठकर प्रतीक्षा करे और एक छायामें बैठकर प्रतीक्षा करे, तो हैरानी तो उन दोनोंको ही होती है। पुण्यफलमें जीव थोड़ा मौज मान लेता है और पाप फलमें जीव दुःखी हो लेता है पर आकुलताएँ तो दोनोंमें ही बसी हुई हैं। तो इस पुण्यफल और पापफल दोनोंका ही फल बन्धन है। इन पुण्य और पाप दोनों फलों से परे एक आत्मानुभव वाली स्थिति है, वही कल्याणका मार्ग है। सो ये देव पुण्यफलमें ऊँचे अहमिन्द्र देव हुए हैं पर उसके बाद मनुष्य होकर ये मोक्ष जायेंगे। जितने भी मनुष्य मोक्ष गए हैं उनमेंसे कुछ मनुष्य तो कष्ट पाकर, वेदनाएँ पाकर, उपसर्ग पाकर मोक्ष गए हैं और अनेक मनुष्य ऐसे मोक्ष गए जो कि राजा महाराजा थे, बड़ा वैभव था उसको त्यागकर मोक्ष गए। मोक्ष जाने वालोंमें ऐसे बहुत कम हैं जो दीन दुःखी रहकर, कष्ट पाकर, उपसर्ग पाकर मोक्ष गए। ऐसोंकी संख्या बहुत अधिक है जो बड़े धन ऐश्वर्य साम्राज्यके बीचमें रहे, बड़े

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मौजमें रहे, लेकिन अन्तमें उस सारे वैभवको असार समझकर उसे ठुकराकर आत्मचिन्तनमें रत हुए और मोक्ष सिधारे। कोई बड़ी गरीब दीन हीन दशामें रहकर कष्ट पाकर मोक्ष सिधारे तो उसमें उतनी विशिष्टता नहीं समझी जाती जितनी कि बड़े धन वैभव ऐश्वर्य आरामके साधनोंके बीच रहकर उसे असार समझकर, तृणकी नाई त्यागकर, आत्मरत होकर मोक्ष सिधारनेमें समझी जाती है। तो पुण्य कार्य करना यह विशिष्ट चीज नहीं है परवे पुण्यकार्यको करके अहमिन्द्र देव होते हैं और वहाँसे गिरकर मनुष्य होकर वे निर्वाण प्राप्त करते हैं।

कल्पेषु च विमानेषु परतः परतोऽधिकाः।
शुभलेश्यायुर्विज्ञानप्रभावैः स्वर्गिणः स्वयम् ॥१८५०॥

वैमानिक देवोंमें शुभलेश्या आयु विज्ञान आदिकी उत्तरोत्तर अधिकता—वैमानिक देवोंमें अर्थात् सोलह स्वर्ग ऊपर ग्रैवयक, अनुदिश, अनुत्तर विमानोंमें जो देव बसते हैं, वे इन बातोंमें ऊपर ऊपरके देव नीचेसे अधिक अधिक हैं अर्थात् शुभ लेश्या आयु विज्ञान और प्रभाव ये सब ऊपरके देवोंमें बढ़ते हुए चले जाते हैं। जैसे पहिले स्वर्गमें पीत लेश्या है तो ऊपर बढ़ते जायें तो पद्म और शुक्ल लेश्यायें हैं, फिर और विशिष्ट शुक्ल लेश्या है। उनकी कषायें और मंद हो जाती हैं। नीचेके देवोंमें जैसी कषायकी प्रवृत्ति चलती है उससे अत्यन्त मंद कषायमें प्रवृत्ति ऊपरके देवोंमें चलती है। एक भाईने प्रश्न किया था कि जब भगवानके कल्याणक होता है तीर्थंकरके तो उस समय स्वर्गोंसे ऊपरके देव उस समारोहमें आते हैं या नहीं? तो समाधान यह है कि वे आते नहीं हैं, उसका कारण यह है कि ऊपरके देवोंमें लेश्यायें मंद हैं, उनमें उस प्रकारकी इच्छाएँ कषायें विशेष नहीं हैं। वैसे स्वरूपदृष्टिसे सोखा जाय तो ये सब कषाय ही तो हैं। किसीपर गुस्सा करना, किसीको मारना पीटना ये भी हैं और मंदिर चलना है, मंदिरमें हम पूजन करेंगे, ऐसा परिणाम किया तो वह भी कषाय है। पर अन्तर बहुत है, वह है तीव्र कषाय और यह है मंद कषाय। कषायरहित प्रवृत्ति तो नहीं है, कषायरहित प्रवृत्तिमें कोई परिणति ही नहीं होती। ऊपरके देवोंमें मंद कषाय होती है तो उनको इतनी तीव्रता नहीं होती, ऐसी ठेस उन्हें नहीं लगती कि वे देव अपने स्थानको छोड़कर नीचे आयें। जैसे श्रावकोंका तो मंदिर आनेका नियम है और मुनि जनोंका नियम नहीं है। हाँ सुगमतासे मंदिर मिल गया तो दर्शन कर लिया, तो यह फर्क किस बातका है? फर्क यही है। कि मुनि जनोंके कषाय अत्यन्त मंद हैं।

सर्वार्थसिद्धिके देवोंका तत्त्वचर्चामें कालयापन—सर्वार्थसिद्धिके देव ३३ सागर पर्यन्त की आयु तत्त्वचर्चामें ही व्यतीत कर देते हैं। जैसे यहाँ मंदिरमें पुरुष या महिलायें घंटा डेढ़ घंटा मंदिरमें बैठते हैं तो कुछ तो धर्म चर्चा करते हैं और कुछ अपनी घर गृहस्थीकी बातें करके समय बिताते हैं, इस तरहसे वे सर्वार्थसिद्धिके देव तत्त्वचर्चा नहीं करते, वहाँ दिन रात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का तो भेद नहीं है, निरन्तर तत्त्वचर्चामें ही वे अपना समय व्यतीत करते हैं। उन देवोंको मनुष्योंकी नाई नींद भी नहीं आती। मनुष्य तो १८ घंटे काम कर सकते हैं और ६ घंटे सोनेमें जाते हैं पर देव लोग इस तरहसे नहीं सोते। यद्यपि निद्रा नामक दर्शनावरणका वहाँ उदय है पर उनको निद्रा चलती फिरती है। उनके थकावट तो होती नहीं। तो वे सर्वार्थसिद्धिके देव ३३ सागर पर्यन्तकी आयु निरन्तर तत्त्वचिन्तनमें ही व्यतीत करते हैं। आप सोचेंगे कि ऐसी क्या लम्बी तत्त्वचर्चा है कि ३३ सागर व्यतीत हो जायें। यहाँ तो किसी अजानकार से पूछो तो उसकी निगाहमें तत्त्वचर्चा कुछ है ही नहीं। उससे पूछोगे कुछ चर्चा करोगे, तो कहेगा कि हमें तो कोई शंका ही नहीं है। अजानकारको शंका क्या ? जो लोग जानकार हैं, ज्ञानवान हैं, चर्चायें तो वही लम्बी रख सकेंगे। वहाँ तो ग्यारह अंगोंका भी ज्ञान है, देव श्रुत ज्ञानमें भी बढ़े चढ़े होते हैं, पर श्रुतकेवली नहीं कहलाते, पर उनका ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा होता है और वे सारी आयु तत्त्वचर्चामें व्यतीत कर देते हैं। उनकी कषायें मंद हैं। उनकी आयु बढ़ी चढ़ी होती है। पहिले दूसरे स्वर्गमें तो दो सागरकी आयु है और अंतिम विमानमें सर्वार्थसिद्धिमें ३३ सागरकी आयु है। एक सागरमें लाख करोड़ अरब शंख अथवा महाशंखकी तो बात क्या, उसमें अनगिनते वर्ष हुआ करते हैं। उन ऊपरके देवोंमें अवधिज्ञान भी बढ़ा चढ़ा होता है। दूसरेके स्वर्गके देव अवधिज्ञानसे जितना जान सकते उससे विशेष विशेष ऊपरके देव जानते हैं। एक इस प्रसंगमें बात समझिये कि अवधिज्ञान जानता तो है चारों ओरकी बात, मगर बहुत अधिक क्षेत्रकी बात नीचेकी जानते हैं। अवधिज्ञानका विषय ऊपर अधिक न मिलेगा, नीचेकी दिशामें अधिक मिलेगा, नरकोंकी बात जान लेगा, मगर ऊपरकी बात अधिक नहीं जान सकता। सर्वार्थसिद्धिका ज्ञान मुनियोंके ही होता और उन मुनियोंके जो उस ही भवसे मुक्त होंगे। अवधिज्ञान भी ऊपरके देवोंमें बढ़ा चढ़ा है। प्रभाव भी ऊपरके देवोंमें अत्यंत अधिक है। यों स्वर्गोंमें ये बातें ऊपरके देवोंमें बढ़ी चढ़ी होती हैं। एक ज्ञानी पुरुष लोककी रचनाका विचार कर रहा है, कहाँ क्या रचना है ?

ततोऽग्रे शाश्वतं धाम जन्मजातङ्कविच्युतम्।
ज्ञानिनां यदधिष्ठानं क्षीणनिःशेषकर्मणाम् ॥१८५१॥

सर्वार्थसिद्धिके ऊपर सिद्ध शिला व सिद्ध शिलाके ऊपर सिद्धालय—अनुत्तर विमानोंके मध्यमें है सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान, उससे ऊपर मोक्षका स्थान है। देखिये वह मोक्षका स्थान ऐसा स्थान नहीं है कि वहाँ जीव पहुंच जायें तो वे परमात्मा कहलायें। ऐसा नियम नहीं है। जो अष्टकर्मोंसे रहित होगा वह आत्मा भी वहाँ पहुंचता है, शाश्वत सदाकाल के लिए वहीं विराजमान है, वह है परमात्मा। वहाँ परमात्मा भी रहता है और निगोदिया जीव भी रहते हैं, सो उस ही जगहमें परमात्मा तो अनन्त सुखका अनुभव करता है और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निगोदिया जीव एक श्वांसमें अठारह बार जन्म मरण करते हैं और क्लेश भोगते हैं। पर मोक्षधाम वहाँके स्थानको इसलिए कहा गया कि मुक्त होनेपर जीव यत्र तत्र कहीं नहीं ठहरता, सीधा वहीं ऊर्ध्व लोकके अन्तमें पहुंचता है और वहीं विराजमान है, इस कारण उसका नाम मोक्षधाम पड़ा। सो संसारसे उत्पन्न हुए क्लेशोंसे वे रहित हैं, क्लेश तो हम आप लोगोंने बनाये हैं और बनाते चले जा रहे हैं, न बनायें क्लेश तो कोई क्लेश नहीं। सोचनेकी बात है। हम परपदार्थोंमें अपने प्रवृत्ति बढ़ाते हैं, लोकमें अपनी इज्जत समझते हैं, पोजीशन मानते हैं तो हम दुःखमें अपनी कदम ज्यादह बढ़ा लेंगे। हम वैभवसे अपना हित न मानें, बड़प्पन न समझें, लोकमें अपनी नामवरीकी चाह न करें, सर्व कषायोंको दूर कर दें तो समझो कि सारे दुःख दूर हो गये। फिर परमार्थदृष्टिसे देखिये—आत्माके स्वरूपमें क्लेश नहीं है, ज्ञान है, निरन्तर वह जानता रहे ऐसा उसका स्वरूप है, ये रागद्वेष क्लेश आदि वास्तवमें कुछ भी नहीं हैं जीवके स्वरूपमें, लेकिन परवस्तुवोंसे अपना सम्पर्क बनाकर हम विकल्प रखते हैं और दुःखी होते हैं। इन सर्व दुःखोंसे जो सदाके लिए मुक्त हो जाते हैं वही भगवान हैं। उनका स्थान ढाई द्वीपके बिल्कुल सीधमें ऊपर ऊर्ध्व लोकके अन्तमें है और वहाँ वे निरन्तर अपने स्वरूपमें विराजे रहते हैं। उस मोक्ष स्थानमें समस्त कर्मोंका नाश करने वाले सिद्ध भगवानका आश्रय स्थान है।

सिद्ध प्रभुके अनुपम आनन्दकी सुध—कोई लोग सोचते होंगे कि वह सिद्ध भगवान क्या आनन्द पाते होंगे, वे तो वहाँ अकेले हैं, उनके साथ कोई नहीं है, उनका कैसे समय कटता होगा? यह शंका उन लोगोंकी है जो मोही हैं, जो अपने इष्ट परिवार या मित्रजनोंके बीचमें रहकर अपना समय गुजारते हैं, उसीमें मौज मानते हैं। वे लोग यहाँसे तुलना करते हैं। वहाँ तो खानेको तम्बाकू भी न मिलेगी, मिठाइयां भी न मिलेंगी, क्या सुख है वहाँ? लेकिन उनको यह पता नहीं है कि ये सारी बातें दुःखरूप ही तो हैं। वहाँपर इन सारे दुःखों का अभाव है, यही उनका अनन्त आनन्द है। जब कभी आप सामायिक करते हैं और जैसे एक दिन साधनाकी बात कही गई थी कि साधना करे कोई तो किसी भी परपदार्थको अपने विकल्पमें न आने दे, किसीका भी राग न करे, विश्रामसे रहे, अपने स्वरूपमें अपने आपको समा दे, ऐसा प्रयत्न करे तो इस परिणमन करते हुए के बीचमें यह शंका तो नहीं होती कि यदि मैं ही आत्ममग्न हो गया तो फिर क्या होगा मेरे परिवार जनोंका? वे सुखसे रह सकेंगे या नही? अरे यह कल्पना उठी तो समझो कि रंगमें भंग हो गया। कहाँ तो आत्मस्वरूपको निरखकर उसमें समानेका आनन्द लूटा जा रहा था और कहाँ यह विकल्प तरंग उठ खड़ी हुई। अरे विकल्प तरंगको मत उठा, अपने आपको अपने आपमें समा दे, समा जायगा, मग्न हो जायगा तो सदाके लिए तू दुःखोंसे छूट जायगा। औरोंकी तू क्या परवाह करता, पर तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर ही है, इन सर्वका विनाश होगा, इन सबके साथ कर्म लगे हैं, उसके अनुसार उनकी बात बनेगी। यदि तू अपने आपका ज्ञान करता है, अपने आपमें पूर्णरूपसे अपने आपको मग्न कर सकता है तो कर दे। किसी भी प्रकारकी चिन्ता न ला और विशुद्ध आनन्दकी प्राप्ति कर। यही आनन्द तो सिद्धकी जातिका आनन्द है। खुद इस विशुद्ध आनन्दका अनुभव कर सके कोई तो भगवानके आनन्दकी बात समझ सकता है, अन्यथा तो अनेक शंकायें होंगी, विश्वास ही न जगेगा कि परमात्मा क्या चीज है ?

चिदानन्दगुणोपेता निष्ठितार्था विबन्धनाः।
यत्र सन्ति स्वयंबुद्धाः सिद्धाः सिद्धेः स्वयंवराः ॥१८५२॥

सिद्ध भगवंतोंकी निष्ठितार्थता—उस मोक्ष स्थानमें सिद्ध भगवान विद्यमान हैं। वे चैतन्य और आनन्द गुणों करके संयुक्त हैं। उन प्रभुके चैतन्यका विशुद्ध पूर्ण विकास है, वे केवलज्ञानसे समस्त विश्वको जानते हैं, वे सिद्ध भगवान अनन्त आनन्दकर संयुक्त हैं। वे सिद्ध भगवान कृतकृत्य हैं, अर्थात् उन्हें करनेको अब कुछ भी नहीं रहा, करने योग्य कार्यको कर लिया। तब ऐसी दृष्टि जग जायगी कि मैं आत्मा अपने ही प्रदेशोंमें परिपूर्ण हूं, मैं जो कुछ कर सकता हूं वह अपने आपके प्रदेशोंमें ही कर सकता हूं, अपने प्रदेशोंसे बाहर मैं कुछ भी नहीं कर सकता। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है तब मेरेको करने लायक काम रहा कहाँ ? मैं किसमें क्या करूँ, मैं अपने भावोंके सिवाय कुछ कर ही नहीं रहा था। अपने भावोंके सिवाय मैं अन्य कुछ कर ही नही सक रहा हूं, न कभी कर सकूँगा, तब फिर मेरेको बाह्यपदार्थोंमें करने योग्य है ही क्या ? कुछ भी नहीं। ऐसी दृष्टि जगे तो उसे कृतकृत्य जैसा समझ लीजिये। करनेको कुछ रहा ही नहीं। कुछ न करें तब यह बात बनेगी कि करनेको कुछ रहा ही नहीं। कोई पुरुष कर करके यह स्थिति चाहे कि मैं सब कुछ कर लूँ, फिर करनेको कुछ बाकी न रहेगा, ऐसा ज्ञानबल जगे कि मेरे करनेको यहाँ कुछ नहीं है तो उसकी यह स्थिति बनेगी कि अब करनेके लिए कुछ रहा ही नहीं। क्या करना ? प्रभु भगवान अपने केवलज्ञानसे निरन्तर सर्वत्र जानते रहते है, केवल दर्शनसे अपना दर्शन करते रहते हैं, अनंत विशुद्ध आत्मीय आनंद का निरंतर अनुभव करते रहते हैं। वे करनेका कुछ विकल्प ही नहीं करते। यहाँ भी करनेका विकल्प अज्ञानी जन किया करते हैं, करनेका विकल्प ज्ञानी जन नहीं किया करते। वे प्रभु विकल्पोंसे रागद्वेषादिक भावोंसे सबसे मुक्त हो गए हैं, वे कृतकृत्य हैं। मुक्त प्रभु बन्धनरहित हैं। कर्मबन्ध अब कुछ नहीं रहा, वे स्वयं बुद्ध हैं, परिपूर्ण ज्ञानी हैं, वहाँ पाठशालायें नहीं हैं, कोई कुछ सीखने वाले नहीं हैं, कहीं कोई बातचीत नहीं करता, वह सर्व शुद्ध रह गया, वह भगवान केवल ज्योति पुञ्ज है और निरन्तर आत्मीय आनन्दका अनुभव करता रहता है। वह स्वयं बुद्ध है, ऐसा पुरुष है वह जो सिद्धिको स्वयं करने वाला है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समस्तोऽयमहोलोकः केवलज्ञानगोचरः ।
तं व्यस्तं वा समस्तं वा स्वशक्त्या चिन्तयेद्यतिः ॥१८५३॥

संस्थानविचयधर्मध्यानमें लोकचिन्तनाकी वृत्ति—हे भव्य जीव ! यह समस्त लोक केवलज्ञानके द्वारा ज्ञात है तो भी इस संस्थानविचय नामक धर्मध्यानी मुनि सामान्यसे तो सभी और विशेषसे अलग अलग कुछ पदार्थको अपनी शक्तिके अनुसार चिन्तवन करें। वस्तु-स्वरूपका चिन्तन और उसमें ही आ गया पंचपरमेष्ठीके स्वरूपका चिन्तन। पंच परमेष्ठी कोई किसीकी बपौती जैसा पद नहीं है कि किसी जीवका कोई यह हक ही है। जैसे कोई लोग कहते कि ईश्वर जगतका कर्ता है, उसका हक है ऐसे ही कोई हक रखने वाले परमेष्ठी नहीं कहलाते किन्तु कोई भी जीव हो, जो जीव कलंकोंसे रहित हो जाता, रागद्वेष मोहसे दूर होता है बस उसीका नाम परमेष्ठी है। वे परमेष्ठी ५ हैं—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। इन पाँचोंमें सबसे पहिले कोई जीव साधु बनता है। साधु परमेष्ठी होना उसकी प्रथम अवस्था है। आचार्य उपाध्याय भी यदि वह होगा तो बादमें होगा। कोई गृहस्थ किसीसे सर्व प्रथम आचार्यकी दीक्षा नहीं लेता। पहिले साधुपनेकी दीक्षा लेता, फिर ज्ञान दर्शन व चारित्रमें वृद्धि करके आचार्य, उपाध्याय आदि बनता। बादमें चार घातिया कर्मोंका विनाश करके अरहंत बनता, फिर सिद्ध बनता। तो यहाँ तो इस पंचपरमेष्ठी मंत्रमें गुणकी पूजा है। किसी एक मनुष्यको भगवान मानकर रह गए हों, ऐसी बात नहीं है। चौबीस तीर्थंकरोंकी नामावली आती है किन्तु ज्ञानी पुरुष तीर्थंकरको किसी एक व्यक्तिकी मुख्यतासे ध्यान नहीं करते, किन्तु वीतरागता और सर्वज्ञताके गुणोंकी प्रधानता देकर तीर्थंकरका ध्यान करते हैं। भगवान महावीर त्रिशलाके नन्दन हैं, सिद्धार्थके पुत्र हैं, इस कारण ज्ञानियोंको उनके प्रति आकर्षण नहीं है किन्तु वह आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन सम्पन्न है, समस्त मोह रागद्वेषों से रहित है, विशुद्ध है, पवित्र है, इस कारण उन गुणोंका वे ज्ञानी पुरुष ध्यान करते हैं। तो जिन्होंने चार अघातिया कर्मोंका विनाश किया, अनन्त गुण प्रगट किया, पूर्ण ज्ञानी बने, पूर्ण निर्दोष बने उनका नाम है अरहंत परमेष्ठी और जब शेष बचे हुए चार घातिया कर्म भी नष्ट हो जाते हैं तो उनका नाम है सिद्ध परमेष्ठी। इस णमोकार मंत्रमें आत्माके गुणोंके विकास को नमस्कार किया है, किसी नामधारीको नमस्कार नहीं किया है। तो धर्मध्यानी पुरुष इस प्रकार परमेष्ठीके स्वरूपका चिन्तन करता है और यह चिन्तन आगेके प्रकरणमें विशेषरूपसे आयगा। यह भी संस्थानविचय धर्मध्यानका अंग है।

विलीनाशेष कर्माणं स्फुरन्तमतिनिर्मलम् ।
स्वं ततः पुरुषाकारं स्वाङ्गगर्भगतं स्मरेत् ॥१८५४॥

धर्मध्यानमें लोकस्वरूपचिन्तनाके पश्चात् पुरुषाकार निज आत्मतत्त्वके ध्यानका उप-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देश—इस लोकके संस्थानका चिन्तन करनेके पश्चात् ज्ञानी ध्यानी पुरुष अपने शरीरके गर्भगत याने शरीरके मध्य स्थित पुरुषाकार कर्म रहित अति निर्मल चिन्तवन करे। सब कुछ ध्यान किया, वस्तुस्वरूपका खूब विचार किया। अन्तमें करना क्या है? एक इस सहज ज्ञानस्वरूप आत्माका ध्यान। यह न कर सके तो वह ध्यान भी न रहे। सर्व ध्यानोंका लक्ष्य यही है जो मोक्षमार्गमें प्रयुक्त होता है। अपने सहज चैतन्यात्मक आत्माका उपयोग बने, उस ही में आत्म-मग्न रहे तो ये सब चिन्तवन करनेके पश्चात् अपने आपमें देहाकार, किन्तु देहसे निर्मल केवल ज्ञानमात्र आत्माके स्वरूपका ध्यान करें। अब इस संस्थानविचय धर्मध्यानके एक संक्षिप्त और सामान्य वर्णनको समाप्त करते हुए अन्तमें उपसंहार रूप एक छंद कहा जा रहा है।

इति निगदितमुच्चैर्लोकसंस्थानमित्थम्।
नियतमनियतं वा ध्यायतः शुद्धबुद्धेः॥
भवति सततयोगाद्योगिनो निष्प्रमादम्।
नियतमनतिदूरं केवलज्ञानराज्यम्॥१८५५॥

शुद्ध ध्यानका फल केवलज्ञानराज्य—आचार्य महाराज कहते हैं कि इस प्रकार जैसा कि वर्णन किया गया लोककी समस्त रचनाओंको उस लोकसंस्थानको इस प्रकार नियत मर्यादा सहित या कुछ अनियत मर्यादामें चिन्तवन करते हुए यह निर्मल बुद्धि वाला पुरुष है ना, एक प्रमादरहित ध्यान करनेसे नियमसे वह केवलज्ञान प्राप्त होता है। इन ध्यानोंमें आत्मध्यान हो तो आया और उस आत्मज्ञानका अनुभव निरन्तर बना रहे, उसमें इतनी अद्भुत सामर्थ्य है कि फिर क्षपक श्रेणीपर चढ़कर अन्तर्मुहूर्तमें वह केवलज्ञान उत्पन्न कर ले। जैसे कहीं कोई चीज बँट रही हो तो लेनेवाले यह भाव रखते हुए कि आने दो, अघाते नहीं हैं। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष अपनी आत्मभूमिकामें ज्ञानस्वरूप समा रहा है, आ रहा है, उस आत्मस्वरूपमें मग्न होता है और यह मग्नता मोक्षप्राप्तिका कारण है। तो इस प्रकार संस्थानविचय धर्मध्यानमें इस लोकरचनाका विचार कर करके एक निर्मलता ज्ञान और वैराग्यका प्रकाश उत्पन्न होता है जिसके प्रतापसे यह ज्ञानी पुरुष अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञानी होकर मोक्षपदको प्राप्त करता है। हम आपका कर्तव्य है कि इन पौद्गलिक चीजोंको महत्त्व न दें, ये तो बरबादीके ही कारण हैं। महत्त्व दें अपने ज्ञानस्वरूप और भगवत्भक्तिको, और धर्मध्यान करके अपने जीवनको सफल बनायें।

॥ ज्ञानार्णव प्रवचन अष्टादश भाग समाप्त ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com